गहवर वन तरंगिनी

यही करुणा करना करुणामयि,
मम अंत होय बरसाने में ।
पावन गहवरवन कुञ्ज निकट,
रज में रज होय मिलूँ ब्रज में ॥

प्रकाशक
श्री मान मंदिर सेवा संस्थान
गह्वर वन, बरसाना, मथुरा, उत्तर प्रदेश

द्वितीय संस्करण

प्रकाशित २३ अक्टूबर २०१५

विजयदशमी (दशहरा) , आश्विन, शुक्लपक्ष, २०७२ विक्रमी सम्वत्

http://www.maanmandir.org
http://www.brajdhamseva.org
ms@maanmandir.org

Printed in India (2000 Copies)

ISBN 9788192807362

अंतर्वस्तु

अंतर्वस्तु....................i
प्रकाशकीय.................... iii
श्री रमेश बाबा जी महाराज 1
चरणों की शरण 7
प्रभु की कृपा 9
आसक्ति 10
कामना रूपी सर्प 12
संत की महिमा 14
सेवा-भाव 17
भाव 21
द्वन्द्व 23
विश्वास 24
भक्ति को नापने का थर्मामीटर 25
भगवान् वैद्य हैं 26
भगवान् की करुणा की अनुभूति 28
भक्त कौन है? 29
कृष्ण प्रेम की पहचान 30
कृष्ण प्रेम होने पर 31
भगवान् टेढ़े क्यों? 33
ब्रज की संस्कृति 36
ब्रज भाव - ब्रज प्रेम 38
ब्रज उपासक 40
ब्रज धाम निष्ठा 44
कलियुग 49
भगवन्नाम 51
चिन्तन 55
एक ही चिंता 57
विषय 58
भय 61
अहम् 63
साधक में विवेक 67
सच्चे शत्रु – काम और क्रोध 68
संतुष्टि 70
कर्म 73
भक्त 76
भक्तापराध 79
वाणी का तप 81
चार डाकू 83
प्रेम में बिकना सीखो 84
प्रेम साधन-सबसे श्रेष्ठ 86
प्रेम कुछ नहीं चाहता 89
गोपियों से सम्बन्ध 90
प्रेम की स्थितियाँ 94
कृष्ण की महिमा 96
सर्वभाव 97
माधुर्य रस के अधिपति 100
मुरली मनोहर 101
श्यामसुन्दर का स्वभाव कपटी 103
कपट कैसे होता है? 105
गति – विदः 107
अधरामृत हमें दो 111
अधरामृत को अमृत क्यों कहा गया? 112
कृष्ण का रूप 112
बंसी 114
बंसी का भाग्य 116
अकिञ्चन भक्त 119
दामोदर....................120
चोर कान्हा 121
आपका नाम अच्युत 122
भगवान् सब जगह हैं 123
दैन्य 124
धैर्य 127
मन में मैल 128
मौन होना 130
निष्कपटता 130
हम अपने दोषों के कारण प्रभु से दूर हैं 132
सहनशीलता 133
दुःख 134

ममता 135
मर्यादा का पालन 136
व्यवहार 139
संस्कार 139
चेतना 142
भक्ति देवी का श्रृंगार 143
श्रेष्ठ कौन? 146
गोपियाँ कौन थीं? 148
शांत मन 150
शुचि सेवक 152
प्रभु प्राप्ति का उपाय 154
कामना रहित कर्म 156
शिशु भाव 159
प्रेमलक्षणा भक्ति 160
अभय 163
प्रभु प्रेम में नाचना 166
गहवर वन 169
मान मंदिर 171
श्री राधारानी के चरण 173
गोपनीय धन श्रीराधिकारानी 177
कृष्ण को कैसे वश में किया जाय? 178
श्री राधा नाम 179
प्रार्थना 182
मैं हरि साधन करी न जानी 185
मोसों बात सकुच तजि कहियै 187
नाथ सारंगधर ! कृपा करि दीन पर 189
हम भक्तन के भक्त हमारे 191
कौन गति करिहौ मेरी नाथ ! 192
केशव ! कहि न जाय का कहिये 194
सोई कुछ कीजै दीन-दयाल ! 195
मेरे प्रीतम प्यारे 196
कौन गति 198
यह बिनती रघुवीर गोसाईं 200
मैं हरि बिनु क्यूं ज्यूं री माई 201
मोहे ना बिसारौ 202
कबहूँ मन विश्राम ना मानै 204
अंत के दिन को 206
मो सम कौन कुटिल खल कामी 208
अब मोहि शरण राखिए दीनानाथ 209
हरि जू कौ देख्यो एक स्वभाव 212
हारी जानि परी हरि ! मेरी 216
अब मैं नाच्यो बहुत गोपाल 219
आपकी ठकुराई 222
राधे किशोरी दया करो 225

प्रकाशकीय

जिन श्रीकृष्ण का हँसना, बोलना, चलना सब कुछ मधुरातिमधुर है, जो अपनी मधुरता से अनन्त जीवों के मन को मोहित करने वाले हैं, वे ही श्रीकृष्ण वृषभानुनन्दिनी श्रीराधारानी की चरण-रज के लिए लालायित रहते हैं; ऐसी परमाराध्या श्रीराधारानी के कर-कमलों से निर्मित गहवर वन, बरसाना ब्रज-रस-रसिक सन्तों का निकेतन रहा है।

इसी गहवर वन में स्थित मान मंदिर में पिछले ६२ वर्षों से विराज रहे हैं **परम विरक्त संत श्री रमेश बाबा जी महाराज**[1], जिनकी अमृतमयी वाणी का रसास्वादन करने के लिए हजारों की संख्या में भक्तगण आते हैं और पूज्य बाबाश्री के दर्शन व सत्संग पाकर अपने जीवन को कृतार्थ करते हैं।

पूज्य बाबाश्री की आध्यात्मिक-स्थिति को ही समझ पाना असम्भव है तो उसे लिखने की कल्पना भी कैसे की जा सकती है? यह पुस्तक श्रीबाबा महाराज की अलौकिक भक्तिमय वाणी को जन-साधारण तक पहुँचाने की अनधिकार चेष्टामात्र है, ताकि इसके माध्यम से जन-जन में भक्ति का प्रचार-प्रसार हो सके।

---

[1] ब्रज संस्कृति के एकमात्र संरक्षक, प्रवर्द्धक, उद्धारक, उच्च कोटि के गायक, संगीत, नृत्य, संस्कृत के गूढ़ ज्ञाता एवं श्रीजी के परम कृपापात्र श्री रमेश बाबा जी विभिन्न वैष्णव सम्प्रदायों के भक्ति रहस्यों का सरल भाषा में विवेचन, महापुरुषों के पदों एवं भक्तों के चरित्रों का गायन त्रैकालिक सत्संग द्वारा प्रतिदिन गत ६२ वर्षों से जनमानस को सुलभतापूर्वक उपलब्ध कराते आ रहे हैं। बाबाश्री की अन्तरंग स्थिति का अनुमान उनके द्वारा पदों की रचनाओं में तथा गायन से उद्बोधित होता है। बाबाश्री के गाये पदों को सुनने मात्र से ही अनेक जीवों में आमूल परिवर्तन होते देखा गया जो जीवनपर्यन्त साधनाओं द्वारा भी संभव नहीं – महापुरुषों के सत्संग का प्रभाव ही ऐसा है।

श्री प्रिया शरण बाबा महाराज

विभिन्न वैष्णव सम्प्रदायों, नाना पुराणनिगमागम के ज्ञाता, युग्म युगल रसतत्व का विस्तृत, अगोचर, असमोर्ध्व रसमय निगूढ़ात्मक ग्रन्थ श्री महावाणी का विवेचन करने वालें एवं प्राकट्यकर्ता अनन्त श्री सम्पन्न "श्री श्री प्रियाशरण जी महाराज" से श्री रमेश बाबा महाराज ने शिष्यत्व ग्रहण किया। आपकी वाङ्गमय प्रतिभा इतनी असाधारण थी कि जब आप गहनतम रसयुत विषयों पर बोलने लगते तो बड़े-बड़े एकांत साधनरत विद्वज्जन अपनी कुटिया को त्यागकर कर्णों को श्रवणानन्द देने को बाध्य हो जाते।

श्री रमेश बाबा जी महाराज

गुण-गरिमागार, करुणा-पारावार, युगललब्ध-साकार इन विभूति विशेष गुरुप्रवर पूज्य बाबाश्री के विलक्षण विभा-वैभव के वर्णन का आद्यन्त कहाँ से हो यह विचार कर मंद मति की गति विथकित हो जाती है।

विधि हरि हर कवि कोविद बानी । कहत साधु महिमा सकुचानी ॥
सो मो सन कहि जात न कैसे । साक बनिक मनि गुन गन जैसे ॥

(रा.बा.का.दोहा.३क)

पुनरपि

जो सुख होत गोपालहि गाये ।
सो सुख होत न जप तप कीन्हे कोटिक तीरथ न्हाये ।

(सू. वि. प.)

अथवा

रस सागर गोविन्द नाम है रसना जो तू गाये ।
तो जड़ जीव जनम की तेरी बिगड़ी हू बन जाये ॥
जनम-जनम की जाये मलिनता उज्ज्वलता आ जाये ॥

(बाबा श्री द्वारा रचित - ब्र. भा. मा.से संग्रहीत)

कथनाशय इस पवित्र चरित्र के लेखन से निज कर व गिरा पवित्र करने का स्वसुख व जनहित का ही प्रयास है।

अध्येतागण अवगत हों इस बात से कि यह लेख, मात्र सांकेतिक परिचय ही दे पायेगा, अशेष श्रद्धास्पद (बाबाश्री) के विषय में । सर्वगुणसमन्वित इन दिव्य-विभूति का प्रकर्ष-आर्ष जीवन-चरित्र कहीं लेखन-कथन का विषय है?

"करनी करुणासिन्धु की मुख कहत न आवै"

(सू.वि. प.)

मलिन अन्तस् में सिद्ध संतों के वास्तविक वृत्त को यथार्थ रूप से समझने की क्षमता ही कहाँ, फिर लेखन की बात तो अतीव दूर है तथापि इन लोक-लोकान्तरोत्तर विभूति के चरितामृत की श्रवणाभिलाषा ने असंख्यों के मन को निकेतन कर लिया, अतएव सार्वभौम महत् वृत्त को शब्दबद्ध करने की धृष्टता की।

तीर्थराज प्रयाग को जिन्होंने जन्मभूमि बनने का सौभाग्य-दान दिया। माता-पिता के एकमात्र पुत्र होने से उनके विशेष वात्सल्यभाजन रहे । ईश्वरीय-योजना ही मूल हेतु रही आपके अवतरण में। दीर्घकाल तक अवतरित दिव्य दम्पति स्वनामधन्य श्री बलदेव प्रसाद शुक्ल (शुक्ल भगवान् जिन्हें लोग कहते थे) एवं श्रीमती हेमेश्वरी देवी को संतान-सुख अप्राप्य रहा, संतान-प्राप्ति की इच्छा से कोलकाता के समीप तारकेश्वर में जाकर आर्त पुकार की, परिणामतः सन् १९३० पौष मास की सप्तमी को रात्रि ९:२७ बजे कन्यारत्न श्री तारकेश्वरी (दीदी जी) का अवतरण हुआ, अनन्तर दम्पत्ति को पुत्र-कामना ने व्यथित किया। पुत्र-प्राप्ति की इच्छा से कठिन यात्रा कर रामेश्वर पहुँचे, वहाँ जलान्न त्याग कर शिवाराधन में तल्लीन हो गये, पुत्र कामेष्टि महायज्ञ किया। आशुतोष हैं रामेश्वर प्रभु, उस तीव्राराधन से प्रसन्न हो तृतीय रात्रि को माता जी को सर्वजगन्निवासावास होने का वर दिया । शिवाराधन से सन् १९३८ पौष मास कृष्ण पक्ष की सप्तमी तिथि को अभिजित मुहूर्त मध्याह्न १२ बजे अद्भुत बालक का ललाट देखते ही पिता (विश्व के प्रख्यात व प्रकाण्ड ज्योतिषाचार्य) ने कह दिया –

“यह बालक गृहस्थ ग्रहण न कर नैष्ठिक ब्रह्मचारी ही रहेगा, इसका प्रादुर्भाव जीव-जगत के निस्तार निमित्त ही हुआ है।”

वही हुआ, गुरु-शिष्य परिपाटी का निर्वाहन करते हुए शिक्षाध्ययन को तो गये किन्तु बहु अल्प काल में अध्ययन समापन भी हो गया।

"अल्पकाल विद्या बहु पायी"

गुरुजनों को गुरु बनने का श्रेय ही देना था अपने अध्ययन से। सर्वक्षेत्र कुशल इस प्रतिभा ने अपने गायन-वादन आदि ललित कलाओं से विस्मयान्वित कर दिया बड़े-बड़े संगीत-मार्तण्डों को। प्रयागराज को भी स्वल्पकाल ही यह सानिध्य सुलभ हो सका "तीर्थी कुर्वन्ति तीर्थानि" ऐसे अचिन्त्य शक्ति सम्पन्न असामान्य पुरुष का। अवतरणोद्देश्य की पूर्ति हेतु दो बार भागे जन्मभूमि छोड़कर ब्रजदेश की ओर किन्तु माँ की पकड़ अधिक मजबूत होने से सफल न हो सके। अब यह तृतीय प्रयास था, इन्द्रियातीत स्तर पर एक ऐसी प्रक्रिया सक्रिय हुई कि तृणतोड़नवत् एक झटके में सर्वत्याग कर पुनः गति अविराम हो गई ब्रज की ओर।

चित्रकूट के निर्जन अरण्यों में प्राण-परवाह का परित्याग कर परिभ्रमण किया, सूर्यवंशमणि प्रभु श्रीराम का यह वनवास स्थल पूज्यपाद का भी वनवास स्थान रहा। "स रक्षिता रक्षति यो हि गर्भे" इस भावना से निर्भीक घूमे उन हिंसक जीवों के आतंक संभावित भयानक वनों में।

आराध्य के दर्शन को तृषान्वित नयन, उपास्य को पाने के लिए लालसान्वित हृदय अब बार-बार पाद-पद्मों को श्रीधाम बरसाने के लिए ढकेलने लगा, बस पहुँच गए बरसाना। मार्ग में अन्तस् को झकझोर देने वाली अनेकानेक विलक्षण स्थितियों का सामना किया। मार्ग का असाधारण घटना संघटित वृत्त यद्यपि अत्यधिक रोचक, प्रेरक व पुष्कल है तथापि इस दिव्य जीवन की चर्चा स्वतन्त्र रूप से भिन्न ग्रन्थ के निर्माण में ही सम्भव है अतः यहाँ तो संक्षिप्त चर्चा ही है। बरसाने में आकर तन-मन-नयन आध्यात्मिक मार्गदर्शक के अन्वेषण में तत्पर हो गए। श्रीजी ने सहयोग किया एवं निरंतर राधारससुधा सिन्धु में अवस्थित, राधा के परिधान में सुरक्षित, गौरवर्णा की शुभ्रोज्ज्वल कान्ति से आलोकित-अलंकृत

युगल सौख्य में आलोडित, नाना पुराणनिगमागम के ज्ञाता, महावाणी जैसे निगूढ़ात्मक ग्रन्थ के प्राकट्यकर्ता “अनन्त श्री सम्पन्न श्री श्री प्रियाशरण जी महाराज” से शिष्यत्व स्वीकार किया।

ब्रज में भामिनी का जन्म स्थान बरसाना, बरसाने में भामिनी की निज कर निर्मित गहवर वाटिका "बीस कोस वृन्दाविपिन पुर वृषभानु उदार, तामें गहवर वाटिका जामें नित्य विहार" और उस गहवरवन में भी महासदाशया मानिनी का मन-भावन मान-स्थान श्री मानमंदिर ही मानद (बाबाश्री) को मनोनुकूल लगा। मानगढ़, ब्रह्माचलपर्वत की चार शिखरों में से एक महान शिखर है। उस समय तो यह बीहड़ स्थान दिन में भी अपनी विकरालता के कारण किसी को मंदिर प्रांगण में न आने देता। मंदिर का आंतरिक मूल स्थान चोरों को चोरी का माल छिपाने के लिए था। चौराग्रगण्य की उपासना में इन विभूति को भला चोरों से क्या भय?

भय को भगाकर भावना की – "तस्कराणां पतये नमः" – चोरों के सरदार को प्रणाम है, पाप-पंक के चोर को भी एवं रकम-बैंक के चोर को भी। ब्रजवासी चोर भी पूज्य हैं हमारे, इस भावना से भावित हो द्रोहार्हणों (द्रोह के योग्य) को भी कभी द्रोहदृष्टि से न देखा, अद्वेष्टा के जीवन्त स्वरुप जो ठहरे। फिर तो शनैः-शनैः विभूति की विद्यमत्ता ने स्थल को जाग्रत कर दिया, अध्यात्म की दिव्य सुवास से परिव्याप्त कर दिया।

जग-हित-निरत इस दिव्य जीवन ने असंख्यों को आत्मोन्नति के पथ पर आरूढ़ कर दिया एवं कर रहे हैं। श्रीमन् चैतन्यदेव के पश्चात् कलिमलदलनार्थ नामामृत की नदियाँ बहाने वाली एकमात्र विभूति के सतत् प्रयास से आज ३२ हजार से अधिक गाँवों में प्रभातफेरी के माध्यम से नाम निनादित हो रहा है। ब्रज के कृष्ण लीला सम्बंधित दिव्य वन, सरोवर, पर्वतों को सुरक्षित करने के

साथ-साथ सहस्त्रों वृक्ष लगाकर सुसज्जित भी किया। अधिक पुरानी बात नहीं है, आपको स्मरण करा दें, सन् २००९ में "श्रीराधारानी ब्रजयात्रा" के दौरान ब्रजयात्रियों को साथ लेकर स्वयं ही बैठ गये आमरण अनशन पर, इस संकल्प के साथ कि जब तक ब्रज-पर्वतों पर हो रहे खनन द्वारा आघात को सरकार रोक नहीं देगी, मुख में जल भी नहीं जायेगा। समस्त ब्रजयात्री भी निष्ठापूर्वक अनशन लिए हुए हरिनाम-संकीर्तन करने लगे और उस समय जो उद्दाम गति से नृत्य-गान हुआ, नाम के प्रति इस अटूट आस्था का ही परिणाम था कि १२ घंटे बाद ही विजयपत्र आ गया। दिव्य विभूति के अपूर्व तेज से साम्राज्य सत्ता भी नत हो गयी। गौवंश के रक्षार्थ गत् ६ वर्ष पूर्व माताजी गौशाला का बीजारोपण किया था, देखते ही देखते आज उस वट बीज ने विशाल तरु का रूप ले लिया, जिसके आतपत्र (छाया) में आज 35,000 से अधिक गायों का मातृवत् पालन हो रहा है। संग्रह परिग्रह से सर्वथा परे रहने वाले इन महापुरुष की भगवन्नाम ही एकमात्र सरस सम्पत्ति है।

यही करुणा करना करुणामयी मम अंत होय बरसाने में ।
पावन गह्वरवन कुञ्ज निकट रज में रज होय मिलूँ ब्रज में ॥

(बाबा श्री द्वारा रचित – ब्र.भा.मा. से संग्रहीत)

परम विरक्त होते हुए भी बड़े-बड़े कार्य संपादित किये इन ब्रज संस्कृति के एकमात्र संरक्षक, प्रवर्द्धक व उद्धारक ने। गत षष्टि (६०) वर्षों से ब्रज में क्षेत्रसन्यास (ब्रज के बाहर न जाने का प्रण) लिया एवं इस सुदृढ़ भावना से विराज रहे हैं। ब्रज, ब्रजेश व ब्रजवासी ही आपका सर्वस्व हैं। असंख्यों आपके सान्निध्य-सौभाग्य से सुरभित हुये, आपके विषय में जिनके विशेष अनुभव हैं, विलक्षण अनुभूतियाँ हैं, विविध विचार हैं, विपुल भाव साम्राज्य है, विशद अनुशीलन हैं, इस लोकोत्तर व्यक्तित्व ने विमुग्ध कर दिया है विवेकियों का हृदय। वस्तुतः कृष्णकृपालब्ध पुमान् को ही गम्य हो

सकता है यह व्यक्तित्व। रसोदधि के जिस अतल-तल में आपका सहज प्रवेश है, यह अतिशयोक्ति नहीं कि रस ज्ञाताओं का हृदय भी उस तल से अस्पृष्ट ही रह गया।

आपकी आंतरिक स्थिति क्या है, यह बाहर की सहजता, सरलता को देखते हुए सर्वथा अगम्य है । आपका अन्तरंग लीलानंद, सुगुप्त भावोत्थान, युगल मिलन का सौख्य इन गहन भाव-दशाओं का अनुमान आपके सृजित साहित्य के पठन से ही संभव है। आपकी अनुपम कृतियाँ – श्री रसिया रासेश्वरी, स्वर वंशी के शब्द नूपुर के, ब्रजभावमालिका, भक्तद्वय चरित्र इत्यादि हृदयद्रावी भावों से भावित कृतियाँ हैं।

आपका त्रैकालिक सत्संग अनवरत चलता ही रहता है । साधक-साधु-सिद्ध सबके लिए सम्बल हैं आपके त्रैकालिक रसार्द्रवचन। दैन्य की सुरभि से सुवासित अद्भुत असमोर्ध्व रस का प्रोज्ज्वल पुंज है यह दिव्य रहनी, जो अनेकानेक पावन आध्यात्मास्वाद के लोभी मधुपों का आकर्षण केंद्र बन गयी । सैकड़ों ने छोड़ दिए घर-द्वार और अद्यावधि शरणागत हैं । ऐसा महिमान्वित-सौरभान्वित वृत्त विस्मयान्वित कर देने वाला स्वाभाविक है।

रस-सिद्ध-संतों की परम्परा इस ब्रजभूमि पर कभी विच्छिन्न नहीं हो पायी । श्रीजी की यह गह्वर वाटिका जो कभी पुष्पविहीन नहीं होती, शीत हो या ग्रीष्म, पतझड़ हो या पावस, एक न एक पुष्प तो आराध्य के आराधन हेतु प्रस्फुटित ही रहता है। आज भी इस अजरामर, सुन्दरतम, शुचितम, महत्तम, पुष्प (बाबाश्री) का जग स्वस्तिवाचन कर रहा है । आपके अपरिसीम उपकारों के लिए हमारा अनवरत वंदन, अनुक्षण प्रणति भी न्यून है।

प्रार्थना है अवतरित प्रीति-प्रतिमा विभूति से कि निज पादाम्बुजों का अनुगमन करने की शक्ति हम सबको प्रदान करें।

☀ चरणों की शरण ☀

अपने इष्ट के चरणों से अनुराग करो।

भगवान् के चरणों की शरण में गये बिना किसी भी साधन से माया को नहीं जीता जा सकता, क्योंकि एक तो ये माया दुस्तर है, दूसरा हमारा साधन भी सीमित है। किन्तु यदि भगवान् की कृपा दृष्टि पड़ जाये तो निश्चित वहाँ से माया भाग जायेगी। भगवान् का स्वभाव है कि वो अपने आश्रित के दोष नहीं देखते और यदि उसमें थोड़ा-सा भी गुण होता है तो प्रभु उसी से रीझ जाते हैं।

तुम पापी हो, पुण्यात्मा हो, भले हो, बुरे हो, ये सब मत सोचो; ऐसा सोचना तुम्हें दुर्बल बना देगा। केवल प्रभु के चरणों का ध्यान करो, उनके चरणों के आश्रय से अनन्त पाप नष्ट हो जाते हैं। हमें सिर्फ इतना सोचना है कि हम उनके चरणों में कैसे जायें? महत्व भले या बुरे का नहीं है अपितु इस बात का है कि हम जैसे भी हैं प्रभु के हैं। इसी बात को सूरदास जी ने अपने पद में कहा कि –

जो हम भले बुरे सो तेरे ।
सब तजि तुव सरनागत आयौ, दृढ़ करि चरन गहेरे ॥

हम किसी और के नहीं हैं। हमको किसी और से लेना देना नहीं है। भगवान् का तो विरद है कि चाहे कोई सारे संसार का द्रोही है, सारे संसार की हत्या करके आया है, तब भी उसे नहीं त्यागते।

सरन गएँ प्रभु ताहु न त्यागा ।
बिस्व द्रोह कृत अघ जेहि लागा ॥

(रा.च.मा.सुन्दर. ३९)

तुमने सुना होगा कि एक बार अमेरिका ने जापान में बम गिराया था। जो व्यक्ति हवाई जहाज से बम को गिराने के लिए गया था, जब उसने बम गिरा दिया तो वो दूर से दूरबीन में देखने लगा कि क्या हुआ? वहाँ से उसने देखा कि लाखों लोग तड़प रहे हैं। जहरीली गैस से लोगों का दम घुट रहा है और वे तड़प-तड़प कर मर रहे हैं तो यह देखकर वह व्यक्ति पागल हो गया क्योंकि उसने विश्व-द्रोह किया था।

भगवान् कहते हैं कि अगर तुम इतने बड़े पापी भी हो कि विश्व-द्रोह करके आये हो, परन्तु यदि तुम मेरी शरण में आ जाओ तो तुरन्त उसी समय क्षमा कर दिये जाओगे। भगवान् इतने बड़े क्षमाशील हैं कि तुम जैसे भी हो यदि भगवान् की शरण में आ गये तो जैसे लोहा पारस के स्पर्श से सोना बन जाता है वैसे ही तुम भी उसी समय सोना बन जाओगे अर्थात् तुम्हारे सब पाप नष्ट हो जाएँगे। सूरदास जी कहते हैं –

बड़ी है राम-नाम की ओट ।
सरन गएँ प्रभु काढ़ि देत नहिं, करत कृपा की कोट ॥
बैठत सबै सभा हरि जू की, कौन बड़ौ को छोट ॥
सूरदास पारस के परसैं, मिटति लोह की खोट ॥

एक तो ये मार्ग है कि गुणों का अर्जन करते हुए भक्ति करो। परन्तु दूसरा मार्ग प्रह्लाद जी कहते हैं कि अपने इष्ट के चरणों की आराधना करो, गुण तो तुम्हारे अन्दर स्वतः ही आ जायेंगे। अतः

गुणों का भी आश्रय मत करो। गुण अपने देवताओं सहित स्वतः चले आयेंगे सिर्फ अपने इष्ट के चरणों में अनुराग करो।

☀ प्रभु की कृपा ☀

प्रभु कृपा करके सब आसक्तियों को लूट लेते हैं।

अन्धा आँख प्राप्ति को प्रभु की कृपा समझता है, गरीब धन प्राप्ति को प्रभु की कृपा समझता है, रोगी निरोग होने को प्रभु की कृपा समझता है; किन्तु ये सब धोखा है, ये सब प्रभु की कृपा नहीं है, प्रभु जिस पर कृपा करते हैं उसे अपनी शरण में ले लेते हैं और उस जीव की सब आसक्तियों को लूट लेते हैं, तब जीव एकमात्र प्रभु का आश्रय लेता है। यही प्रभु की सच्ची कृपा है।

भगवान् की कृपा और माया की कृपा; जीव पर ये दो कृपा होती रहती हैं। इन दोनों कृपाओं में बहुत अंतर है। माया जब खुश होकर कृपा करती है तो धन-दौलत, मान-सम्मान दे देती है। माया की कृपा से 'मैं-मेरा' के भाव जागृत हो जाते हैं। ध्रुव जी ने भगवान् से कहा कि जब आप कृपा करते हैं तो धन आदि देने से पहले 'मैं-मेरा' की वृत्ति हटा देते हैं।

प्रभु ने सुदामा जी को धन तो दिया परन्तु देने से पहले उनमें 'मेरा-तेरा' की भावना बिल्कुल खत्म कर दी। भगवान् अपने भक्त

का सदा भला चाहते हैं। नारद जी ने भगवान् को नारी-विरह का श्राप दिया परन्तु भगवान् ने नारद जी का कल्याण ही किया, उन पर रुष्ट नहीं हुए।

भगवान् तीन तरह से कृपा करते हैं। एक कृपा साक्षात् दर्शन देकर करते हैं, दूसरी कृपा मन से मंगल चाहकर करते हैं, जैसे कि अनेक निमित्त बना देना, बिना किसी प्रयत्न के कार्य बना देना और तीसरी कृपा संस्पर्श से करते हैं; जैसे मछली अण्डे को दूर से देखती है और उसका पालन करती है। कछुआ दूर से ही अपने अण्डे का चिंतन करता है, इसी से अण्डे का पालन होता है और वह बढ़ता है।

सूर्य कभी नहीं पूछता कि अन्धकार कितना पुराना है? अन्धकार आज का है या वर्षों पुराना है। सूर्य की किरणें तो अन्धकार के पास पहुँचते ही उसे मिटा देती हैं। ऐसे ही ***प्रभु की कृपा कभी यह नहीं पूछती कि सामने वाला कितना बड़ा पापी है? प्रभु की कृपा होते ही जीव के समस्त पाप व कष्ट मिट जाते हैं।*** अगर प्रभु की करुणा पाना चाहते हो तो अपनी 'अहंता' को निकाल दो।

☀ आसक्ति ☀

प्रभु को यदि पाना है तो सब आसक्तियों को छोड़ दो।

भक्तिरसामृतसिंधु में आता है कि कामना ही राक्षसी है, यह जानता हुआ भक्त भगवान् की भक्ति के अलावा और कोई भी कामना नहीं करता। प्रभु को यदि पाना है तो सब आसक्तियों व कामनाओं को छोड़ दो, प्रभु शीघ्र मिल जायेंगे।

जिसे एक गिलास पानी की भी आवश्यकता न हो और न ही किसी से बात करने या बोलने की अपेक्षा हो, वह भक्त शान्त और

निर्भय हो जाता है। जैसे वर्षा पड़ने पर घास स्वतः उत्पन्न हो जाती है, उसी तरह आसक्तियों व कामनाओं को छोड़ने पर चारों ओर फिर प्रभु ही दिखाई देंगे। ***बिना आसक्ति छोड़े भगवद्भजन नहीं होता।***

आसक्ति की रस्सी दिखाई नहीं देती है परन्तु वह इतनी लम्बी होती है कि उसकी कोई सीमा नहीं है। आप अमेरिका में बैठे हैं और आसक्ति की रस्सी वहीं से बाँधकर आपको ले आयेगी। साधक को अपनी वृत्तियों को बचाकर रखना चाहिए। यदि वृत्तियाँ बँट गयीं तो साधक लुट जायेगा। वृत्तियों के बँटने के बाद कुछ भी जप, तप व पाठ आदि करते रहो कुछ नहीं मिलने वाला। अपनी वृत्तियों को सब जगह से हटाकर एक श्रीकृष्ण में लगा दो। जब तक कहीं भी आसक्ति है, चाहे थोड़ी ही क्यों न हो, तब तक वहाँ श्रीकृष्ण प्रेम नहीं होता है।

प्रेम की उत्पत्ति तब ही होती है, जब जीव सब आसक्तियों को छोड़ देता है। इसलिए गोपियों ने श्रीकृष्ण से कहा था कि हम सब कुछ छोड़कर तुम्हारे पास आयीं हैं। अपनी सब आसक्तियों को छोड़कर आयीं हैं। क्यों छोड़कर आयीं हैं? तुम्हारी उपासना की आशा से।

मैवं विभोऽर्हति भवान् गदितुं नृशंसं
सन्त्यज्य सर्वविषयांस्तव पादमूलम् ।
भक्ता भजस्व दुरवग्रह मा त्यजास्मान्
देवो यथाऽऽदिपुरुषो भजते मुमुक्षून् ॥

(भा. १०/२९/३१)

देवहूति जी ने कहा –

सङ्गो यः संसृतेर्हेतुरसत्सु विहितोऽधिया ।
स एव साधुषु कृतो निःसङ्गत्वाय कल्पते ॥

(भा. ३/२३/५५)

आसक्ति बहुत खराब चीज है परन्तु आसक्ति से अच्छी वस्तु भी कोई नहीं। ***यदि आसक्ति महापुरुषों में हो जाय तो निश्चित कल्याण हो जाता है।*** अगर आसक्ति संसार से नहीं छूटती है तो इसको महापुरुषों से बाँध दो, तुम्हारा अवश्य कल्याण हो जायेगा।

☀ कामना रूपी सर्प ☀

कामना के रहते तो जीव को सपने में भी सुख नहीं मिल सकता। प्रह्लाद जी ने कहा –

एवं जनं निपतितं प्रभवाहिकूपे
कामाभिकाममनु यः प्रपतन्प्रसङ्गात्।
कृत्वाऽऽत्मसात् सुरर्षिणा भगवन् गृहीतः
सोऽहं कथं नु विसृजे तव भृत्यसेवाम्॥

(भा. ७/९/२८)

ये संसार सर्पों का कूप है, जिसमें जीव घुसता जा रहा है। जैसे-जैसे कामना को भोगता जाता है वैसे-वैसे और कामनाएँ आती जाती हैं और ***यह कामना रूपी सर्प एक दिन जीव को सम्पूर्ण रूप से खा जाता है।***

कामना के रहते तो जीव को सपने में भी सुख नहीं मिल सकता। 'काम' जीव को अति दीन बना देता है। प्रह्लाद जी ने भगवान् से यही वरदान माँगा था कि मेरे हृदय में कभी भी कामना उत्पन्न न हो क्योंकि कामना आते ही बारह प्रकार की शक्तियाँ इन्द्रिय, मन, धृति आदि सब नष्ट हो जाती हैं।

यदि रासीश मे कामान् वरांस्त्वं वरदर्षभ।
कामानां हृद्यसंरोहं भवतस्तु वृणे वरम्॥

(भा. ७/१०/७)

भगवद्-भजन करने से पहले मन व संसार से असंग हो जाना बहुत जरूरी है, नहीं तो तुम्हारा भजन चमत्कारी या लाभप्रद नहीं

होगा। माता-पिता, स्त्री-पुरुष, बाल-बच्चे, सबका शरीर अलग-अलग है फिर भी हम आसक्ति के कारण सबको अपना-पराया मान बैठे हैं। आसक्ति दो मिथ्या वस्तुओं का सम्बन्ध जोड़ देती है।

जब अपना शरीर ही अपना नहीं हो सकता, तब दूसरे का शरीर अपना कैसे होगा? आश्रम अपना कैसे होगा...? धन- दौलत अपनी कैसे होगी...? ये सब मिथ्या हैं। ये सब विनाशकारी हैं। असंगता रूपी तलवार से आसक्ति को काटना है। जब तक जीव अपने शरीर की सत्ता को माने बैठा है तब तक वह अज्ञानी है। सत्ता एक परमात्मा की ही है। महर्षि दधीचि ने अपनी सत्ता को मिटाकर तुरन्त अपना शरीर दान दे दिया। जो भक्त है वह कभी भी अपनी सत्ता को नहीं बनाएगा। सत्ता केवल एक परमात्मा की है। जो अपनी सत्ता जमाने की कोशिश कर रहा है वह तो महामूर्ख है। हम सोचते हैं कि हमारे पास शक्ति है। हमारे पास शक्ति कहाँ है...? जब हम अपने ही शरीर की एक छोटी-सी भी क्रिया को नहीं रोक सकते तो हम अपनी सत्ता कैसे जमा सकते हैं?

अपना जीवन झूठी कमाई कमाने में मत लगाओ। उस कमाई को कमाओ जो कभी भी नष्ट नहीं होती। संसार की हर वस्तु तुमसे अलग होने वाली है, भक्ति ही एक ऐसी कमाई है जो कभी भी नष्ट नहीं होती है।

☀ संत की महिमा ☀

संत भगवान् को बहुत प्रिय होते हैं।

संत तो करुणा के समुद्र होते हैं। संत कृपा नहीं करते अपितु संत का तो स्वभाव ही सहज कृपा करना है। संत ऐसे कृपा करते हैं जैसे अग्नि बिना चाहे ही प्रकाश और गर्मी स्वतः प्रदान करती है। ऐसे क्षमाशील व परोपकारी संतों के हृदय में भगवान् विराजते हैं। ऐसे संत जब सत्संग या वार्ता करते हैं तो उनके मुख से जो वाणी निकलती है, वह उनके हृदय में विराजमान प्रभु के चरण-कमलों का स्पर्श करके आती है, वह वाणी सुनने वाले को भक्त बना देती है।

राम सिंधु घन सज्जन धीरा ॥

बादल समुद्र से जल को लेकर सबके कल्याण के लिए वर्षा करते हैं। समुद्र स्वयं नहीं आता सभी के पास, उसका जल बादलों के द्वारा ही पहुँचता है। बादल सबको जीवन-दान देता है। बादल सबसे बड़ा परोपकारी संत है। इसी तरह भगवान् स्वयं समुद्र हैं और संत बादल हैं। यदि संत नहीं हों तो संसार को भगवत्तत्त्व का लाभ नहीं मिल सकता। जैसे समुद्र की उपयोगिता बादलों पर निर्भर करती है, वैसे ही भगवान् की संतों पर। ***जन्म तो उसी का सफल है जो स्वयं कष्ट सहकर भी परोपकार करता है।*** संतो के तन, मन, बुद्धि, वाणी सब कुछ दूसरों के लिए होते हैं।

जैसे – वृक्ष स्वयं फल नहीं खाते, अपने फल दूसरों को दे देते हैं और स्वयं आँधी, पानी, शीत सहकर भी आश्रितों की रक्षा करते हैं। वृक्ष जीते जी तो परोपकार करते ही हैं परन्तु मरने के बाद भी परोपकार करते हैं। उनका अंग-अंग परहित के काम आता है। इसी तरह नदियों व मेघों का पानी सब दूसरों के लिए होता है। ***संत वही है जिसके पास अपने लिए कुछ भी न हो, सब दूसरों के लिए हो।*** यही संतों की परिभाषा है।

दो चीजें होती हैं – नेत्र और प्रकाश। यदि हमारे पास नेत्र हैं और प्रकाश नहीं है तो नेत्रों का कोई फायदा नहीं और यदि प्रकाश है पर नेत्र नहीं हैं तो प्रकाश का भी कोई फायदा नहीं। दोनों का लाभ परस्पर निर्भर है। संतो से हमें ये दोनों ही चीजें मिल जाती हैं इसीलिए संत भगवान् को बहुत प्रिय होते हैं।

तीर्थ तो केवल शरीर के पाप ही धो सकते हैं परन्तु ऐसे संत मन के पापों को भी धो देते हैं। संत तो चलते-फिरते तीर्थ हैं। भगवान् ने स्वयं कहा है –

देवाः क्षेत्राणि तीर्थानि दर्शनस्पर्शनार्चनैः ।
शनैः पुनन्ति कालेन तदप्यर्हत्तमेक्षया ॥

(भा. १०/८६/५२)

देव-दर्शन, तीर्थ-दर्शन आदि से तभी लाभ होगा जब आप सत्संग करेंगे। सत्संग से चिपके रहोगे तो तुम्हारे सब पाप, अशुभ, कष्ट, भोग आदि सब नष्ट हो जायेंगे। जैसे – पेड़ की जड़ें दिखाई नहीं देतीं पर वो आस-पास का सब पानी खींच लेती हैं। उसी तरह विषय मन में घुसकर सब कुछ लूट लेते हैं और जीव को पता भी नहीं चलता। मन तो विषयों को छोड़ना ही नहीं चाहता, फिर मन अंतर्मुख कैसे हो? भगवान् ने कहा कि मन इस तरह से अंतर्मुख हो सकता है, जैसे कोई जीव दलदल में फँस गया है वह जितना हाथ-पाँव मारेगा उतना ही दलदल में और घुसता चला जायेगा। वैसे ही

जितना साधन करोगे उतना ही दलदल में और घुसते ही जाओगे लेकिन अगर एक तीसरा आदमी एक रस्सी उस दलदल में फँसे जीव को फेंक दे तो वह दलदल से बाहर निकल सकता है। जो तीसरा तत्त्व है वह है भगवान्; जो रस्सी है वो हैं संत।

भगवान् कृपा करके संत रूपी रस्सी को जीव के पास अगर भेज दें तो उसका निश्चित कल्याण हो जाता है। ***जिनके पास बैठते ही भगवान् का यश सुनने को मिले, समझ लीजिये वे संत हैं।*** संत की तो वायु का स्पर्श भी यदि किसी जड़-चेतन को हो जाय तो वे भी भगवद्रति पा जाते हैं। उनके प्रभाव से सब कृष्णमय हो जाता है। ऐसे संत के पास रहने से, बिना कुछ किये ही सहज भक्ति आ जाती है।

वास्तव में यदि कोई महापुरुष मिल जाय तो उनकी सन्निधि में चाहे कोई भी साधन किया जाय, वही श्रेष्ठ है। संत के संग से ही धाम, नाम व सेवा का लाभ मिलेगा। इसलिए ***स्वतंत्र मत रहो, धाम में भी संतो के आश्रय में ही रहो।*** संतो के संग से श्रद्धा बढ़ती रहेगी और श्रद्धा ही सब पापों का नाश करती है। महापुरुषों के सानिध्य में किया गया धाम-वास, नाम-सेवन व इष्ट-सेवा अनन्त कल्याणदायी हो जायेंगे।

ऐसे लोगों का संग नहीं करना चाहिए जो स्वयं कामनाओं के भूखे हों। एक सिद्धान्त है – 'तीर्णास्तारयन्ति' अर्थात् जो खुद तर गया है वही दूसरों को तार सकता है। जो स्वयं डूब रहा है, वह हमें क्या बचायेगा? वह तो हमें भी डुबो देगा। ऐसे लोगो का संग न करके सच्चे महापुरुष के साथ ही रहना चाहिए जिनका चित्त प्रभु में लगा हुआ है। ***जिन महापुरुषों का चित्त भगवान् में लगा हुआ है वे ही हमें प्रभु से मिला सकते हैं;*** क्योंकि उनके श्रीअंगों से ऐसी किरणें निकलती रहती हैं जो हमारी समस्त आसक्तियों को छुड़ा देती हैं।

☀ सेवा-भाव ☀

जिस वृत्ति से श्री-हरि प्रसन्न होते हैं, वह है सेवा-भाव।

सेवा एक ऐसी चीज है कि मनुष्य-जीवन की सार्थकता भगवद्सेवा और भक्त-सेवा में ही निहित है।

कबीरदास जी कहते हैं –

कबिरा यह तन जात है, सके तो ठौर लगाय।
कै सेवा कर साधु की, कै हरि के गुण गाय॥

ये सब बातें केवल हमारे ग्रंथों में मात्र कही ही नहीं गयी हैं, प्रत्युत भगवान् ने स्वयं लोकादर्श के लिए सब करके दिखाया है।

भक्तमालजी में माधवदासजी की कथा आती है – एक बार इनको संग्रहणी रोग हो गया, संग्रहणी में बार-बार मल त्याग होता है। संग्रहणी से इनका शरीर बहुत दुर्बल हो गया था तो ये समुद्र के किनारे जाकर लेट गये क्योंकि इनके शरीर में इतनी भी शक्ति नहीं रही कि मल को धो लें। अर्द्धरात्रि का समय था, भगवान् एक छोटे से बालक का रूप बनाकर आये और माधवदासजी का मल धोने लगे। माधवदासजी ने कहा – "भाई! तुम कौन हो?" प्रभु बोले – "बाबा! मैं यहीं पास के गाँव का हूँ। मैंने देखा, आपकी सेवा में कोई नहीं है तो चला आया।"

माधवदासजी समझ गये कि आधी रात को कहाँ से लड़का आयेगा और वो भी समुद्र के पास; वैसे भी रात्रि के समय जगन्नाथ पुरी में तो समुद्र की बड़ी भीषण गर्जना होती है। यह सोचकर उन्होंने हाथ पकड़ लिया, बोले – "प्रभो! क्यों झूठ बोलते हो? मैं सब जानता हूँ कि आप कौन हैं? प्रभो! आपने यहाँ आने का कष्ट क्यों किया और फिर आपने इतना निकृष्ट मल धोने का काम क्यों किया? आप वहीं से बैठे-बैठे मेरी बीमारी को दूर कर देते।" प्रभु

बोले – "माधव दास जी ! यदि मैं आपकी बीमारी वहीं से बैठा-बैठा दूर कर देता तो मुझे आपकी सेवा का अवसर कैसे मिलता?"

स्वयं भगवान् ने सेवा करके यह दिखाया कि सेवा केवल एक साधन ही नहीं है अपितु वो एक मानसिक पापों व तापों को धोने वाली गंगा है। ***भागीरथी गंगा तो केवल शारीरिक पाप नष्ट कर सकती है किन्तु सेवा-गंगा शारीरिक-पापों के अलावा मानसिक-पापों का भी शमन कर देती है।*** शुकदेव जी महाराज ने कहा है –

तैस्तान्यघानि पूयन्ते तपोदानजपादिभिः ।
नाधर्मजं तद्धृदयं तदपीशाङ्घ्रिसेवया ॥

(भा. ६/२/१७)

तप, दान, जप आदि से पाप तो नष्ट हो जायेंगे किन्तु पापों ने जो हृदय को मलिन कर दिया है वो जप, दान, तप आदि के द्वारा भी शुद्ध नहीं हो सकता है, वह केवल भगवद्-भागवत चरणों की सेवा से ही शुद्ध होगा।

लेकिन सेवा में सात बातें ग्राह्य और सात त्याज्य बताई गयीं हैं, इनमें से जो सात चीजें ग्राह्य हैं, उनमें सबसे पहली चीज है – १. **विश्वास** – यदि विश्वास नहीं है तो सेवा की नींव समाप्त हो गयी। २. **अन्तःकरण की पवित्रता** – सेवा के लिए दूसरी आवश्यक वस्तु है आत्मशौच; कामना रहित अन्तःकरण ही शुद्ध है। ३. **गौरव** – छोटी से छोटी सेवा भी गौरव से की जाय। सेवा को छोटी समझकर हिचकना नहीं चाहिए बल्कि गौरव का अनुभव करना चाहिए। ४. **संयम** – इन्द्रियों का दमन। ५. **शुश्रूषा** – सदा सेवा की इच्छा बनी रहे। ६. **सौहार्द** – प्रेमपूर्वक सेवा की जाए। ७. **मधुर-भाषण**।

सात चीजें त्याज्य हैं – १. **काम** – सेवा में स्वार्थ सम्बन्धी कोई भी कामना नहीं होनी चाहिए। २. **दम्भ** – दिखावा नहीं होना

चाहिए। ३. **द्वेष** – द्वेष नहीं होना चाहिए। ४. **लोभ** – किसी प्रलोभ से सेवा नहीं करना चाहिए। भरत जी ने इस बात को कहा है –

जो सेवकु साहिबहि सँकोची।
निज हित चहइ तासु मति पोची॥
सेवक हित साहिब सेवकाई।
करै सकल सुख लोभ बिहाई॥

(रा.च.मा.अयो. २६८)

अर्थात् जो सेवक स्वामी को संकोच में डालकर अपना भला चाहता है, वह नीच बुद्धि वाला है। सच्चा सेवक वही है जो अपने सब सुख और लोभ को छोड़कर स्वामी की सेवा करे। इसलिए सेवा में लोभ भी बहुत बड़ा दोष है। ५. **मद** – सेवा करने के बाद मन में अहंकार नहीं होना चाहिए। ६. **अघ** – पाप। ७. **प्रमाद** – सेवा में मनुष्य को कभी भी आलस नहीं करना चाहिए।

भक्त को जितना लाभ सेवा से होता है, उतना अन्य किसी साधन से नहीं होता। अन्य साधन तो अहम् को जाग्रत कर देते हैं और सेवा से अहम् नष्ट हो जाता है। बिना सेवा किये न अहम् नष्ट होगा और न हृदय शुद्ध होगा।

हर प्राणी स्वामी बनना चाहता है, सेवक कोई नहीं बनना चाहता। इसलिए भगवान् की विशेष कृपा जिस पर होती है वो ही सेवा कर पाता है।

एक बार अकबर ने स्वामी हरिदास जी से कहा कि महाराज, कोई सेवा बतायें। उन्होंने उसे धाम की सेवा बताई और कहा कि यमुना जी के एक घाट का कोना टूट गया है, उसे बनवा दो। अकबर सोचने लगा कि एक छोटा-सा काम बताकर हमारा परिहास किया है। परन्तु जब वह उस घाट के टूटे हुए कोने को देखने गया तो उसने देखा कि सारा घाट दिव्य मणियों से बना हुआ है। उस

दिव्य मणिमय घाट को देखकर उसने जाना कि यह कोई छोटा कार्य नहीं है; इसे बनाना असम्भव है।

तब अकबर ने स्वामी हरिदास जी से कहा कि सारी दुनिया की सल्तनत बेचकर भी मैं वो कोना नहीं बना सकता। आप मेरे योग्य कोई सेवा बता दीजिए। तब स्वामी जी ने उसे मोर व बंदरों के लिए दाने डालने की सेवा दी। धाम की सेवा केवल भाव से ही की जा सकती है। जीव जब सेवा-परायण हो जाता है तब समझिये कि भक्ति वहाँ आ गयी है।

यथा तरोर्मूलनिषेचनेन तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखाः।
प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या॥

(भा. ४/३१/१४)

जिस तरह वृक्ष की जड़ में पानी देने से ही उसके डाल, पत्ते, फूल आदि सब सिंच जाते हैं। उसी तरह एकमात्र श्रीकृष्ण की सेवा कर लेने से अपने-आप माता-पिता, पुत्र-पुत्री, स्त्री-पति आदि सभी की सेवा हो जाती है। किसी भी पेड़ को सींचना है तो उसकी जड़ में पानी दे दो। जड़ में न देकर अगर इधर-उधर पानी छिड़कोगे तो फिर वह पेड़ सूख जाएगा। चतुर लोग पेड़ की जड़ में पानी देते हैं। उससे पत्ते, फूल, डाल, तने आदि सब में पानी चला जाता है। मुख्य प्राण में भोजन देने से हाथ, पाँव, सभी जगह ताकत पहुँच जाती है। कायदे से तो खीर आँख को भी खिलानी चाहिए क्योंकि आँख देखने का काम करती है, खीर कान में भी डालनी चाहिए क्योंकि कान सुनने का काम करता है परन्तु नहीं केवल मुख में भोजन दे दो तो बाकी सब अंगों में अपने-आप तृप्ति हो जायेगी। वैसे ही एकमात्र प्रभु की सेवा करने से अपने-आप सबकी सेवा हो जाती है। सेवा-भाव की उत्पत्ति श्रीराधारानी की कृपा का हेतु है। सेवा-भाव के बिना श्रीजी का प्रेम कभी नहीं मिलेगा।

☀ भाव ☀

भगवान् उस हृदय में रहते हैं, जिस हृदय में भावयोग से सफाई की गयी हो।

एक बार ब्रह्मा जी ने प्रभु से पूछा कि आप कहाँ रहते हो? कोई कहता है कि भगवान् बैकुण्ठ में रहते हैं और कोई कहता है कि प्रभु धाम में रहते हैं।

त्वं भावयोग परिभावित हृत्सरोज
आस्से श्रुतेक्षितपथो ननु नाथ पुंसाम् ।

(भा. ३/९/११)

भगवान् उसके हृदय में रहते हैं जिस हृदय में भावयोग से सफाई की गयी हो। अच्छी भावनाओं से हृदय को बुहारा गया हो।

निर्मल मन जन सो मोहि पावा ।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा ॥

(रा.च.मा.सुन्दर. ४४)

अगर तुम भगवान् से मिलना चाहते हो तो तुम कहीं मत जाओ। सिर्फ अपने मन को साफ करके सुंदर भावनाओं से सजा दो, प्रभु अपने-आप आ जायेंगे। रूप गोस्वामी जी ने भक्ति के ६४ अंग बताये हैं, परन्तु इतने अंगों की साधना कौन कर सकेगा? धाम निवास करने से, भक्त संग करने से या नाम निष्ठा से ६४ अंग पूरे

हो जाते हैं। इन सभी क्रियाओं में भाव का होना आवश्यक है। ***भाव के बिना कोई भी साधन 'भक्ति' नहीं देगा।***

इस शरीर को भगवान् का मन्दिर समझो। चराचर सब भगवान् का निवास स्थल है। तुलसीदासजी ने कहा था –

तुलसी या संसार में सबसे मिलिये धाय ।
ना जाने केहि बेष में नारायण मिल जाँय ॥

सर्वत्र प्रभु को देखो। प्रभु ही अनेक रूपों में हमारे सामने स्थित हैं। हर प्राणी को पवित्र दृष्टि से देखो। हर प्राणी का सम्मान करो। ये ही भगवान् की सच्ची पूजा है।

पता नहीं किस रूप में प्रभु के दर्शन हो जाएँ? जिन प्रभु की चितवन में इतना चमत्कार है कि जरा-सा देखने मात्र से ही अनन्त ब्रह्माण्डों की रचना हो जाती है, उनकी शक्ति का कोई क्या अनुमान लगा सकता है? भक्त दीवाना होता है और होना भी चाहिए क्योंकि जो अखिल ब्रह्माण्ड नायक है उसे पाना कोई खेल थोड़े ही है। भक्त न कहीं अच्छा देखता है और न कहीं बुरा देखता है। भक्त सबमें एक तत्त्व देखता है। भक्त अपना ध्यान केवल प्रभु के श्रीचरणों में केन्द्रित रखता है।

'अपने इष्ट की स्मृति बनी रहे' इससे बड़ा और कोई साधन नहीं है। श्रीकृष्ण-स्मृति के बिना सब साधन व समस्त कर्म व्यर्थ हैं। श्रीकृष्ण-स्मृति की डोर ऐसी अनन्त है कि उससे स्वयं श्रीकृष्ण बँधे चले आते हैं और फिर कभी नहीं जाते।

कौन-सी बात या वस्तु हमारे मन में द्वन्द्व उत्पन्न कर रही है, उसे पहिचान कर दूर करें।

द्वंद्वों से हमेशा डरते रहें। कौन-सी बात या वस्तु हमारे मन में द्वंद्व उत्पन्न कर रही है, उसे पहिचान कर दूर करें। संसार में सबके सामने सब तरह की परिस्थितियाँ आती हैं। दिन है तो रात अवश्य आयेगी। संसार में ऐसा कोई नहीं है, जिसके सामने विपरीत परिस्थितियाँ न आयीं हों।

भक्त को किसी भी योनि में जाना पड़े वो चिंता नहीं करता। राजा बलि गधा बन गये तो वहाँ इन्द्र पहुँच गये। इन्द्र ने पूछा कि बोलो कैसे हो? राजा बलि ने इन्द्र को जवाब दिया कि मैं तो यहाँ भी आनन्द में हूँ। अपनी भक्ति में स्थित हूँ और तुम अभी भी ईर्ष्या से जल रहे हो। भक्त कभी भी नहीं डरता, वह तो अपने में मस्त रहता है। काकभुशुण्डिजी कौआ बने, भगवान् शंकर रुद्र रूप छोड़कर बंदर बने।

'भक्ति' भावमयी है, 'भक्त' भाव में कुछ भी कर जाता है। भक्त किसी भी प्रकार की कोई भी चिंता नहीं करता। साधन में द्वन्द्व अवश्य आते हैं। साधक के सामने ऐसी परिस्थितियाँ आती हैं जो उसकी आस्था को झकझोर देती हैं। देवता स्वयं बाधा पहुँचाते हैं। वे विपरीत परिस्थितियाँ उत्पन्न करते रहते हैं परन्तु निष्ठा के साथ उपासना में लगे रहना चाहिए। यह विश्वास रखो कि इष्ट कभी भी रुष्ट नहीं होता। भगवान् बहुत उदार हैं। जैसे आँधी व तूफानों में भी पर्वत की चोटियाँ प्रभावित नहीं होतीं और कूटस्थ की भाँति खड़ी रहती हैं, उसी प्रकार भगवान् का भक्त किसी भी प्रकार की परिस्थिति हो सभी में आस्था से खड़ा रहता है।

☀ विश्वास ☀

कवनिउ सिद्धि कि बिनु बिस्वासा ।
बिनु हरि भजन न भव भय नासा ॥

(रा.च.मा.उत्तर. ९०)

भगवान् से मिलने का एक ही रास्ता है वह है विश्वास। बिना विश्वास के प्रभु से नहीं मिला जा सकता। बिना विश्वास के कोई भी साधन फल नहीं देगा। भगवान् एक विश्वास हैं। प्रभु सर्वत्र हैं परन्तु ऐसी आस्था अभी हमारे हृदय में बैठी नहीं है। हमारे पाप ही हमारे अन्दर सन्देह पैदा करते हैं।

तस्मादज्ञानसम्भूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः ।
छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत ॥

(गी. ४/४२)

विश्वास पूर्वक प्रभु स्मरण करने में अनन्त शक्ति है। हम मुसीबत के कारण प्रभु स्मरण करते हैं, सहज में नहीं। शुद्ध स्मरण में कोई भी कारण नहीं होता। विश्वास के आगे प्रभु हार जाते हैं। कबीरदासजी सारी उम्र काशी में रहे, परन्तु उन्होंने अपना शरीर मगहर में जाकर छोड़ा। उस जगह पर जाकर छोड़ा, जहाँ पर कहते हैं कि शरीर छोड़ने से नरक मिलता है। उन्होंने कहा – **"जो कबिरा काशी मरै रामहि कौन निहोरा।"** ऐसा दृढ़ विश्वास था उनका। उन्होंने अपने एक पद में लिखा भी है –

"कहत कबीर सुनो भाई साधो, मैं तो रहूँ विश्वास में ।"

विश्वास रखो कि प्रभु हमारे हैं। हम सौ बार भी गिरेंगे तो प्रभु सौ बार उठायेंगे । कोई भी साधक जान-बूझकर गलत कर्म नहीं करता है। गलत कर्म हो जाता है। समर्पण की भावना से प्रभु के लिए कर्म करो। समर्पण की भावना एक दिन तुम्हारे मन को अवश्य शुद्ध कर देगी। उद्धार कर्म नहीं करेगा, उद्धार तो प्रभु का आश्रय ही

करेगा। भक्त कभी गिरता है तो उसी क्षण गिरकर तुरन्त उठ जाता है और फिर से ज्ञान सम्पन्न हो जाता है।

रजस्तमोभ्यां यदपि विद्वान् विक्षिप्तधीः पुनः ।
अतन्द्रितो मनो युञ्जन् दोषदृष्टिर्न सज्जते ॥

(भा. ११/१३/१२)

रज व तम सबके ऊपर हावी होते तो हैं परन्तु साधक या भक्त पतन के समय पर भी उचित व अनुचित का ज्ञान रखते हैं। इसी कारण वे शीघ्र उठ जाते हैं और तुरन्त साधन में फिर लग जाते हैं। गिरना कोई बड़ी बात नहीं हैं परन्तु गिरकर उठ जाना बड़ी बात है।

☀ भक्ति को नापने का थर्मामीटर ☀

हमारे भीतर ऐसी कौन-सी चीजें हैं जो हमें भगवान् से मिलने नहीं देती। अपने भीतर घुसो। अपने अंदर ही विकार बनते हैं। जितना हमारा मन संसार में है उतना ही हम भगवान् से दूर हैं। जितना हमारा मन संसार से दूर है उतना ही हम भगवान् के पास हैं। ये भक्ति को नापने का थर्मामीटर है जैसे बुखार को नापने का होता है। जहाँ मन होगा वहीं हम होंगे।

इसीलिए हमें अपने अंदर ही देखना चाहिये। अगर अपनी कमियों को देखेंगे नहीं, उनके बारे में सोचेंगे नहीं तो वो दूर नहीं होंगी। तुमने अगर अपना मन भगवान् में आसक्त नहीं किया तो कुछ नहीं किया। जब हम दोनों गतियों को जानेंगे, अपनी अंदर की भी और भगवान् में मन लगाने की भी, तभी हम साधक बन पायेंगे। एक जगह गोपियाँ भगवान् से कहती हैं कि हे कृष्ण! जो चतुर स्त्रियाँ हैं वे आपसे ही प्रेम करती हैं क्योंकि आप सदा साथ रहते हैं। संसार का कोई भी जीव सदा साथ नहीं देता।

गोपियाँ कहती हैं कि प्रेम किससे किया जाये, जो छोड़ जायेगा उससे? बोलीं, "नहीं, संग उसका करो जो सदा संग रहे, सदा साथ निभाये। प्यार उससे करो जिसका प्यार कभी मरे नहीं।"

भगवान् से गोपियाँ कहती हैं – "आप नित्य हैं। आप सदा हैं। कभी प्रेम तोड़ते नहीं। आपका प्रेम सदा एकरस रहता है। इसीलिए चतुर लोग सदा आपसे ही प्रेम करते हैं।" ये संसार तो एक दिन सबका छूटता है। ये सब घर, परिवार छूटेगा जिससे जीव बहुत प्यार करता है। हर चीज छूटती है चाहे कितना चिपका लो। जब मौत का समय आता है तो नहीं चाहते हुए भी सब छूट जाता है। पर ये 'छोड़ना' छोड़ना नहीं है। गोसांई जी कहते हैं कि छोड़ना तो वो सही है जब हम भगवान् से प्यार करके इन सबको छोड़ दें।

☀ भगवान् वैद्य हैं ☀

भगवान् वैद्य हैं जो सब बीमारियाँ दूर कर देते हैं।

गोपियाँ कहती हैं कि "हे कृष्ण! हम काम रोग से पीड़ित हैं, हमें औषधि दो।"

सुरतवर्धनं शोकनाशनं स्वरितवेणुना सुष्ठु चुम्बितम् ।
इतररागविस्मारणं नृणां वितर वीर नस्तेऽधरामृतम् ॥

(भा. १०/३१/१४)

प्रभु बोले – "कैसी औषधि दें?" औषधि दो प्रकार की होती हैं। एक साधारण और दूसरी रसायन। रसायन औषधि वह है जो रोग भी दूर करती है और ताकत भी देती है। अंग्रेजी दवाई रसायन नहीं है, उल्टा यह दो-चार रोग और पैदा कर देती है। शरीर को कमजोर कर देती है और यदि खाली पेट खा लो तो मार ही देगी। गोपियाँ कहती हैं कि "हे कृष्ण! तुम हमें ऐसी औषधि दो जिससे तुम्हारे

प्रति हमारा प्रेम बढ़े और हमारे सब शोक दूर हो जाएँ; अर्थात् हमारी बीमारी भी चली जाये और हम पुष्ट भी हो जाएँ।"

प्रभु बोले – "इतनी ऊँची दवा तुम लोग चाहती हो तो मूल्य में क्या दोगी?" गोपियाँ बोलीं – "तुम्हारा नाम तो वीर है, 'वीर' माने दानवीर; तुम तो दानवीर हो।" वीर किसे कहते है? जो माँगता है उसे वीर नहीं कहते। वीर उसे कहते हैं जो अपनी वासनाओं को खत्म कर दे। भीख माँगने वाला वीर नहीं होता। जो संतुष्ट रहता है उसको कहते हैं वीर। जो देता है उसको कहते हैं वीर। गोपियाँ कहती हैं कि "हे कृष्ण ! तुम तो बड़े वीर हो। हमें प्रेम का वर्धन और शोक का नाश करने वाली औषधि दो।"

आगे गोपियाँ कहती हैं – "भगवान् से बढ़कर भगवान् का भक्त होता है जो भगवान् के नाम का दान देता है।" वह भक्त सबसे बड़ा दाता है। क्यों? क्योंकि कथा-कीर्तन कहने वाले का भी पाप जल जाता है और सुनने वाले का भी जल जाता है। गोपियाँ कहती हैं कि भगवान् की कथा व कीर्तन कैसा है?

तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम् ।
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः ॥

(भा. १०/३१/९)

"उस कथा-कीर्तन के सुनने से ही मंगल होता है, श्री बढ़ती है और पापों का नाश होता है।"

☀ भगवान् की करुणा की अनुभूति ☀

भोगों से ऊपर उठने के बाद ही भगवान् की करुणा की अनुभूति होती है।

हमारा ये मन उछल-कूद बंद नहीं करता है। ये मन ही हमें मारता है। ये मन ही हमारा मित्र है और ये मन ही हमारा शत्रु है। दुनिया में कोई और बैरी नहीं है। बैरी है अपना मन; जो भगवान् की ओर नहीं चलता है। लेकिन इस बैरी से हम प्यार करते हैं, इसकी ही बात मानते हैं, हम इसके गुलाम हो गये हैं और इसी कारण हमारा नाश हो रहा है। हम अपना गला खुद काट रहे हैं।

मनुष्य बनने के बाद भी अगर हम इस अन्धकार से न निकल पाये तो हम आत्महत्यारे हैं। अगर हम भोगों से निवृत्त नहीं हैं तो आत्महत्यारे हैं। ***हम करोड़ों-अरबों रुपये भी कमा लें पर अगर भोगों में लिप्त हैं तो इसका मतलब हम घोर अन्धकार में ही जा रहे हैं, जड़-योनि में जा रहे हैं।*** भोगों से ऊपर उठने के बाद भगवान् की करुणा की अनुभूति होती है; जिसको भक्तलोग गाते हैं, अनुभव करते हैं, जैसे ध्रुव जी ने किया। कैसे किया? अपनी हर इन्द्रियों को ऊपर उठाकर।

अपनी हर इन्द्रियों को ऊपर उठा दो। जीभ को ऊपर उठा दो। जीभ को सर्पिणी मत बनाओ, मेंढक मत बनाओ। गोसांई जी लिखते हैं कि जो जीभ भगवान् के नाम का गुणगान नहीं करती वो सर्पिणी है।

जो नहिं करइ राम गुन गाना ।
जीह सो दादुर जीह समाना ॥

(रा.च.मा.बाल. ११३)

अपनी जीभ को ऊपर उठाओ, अपने कान को ऊपर उठाओ, अपनी नासिका को ऊपर उठाओ, उठाने से मतलब इनको बहिर्मुख मत होने दो, अन्तर्मुख कर लो। कई लोग बोलते हैं कि कथा में गृहस्थी बैठे हैं, ये भोग भोगते हैं। हाँ गृहस्थी बैठे हैं पर सत्संग सुनने के प्रभाव से वो घर जाकर इन भोगों को अच्छा नहीं समझते। अच्छा न समझने के कारण धीरे-धीरे उनकी आसक्ति घटती जाती है। वह बार-बार सुनता है कि विषय विष हैं फिर वह विषय को पाकर खुश नहीं होता। ये ही बात एक दिन उसको भगवान् से मिला देगी। इसीलिए सत्संग में हर रोज जाना चाहिए और अपने उद्धार के बारे में सोचना चाहिए।

☀ भक्त कौन है? ☀

भक्त वही है जिसके मन में धन-संपत्ति, जमीन-जायदाद आदि इन मायिक चीजों का कोई महत्व नहीं। जैसे राजा बलि ने अपनी धन-सम्पत्ति सब भगवान् को दे दी थी और अंत में अपना शरीर भी दे दिया था। इस कसौटी पर हम जैसे सब फेल हैं।

त्रिभुवनविभवहेतवेऽप्यकुण्ठ-
स्मृतिरजितात्मसुरादिभिर्विमृग्यात् ।

(भा. ११/३/५३)

भक्त कौन है? भक्त उसको कहते हैं जिसके सामने तीनों लोकों की लक्ष्मी रख दो, तीनों लोकों की सुख-सम्पत्ति रख दो, तीनों लोकों की भोग-सामग्री रख दो लेकिन वह उसकी याद भी नहीं करता कि सामने लड्डू का थाल आ गया या कोई अप्सरा खड़ी है। ये बात उसकी स्मृति में भी नहीं आती है।

भक्त आँखों से देखता तो है, ऐसा नहीं कि भक्त अन्धा हो जाता है पर देखने-देखने में फर्क होता है। एक बच्चा अपनी माँ की गोद

में नंगा पड़ा रहता है और उसकी माँ भी अपने सब वस्त्र खोल करके अपने स्तन से दूध पिलाती है। बच्चा अपनी माँ को नग्न अवस्था में देखता है लेकिन उसकी दृष्टि में भोग-दृष्टि नहीं है। उसी तरह से भक्त लड्डू भी देखता है, अच्छी स्त्री को भी देखता है, पर फर्क ये है कि उसकी स्मृति में ये बात नहीं आती है कि ये भोग है या ये सुंदर स्त्री है। जब मन स्वच्छ हो जाता है तब सर्वत्र केवल परमात्मा ही दिखाई देता है।

☀ कृष्ण प्रेम की पहचान ☀

सनातन गोस्वामी जी कहते हैं कि श्रीकृष्ण प्रेम की पहिचान क्या है? बोले – "श्रीकृष्ण प्रेम की पहिचान ये है कि श्रीकृष्ण प्रेम सब रागों से बलवान है। ये इतना बलवान है कि यदि ये आ गया तो संसार में फिर कहीं भी आसक्ति रह ही नहीं सकती।" यहाँ तक कि फिर भगवान् के ऐश्वर्य रूप से भी मन हट जाएगा। इसी कारण ब्रजवासी कहते हैं – **"कहा करैं बैकुण्ठहिं जाय।"** हमें वैकुण्ठ से क्या काम? हमें तो ये ही मधुर रूप चाहिए।

प्रेम के बारे में कहा गया है कि श्रीकृष्ण में जब रति होती है तो हृदय की जितनी भी वासनायें हैं, जितने भी काम तत्त्व हैं वे सब जल जाते हैं; फिर वहाँ सांसारिक राग कहाँ से रहेगा? जब न रहेगा बाँस तो न बजेगी बाँसुरी। बाँस ही नहीं रहा तो बाँसुरी कहाँ से बजेगी? कैसे? बोले – राग का स्थान होता है चित्त (अन्तःकरण)। जब श्रीकृष्ण में रति हो जाती है तो जितना पंचकोश है इसे वह रति जला देती है।

हम इसी मन से संसार में प्रेम करते हैं, इसी मन से भोग भोगते हैं, इसी मन से सब आसक्तियाँ करते हैं। सबका मूल है मन। गीता में भगवान् कहते हैं कि मन के आगे इन्द्रियाँ आदि कुछ नहीं हैं।

भागवत में भी भगवान् उद्धव से कहते हैं कि जितने भी देवता हैं ये सब मन के आधीन होते हैं, मन को कोई भी देवता वश में नहीं कर पाया। अत: समस्त देवों का देव वही है जिसने अपने मन को जीत लिया।

मनोवशेऽन्ये ह्यभवन् स्म देवा मनश्च नान्यस्यवशं समेति ।
भीष्मो हि देवः सहसः सहीयान् युञ्ज्याद् वशे तं स हि देवदेवः ॥

(भा. ११/२३/४८)

परन्तु प्रभु-प्रेम इस मन को ही जला देता है तो फिर राग, आसक्तियाँ कहाँ रहेंगी? फिर तो इस मन में सिर्फ श्रीकृष्ण रति रह जायेगी। योगी लोग कहते हैं कि मन से अलग हट जाओ। भक्त कहते हैं कि झगड़ा करने की जरूरत नहीं है। मन को श्रीकृष्ण से स्पर्श करा दो तो मन अर्पण हो जाता है ऐसा है श्रीकृष्ण प्रेम।

☀ कृष्ण प्रेम होने पर ☀

जब तक संसार के दुःख व्यापते हैं तब तक भगवान् से प्रेम नहीं है।

कृष्ण प्रेम होने पर तीन बातें होती हैं। 'एक' तो श्रीकृष्ण प्रेम बढ़ता रहता है कि कैसे श्रीकृष्ण को देखें, कैसे श्रीकृष्ण की बंसी सुनायी पड़े? 'दूसरा' कोई भी दुःख नहीं सताता, चाहे आग लग जाये, चाहे कोई बीमार हो जाये। अगर कृष्ण प्रेम है तो दुःख सता ही नहीं सकता उनको। 'तीसरी' सब आसक्तियाँ खत्म हो जाती हैं। जब संसार में लड़की की शादी होती है तो शादी के बाद अपने पीहर की सब बातें भूल जाती है। क्यों? 'अपने पति के प्रेम में'। फिर ये तो भगवान् का प्रेम है। जब संसार के प्रेम में ये बात घट जाती है तो भगवान् के प्रेम में कैसे नहीं घटेगी? इसलिए इन तीनों बातों को याद रखो। ये अपने-आपको नापने का थर्मामीटर हम बता रहे हैं कि भगवान् से प्रेम आपको है या नहीं।

जब तक संसार के दुःख व्यापते हैं तब तक भगवान् से प्रेम नहीं है। हम सब अपने को भक्त समझे बैठे हैं पर ये भूल है। भगवान् ने स्पष्ट कहा है –

समदु:खसुख: स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ॥

(गी. १४/२४)

जिसे दुःख-सुख समान हो गया, वो ही इस अमृत को प्राप्त कर सकता है। इसको कहते हैं आध्यात्मिक बुद्धि, कि हमको कुछ कर दो चाहे जला दो लेकिन सुख-दुःख में समान रहेंगे, जैसे प्रह्लाद जी ने करके दिखाया। ऐसा होना चाहिए हमें। अपनी कमजोरी को समझना चाहिये। ये छोटी-छोटी चीजें जो हमें परेशान करती हैं इनके कारण हम अमृत के रास्ते पर नहीं चल सकते। अमृत के रास्ते पर चलना है तो मरना ही पड़ेगा। क्या दु:खी होने से दुःख घट जाता है? आप खुद ही सोचो । इसलिए मनुष्य को दुःख हँसकर भोगना चाहिये। दुःख को भगवान् की कृपा समझकर भोगने से पाप नष्ट होते हैं।

सब आचार्य हमें हमारी कमियाँ दिखाते रहते हैं, अब हम मानें या न मानें। विदुर जी ने जाते-जाते एक आखिरी बात कही थी अपने अन्धे भाई से, "अरे राजन्! निकल जा अभी भी समय है, देख, काल आ रहा है और तू भोगों में लगा हुआ है, उसको देख जो सिर पर आने वाला है और उसका कोई भी इलाज नहीं है। मौत का कोई इलाज नहीं है इसलिए निकल जा।" विदुर ने ये नहीं सोचा कि भाई अन्धा है, कहाँ जायेगा? बोले – "जहाँ कोई सेवा करने वाला न हो वहाँ चला जा।"

गतस्वार्थमिमं देहं विरक्तो मुक्तबन्धनः ।
अविज्ञातगतिर्जह्यात् स वै धीर उदाहृतः ॥

(भा. १/१३/२५)

धृतराष्ट्र रात में ही उठकर जंगल की ओर चले गये, वहाँ जाकर के कष्ट सहा और भगवान् को प्राप्त किया। अगर विदुर जी नहीं आते तो धृतराष्ट्र आराम से हलवा-पूड़ी खाते रहते। गोस्वामी जी ने कहा कि जिसके अंदर श्रीकृष्ण-प्रेम है वहाँ कुछ और नहीं है। कृष्ण-प्रेम में ये तीन बातें जरुर होती हैं। अगर ये तीन बातें नहीं हैं तो कृष्ण-प्रेम नहीं है। हमारे में जब तक ये बातें नहीं आतीं तब तक हम भगवान् के मार्ग में प्रवेश नहीं कर सकते।

☀ भगवान् टेढ़े क्यों? ☀

कृष्ण टेढ़े हैं, पर कहाँ? सिर्फ ब्रज में !

गोपियाँ बोलीं – "देखो कृष्ण ! तुम कुटिल हो, धूर्त हो। सज्जन सरल होते हैं।"

शास्त्र कहते हैं कि धूर्त वह होता है जो मन में रखता है कुछ और, बोलता है कुछ और, करता है कुछ और, जैसे कि आजकल के नेता। अन्तःकरण एक शीशा है, विकार उसे टेढ़ा कर देते हैं। गोपियाँ कहती हैं कि तुम्हारे तो सब काम टेढ़े हैं। तुम्हारा स्वभाव टेढ़ा, कर्म टेढ़ा और स्वरूप भी तीन जगह से टेढ़ा है और जो तीनों जगह से टेढ़ा होता है वो दुष्ट होता है। टेढ़ापन होना निन्दा की बात है और सीधापन होना साधुता की बात है। अब ये जानना है कि भगवान् टेढ़े क्यों हैं?

भगवान् के अनेक अवतार हैं – नर, वामन, राम आदि किन्तु कृष्ण रूप में ही टेढ़े क्यों बने? जबकि टेढ़ापन निन्दा की बात है। तो कहते हैं – हर चीज का रहस्य होता है। भगवान् की हर बात बड़ी गूढ़ होती है, रहस्य की होती है, इसको भक्त लोग ही जान सकते हैं। इसका उत्तर ये है कि कृष्ण टेढ़े हैं, पर कहाँ? सिर्फ ब्रज में ! मथुरा के कृष्ण टेढ़े नहीं हैं, द्वारिका के कृष्ण टेढ़े नहीं हैं। आप दर्शन कीजिये, द्वारिका के कृष्ण सीधे-सीधे खड़े हैं। मथुरा के कृष्ण भी सीधे हैं। मथुरा में सारी लीलायें सीधे होकर कीं। सब जगह सीधे हैं श्रीकृष्ण, केवल ब्रज में ही टेढ़े हैं तो कोई तो कारण होगा?

ब्रज में टेढ़े क्यों बने? क्योंकि प्रेमलीला ब्रज में हुई इसलिए ब्रज में कृष्ण टेढ़े बने। कृष्णावतार में भी कृष्ण ने तीन तरह की लीलाएँ कीं; पहली है ब्रज-लीला, दूसरी है मथुरा-लीला, तीसरी है द्वारिका-लीला। ब्रज में भगवान् की प्रेम-लीला का आरम्भ होता है। इस लीला में भगवान् बहुत चतुर व स्वतन्त्र हैं। वहाँ किसी प्रकार के वेद-शास्त्र का बन्धन नहीं है, ये प्रेम की लीला है।

गोपियाँ कहती हैं – "उसके टेढ़ेपन में ही रस का विस्तार है। ये टेढ़ापन ही प्रेम का स्वरूप है।" इस टेढ़ेपन के कारण ही गोपियाँ मात खा गयीं। गोपियाँ कहती हैं "देख, कृष्ण की लटूरियाँ भी टेढ़ीं हैं। जैसो आप टेढ़ो है वैसे ही टेढ़े बालों को सिर पे बैठा लिया है। टेढ़ो है तो टेढ़ी चीज ही पसंद करे। टेढ़न से ही प्यार करै।"

देखो, सूरदास जी कहते हैं कि जब उद्धव जी ब्रज में आये तो देखा, प्रेम में तो बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है, यह देखकर वे गोपियों से बोले कि "तुम लोग कृष्ण को याद कर रही हो, दुःखी हो रही हो, प्रेम में किसको सुख मिला? इसलिए हे गोपियो ! श्रीकृष्ण को अपने हृदय से हटा दो, उसे भूल जाओ।" गोपियाँ बोलीं, "देखो उद्धव ! तुम यह कह रहे हो कि भूल जाएँ, भूल कैसे जाएँ? जब कोई चीज सीधी-सीधी घुसे तो झट निकल आवै।"

कोई दुश्मन को छुरा मारे यदि वह सीधा छुरा निकाल ले तो वो नहीं मरेगा। छुरा मारकर, छुरा को टेढ़ा करके निकाले तो वह मर जाता है।

उर में माखन चोर अड़े ।
अब कैसेहुँ निकसत नहि ऊधो, तिरछे ह्वै जु गड़े ॥
जदपि अहीर जसोदा नन्दन तदपि न जात छँड़े ।
वहाँ बने जदुबंस महाकुल हमहि न लगत बड़े ॥
को वसुदेव देवकी है को ना जाने औ बुझै ।
"सूर" श्यामसुन्दर बिन देखे और न कोऊ सुझै ॥

गोपी बोली, "कृष्ण को हृदय से कौन निकाले? कृष्ण सीधा होता तो निकल जाता पर वो तो टेढ़ा है। एक जगह से नहीं तीन जगह से टेढ़ा है। टेढ़ा कैसे निकले?" गोपी बोली, "उद्धव ! कृष्ण टेढ़े हैं। जब टेढ़ी चीज हृदय में अड़ जाती है तो नहीं निकलती है।" गोपी कहती है कि जैसे हत्यारा बैन बजाता है, उसे सुनकर हिरणियाँ दौड़ीं आती हैं तो वो चाकू से उन्हें जिन्दा मारकर कस्तूरी निकाल ले जाता है। वैसे ही श्रीकृष्ण ने हमारे साथ किया है।

ये कस्तूरी क्या है? "हमारा हृदय, इसने हमारे हृदय को चुरा लिया है। हत्यारे की बैन की तरह कृष्ण की बंसी थी और हम अनाथ बेचारी हिरणियाँ हैं जो मारी गयीं। इसकी मीठी-मीठी बातें सुन हम लुट गयीं। हमने अपना सब कुछ दे दिया, हमें मिला क्या? केवल दुःख।"

श्रीकृष्ण टेढ़ो इसलिए भी है जैसे – देखो, कोई वस्तु कहीं से निकालनी हो तो बिना टेढ़े हुए नहीं निकलती। मानो आपको घी निकालना है तो सीधी उंगली से तो कुछ नहीं आयेगा, टेढ़ी उंगली से ही घी निकलेगा। यानि कोई चेष्टा करनी पड़ती है। जैसे किसी बच्चे को हँसाने के लिए भी हमें क्रिया करनी पड़ती है, ताली बजानी पड़ती है। तो बल्लभाचार्य जी बता रहे हैं कि श्रीकृष्ण तीन

जगह से टेढ़े क्यों हैं? "भगवान् अपने हृदय का रस निकालने के लिए टेढ़े हो जाते हैं, ये उनकी अदा है।" जैसे किसी वस्त्र को निचोड़ने पर उसमें से रस निकलता है, उसी तरह से ये अदा होती है कि नायक किस ढंग से खड़ा है? इससे रस पैदा होता है। वैसे ही श्रीकृष्ण अपना रस बाहर स्थापित करते हैं।

गोपीजनों को रस देने के लिए उस समय वे त्रिभंगी गति से खड़े हो जाते हैं। ये जो नट वेष है ये सिर्फ ब्रज में है। कंस की नगरी में क्यों टेढ़े होंगे? वहाँ किसको रिझायेंगे? ये तो ब्रज में ही श्रीकृष्ण रिझाते हैं, नहीं तो सारा संसार तो श्रीकृष्ण को रिझाता है।

विदुर जी ये देखकर हैरान थे कि सारा संसार तो कृष्ण को रिझाता है और कृष्ण गोपियों को रिझाते हैं। कैसे रिझाते हैं? कृष्ण जैसे ही देखते थे कि गोपियाँ आ रही हैं, बस उन्हें देखते ही उनकी चाल बदल जाती थी। लक्ष्मी जी जिनकी आराधना करती हैं वे श्रीकृष्ण गोपियों को रिझा रहे हैं। जिन्हें सब लोग, ऋषि-मुनि, योगी आदि स्तुतियाँ कर-कर मनाते हैं पर मना नहीं पाते और यहाँ ब्रज में उल्टा गोपियाँ फटकार रही हैं। गोपियों की दासता करते हैं, पर यहाँ प्रसन्न हैं।

☀ ब्रज की संस्कृति ☀

संस्कार उसे कहते हैं – जो जीवन पद्धति चलाते हैं। संस्कृति उसे कहते हैं – ऐसे संस्कार जो जीव की हर क्रिया को चलाते हैं। जैसे जिस परिवार में भक्ति होती है तो वहाँ भक्ति के संस्कार हैं। ब्रज की संस्कृति वो है जो ब्रज को चलाती है, ब्रज के जीवन को चलाती है। ब्रज की उपासना करने के लिए ब्रज की संस्कृति को समझना बहुत जरूरी है। ब्रज की संस्कृति प्रेममयी है। ब्रज की

संस्कृति इतनी उदार और प्रेममयी है कि वहाँ तेरा-मेरा मिट जाता है।

आज भी हम देखते हैं कि ब्रजवासियों के द्वार पर कोई भी साधु लाल, पीले, सफेद कपड़ों वाला या किसी भी सम्प्रदाय का आ जाये तो वो खाली हाथ नहीं जाता। ब्रज का सच्चा उपासक वही है जो उनकी तरह ही उदार व प्रेम सिखाने वाला बन जाये। अगर एक शब्द में पूछा जाये कि ब्रज-संस्कृति क्या है? जैसे कि अगर एक शब्द में पूछा जाये कि गीता क्या है? "निष्काम कर्म योग" एक शब्द में गीता है। वैसे ही एक शब्द में परमेश्वर का साधारणीकरण ब्रज-संस्कृति है। जहाँ सर्वशक्तिमान ब्रह्म भी आकर साधारण बन जाता है। जहाँ परमेश्वर ने अपना समस्त ऐश्वर्य छुपाकर किसी को ये भी नहीं पता लगने दिया कि वो परमेश्वर हैं। इसलिए अगर हमको भी ब्रज-उपासक बनना है तो हम भी साधारण बनें।

अगर हम ब्रज को समझ नहीं पाये तो उपासना क्या करेंगे? हम जब ब्रज में आये थे तो एक बम्बई से आदमी आये वो हमको पहिनने के लिए एक बढ़िया मखमल का शॉल दे गये। हम उसे पहनकर भिक्षा (मधुकरी) माँगने चले गये। जहाँ-जहाँ माँगने जाएँ वहीं ब्रजवासी कहें कि बाबा ये तो बहुत बढ़िया है, इसे हमें दे दो। दो-चार बार सुना फिर उतारकर एक गरीब की बेटी की शादी थी, उसे दे दिया। बाद में ये सब हमने बाबा को जाकर बताया। बाबा बोले कि ये तो स्वयं सोचना चाहिए कि तुम भिक्षा माँगने गये हो। देने वाले की तो धोती फटी है और तुम बढ़िया मखमल पहनकर माँगते हो, तुमको खुद विचार करना चाहिए।

ब्रज-संस्कृति का प्रभाव केवल जीव पर ही नहीं पड़ता अपितु जड़ व चेतन पर भी पड़ता है। ब्रज-संस्कृति में इतना प्रेम था कि यहाँ शेर और हिरन एक साथ खेलते थे। परस्पर विरोधी जीव भी

एक साथ प्रेम से रहते थे। किसी में भी राग-द्वेष नहीं था। स्वयं श्यामसुंदर कहते हैं –

नृत्यन्त्यमी शिखिन ईड्य मुदा हरिण्यः
कुर्वन्ति गोप्य इव ते प्रियमीक्षणेन ।
सूक्तैश्च कोकिलगणा गृहमागताय
धन्या वनौकस इयान् हि सतां निसर्गः ॥

(भा. १०/१५/७)

"देखो जब भी हम यहाँ पर आते हैं तो यहाँ मयूर नाचने लग जाते हैं, हिरणियाँ प्रेम दिखाने लग जाती हैं, कोयलें मीठा-मीठा गीत गाने लग जाती हैं।" मतलब कि ब्रज की संस्कृति इतनी प्रेममयी है कि पशु-पक्षी भी प्रेम से स्वागत करने लग जाते हैं। अगर किसी और जगह पर जाओ तो चिड़ियाँ भाग जाती हैं, कोयलें भाग जाती हैं, मयूर भाग जाते हैं। गोपाल जी बोले कि "हम जंगल में आये हैं, इनके घर में आये हैं इसलिए ये सब हमारा स्वागत कर रहे हैं।"

ब्रज-संस्कृति केवल प्रेममयी है। उसमें जरा-सी भी बनावट नहीं है। उसमें जरा-सा भी दिखावा नहीं है। हमने अपने सामने ऐसे-ऐसे ब्रजवासी देखे हैं जो कि एक पाँव में जूता है और चले जा रहे हैं। अगर पूछा कि "ये क्या बाबा ! दूसरा नहीं है क्या?" बोले – "अरे ! एक तो है ना।"

☀ ब्रज भाव - ब्रज प्रेम ☀

ब्रज-भाव उसे ही कहते हैं जहाँ ऐश्वर्य लीन हो जाता है। जब तक मन में हिचक है तब तक ब्रज-भाव नहीं समझा जा सकता। जब कोई व्यक्ति सोचता है कि ये भगवान् हैं तो उसके मन में हिचक, संकोच, भय रहता है। जैसे – जब अर्जुन को श्रीकृष्ण ने विराट् रूप दिखाया तो अर्जुन बोले कि आपका रूप देखकर हमें

पता नहीं चल रहा है कि पूरब किधर है और पश्चिम किधर है? और ना ही हमें सुख मिल रहा है। आप प्रसन्न हो जाओ और आप अपने इस ऐश्वर्य रूप को ढक लो, इसे हटा लो।

अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा भयेन च प्रव्यथितं मनो मे ।
तदेव मे दर्शय देवरूपं प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥

(गी. ११/४५)

"मैंने आपका ऐसा रूप कभी भी नहीं देखा। हमारा मन भय से काँप रहा है, मुझे अपना वो ही पहला रूप दिखा दो।" भगवान् हँस गये। सबसे मीठा रूप भगवान् का ऐसा ही है। संसार में जहाँ-जहाँ भी जाओ, श्यामसुन्दर को ब्रह्म, पुरुषोत्तम कहकर और हाथों को जोड़कर स्तुति करते हैं। ब्रज के बाहर कहीं भी जाओ तो बोलते हैं कि **भगवान् की जय** लेकिन ब्रज में ऐसा नहीं बोलते। ब्रज में कहेंगे कि **बोल नन्द के लाला की जय।** भगवान् की जय नहीं, सीधे-सीधे बाप का नाम लेते हैं। जो गाली प्रेम से दी जाती है वह प्रेम बढ़ाती है; इसीलिए ये प्रेम भरी गाली भगवान् को प्रिय लगती है। भगवान् स्वयं भक्तों के आधीन होकर के भक्तों की गाली पसंद करते हैं। भक्त जब श्यामसुंदर को कुछ सुनाते हैं तो वह सुनकर बड़े प्रसन्न होते हैं। जिसमें कोई बनावट नहीं है, जिसमें कोई स्तुति नहीं है, ये है ब्रज का प्रेम। जहाँ पर ये सब चीजें हैं वहाँ पर प्रेम नहीं है। जैसा प्रेम ब्रज में है वैसा प्रेम ऐश्वर्य में नहीं है। जहाँ ये भगवान् हैं और हम जीव हैं, ये फर्क मिट जाता है उसे प्रेम कहते हैं। प्रेम में दोनों समान हो जाते हैं, ये प्रेम की शक्ति है।

एवं संदर्शिता ह्यङ्ग हरिणा भृत्यवश्यता ।
स्ववशेनापि कृष्णेन यस्येदं सेश्वरं वशे ॥

(भा. १०/९/१९)

प्रेम की शक्ति क्या है? प्रेम वह शक्ति है जो दोनों को एक बराबरी पर ला देती है। अगर राजा का भी लड़का है तो उसे दूसरों से खेलते समय उनके बराबर बनना पड़ेगा, वैसा ही बनना पड़ेगा,

सारी क्रियायें बराबर करनी पड़ेंगी। उसके बिना खेल नहीं चलेगा। परमात्मा भी भक्तों से लीला तभी करता है जब परमात्मापन को छोड़ देता है। 'भक्त व भगवान्' दोनों एक ही स्तर पर आ जाते हैं उसे प्रेम कहते हैं। जब किसी भी भक्त के अन्दर प्रेम की लहर आती है तो उस लहर में वह भूल जाता है कि ये भगवान् हैं। तब समझ लो कि प्रेम शुरू हो गया है।

☀ ब्रज उपासक ☀

कहीं मान प्रतिष्ठा मिले ना मिले अपमान गले सों बँधाना पड़े।
जल भोजन की परवाह नहीं करके व्रत जन्म गँवाना पड़े।
अभिलाषा नहीं सुख की कुछ भी दुःख नित्य नवीन उठाना पड़े।
ब्रज भूमि के बाहर किन्तु प्रभो ! हमको कभी भूल न जाना पड़े॥

ब्रज में तो परमेश्वर भी गाली खाता है। इसी का नाम ब्रज उपासना है। ***ब्रज उपासक बनना है तो सम्मान की भूख नहीं रखनी चाहिए, गँवार बन जाओ।*** किसी ने अपमान कर दिया तो हँस जाओ। जो गँवार नहीं बना उसे ब्रज रस नहीं मिलेगा। अरे, ब्रज में जब भगवान् ने अपना भगवानपना छोड़ दिया तो फिर हम लोग क्या चीज हैं? यहाँ आकर के भी जो सम्मान सोचता है उसे ब्रज रस नहीं मिलेगा। यहाँ तो अपमान सहने के लिए ही आओ। ब्रज में इसीलिए आओ कि ब्रजवासी हमको गाली दें।

तजि देह को गेह को नेह सबै, बसिये सुख सों चल कुँज गली॥

ये सोचकर चलो कुंज गली। घर को, सबको छोड़कर चलो वहाँ। क्यों वहाँ क्या मिलेगा? वही मिलेगा जो अब तक नहीं मिला। वहाँ नित्य कृष्ण-रस राधा-रस लुटता है। ये कहीं बाहर नहीं मिलेगा। मान-सम्मान से नहीं मिलेगा। बाहर तो चौरासी लाख योनियाँ मिलेंगी। तुम मूर्ख हो जो सम्मान चाहते हो।

ब्रज की मिट्टी को रजरानी कहते हैं। क्यों? उसका कारण है कि गंगा जी तो एक बार श्रीकृष्ण के चरणों के धोवन से प्रगट हुई थीं। यहाँ की रज को तो श्रीकृष्ण रोज चाटते हैं, खाते हैं। मईया कहती है कि "तू यहाँ की मिट्टी क्यों खाता है?" तो बोले –

ऐसो स्वाद नहीं माखन में, जो रस है ब्रज रज चाखन में ॥

यहाँ भगवान् नंगे पाँव चलते थे। तभी गोपियों ने कहा था "इतना लक्ष्मी जी के सुन्दर-सुन्दर कोमल हाथों से पैर दबवाने में उनको आनंद नही मिला, जितना ब्रज के काँटों में मिला। जितना ब्रज के कंकणों में मिला।" ये हालत भगवान् की है। फिर हम जैसे जो लोग हैं वे ना जाने अपने मन में क्या बनते हैं?

यद्येवं तर्हि व्यादेहीत्युक्तः स भगवान् हरिः ।
व्यादत्ताव्याहतैश्वर्यः क्रीडामनुजबालकः ॥

(भा. १०/८/३६)

अरे, यहाँ तो भगवान् तक ने अपनी भगवत्ता छोड़ दी, फिर प्रेम मिला। सम्मान में मरते जाओ तो प्रेम आदि कुछ नही मिलेगा, सिर्फ ८४ लाख योनियाँ ही मिलेंगी।

यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु
भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु ।
तेनाटवीमटसि तद् व्यथते न किंस्वित्
कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः ॥

(१०/३१/१९)

गोपियाँ बोलीं कि "ये वही कृष्ण हैं, जिनके चरणों को लक्ष्मी जी धीरे-धीरे दिन-रात सहलाती हैं। क्यों? क्योंकि हमारे हाथ तो कठोर हैं और प्रभु के चरण कोमल हैं। लक्ष्मी जी जैसा उनके चरणों का लालन करती हैं और जैसा प्यार करती हैं वैसा कोई भी नहीं कर सकता पर ब्रज में भगवान् काँटों में दौड़ते हैं, ब्रज में गँवारों के साथ भगवान् भी गँवार बन गये हैं।" इस ब्रज में आकर जो गँवार नहीं बना वह ब्रज भाव नहीं जान पाया।

सब लोग पैसा चाहते हैं। मन्दिर वाला पैसा चाहता है, पुजारी पैसा चाहता है, चोर पैसा चाहता है, कथा करने वाला पैसा चाहता है, कीर्तन करने वाला पैसा चाहता है, पापी पैसा चाहता है, सब पैसा चाहते हैं। पर वह लक्ष्मी सब छोड़कर क्या चाहती हैं?

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि ।

(भा. १०/३१/१)

वे तो वृन्दावन विहारी लाल के चरणकमलों की रज चाहती हैं। इसका एक अर्थ ये भी है कि जो पैसा चाहता है, उसको ब्रज रस नहीं मिलेगा।

नेमं विरिञ्चो न भवो न श्रीरप्यङ्गसंश्रया ।

(भा. १०/९/२०)

जब महालक्ष्मी को नहीं मिला तो जो हम जैसे मक्खी-मच्छर क्या चीज हैं?

जब तक तुम्हारे मन में पैसे की तृष्णा है तब तक ब्रज रस नहीं मिलेगा। ये बात समझ लो कि कोई भी गोपी भगवान् के ऐश्वर्य रूप पर मोहित नहीं हुई। ब्रजमण्डलान्तर्गत पैंठे गाँव में भगवान् चतुर्भुज रूप से प्रगट हुए तो गोपियाँ डर गयीं और उनसे बोलीं भी नहीं। गोपियाँ प्रभु को छोड़ के चली गयीं। ब्रज में प्रेम का विकास है। यहाँ कृष्ण वनों में घूम रहे हैं, बिना बुलाये सब जगह चले जाते हैं। घर-घर चोरी करते हैं, उनमें कोई भी बड़प्पन नहीं है। गायों की सेवा करते हैं, ग्वालबालों की सेवा करते हैं, गोपियों की सेवा करते हैं। प्रेम है यहाँ। ये वही ब्रज है। परन्तु हमें इसी ब्रज में वह रूप दिखाई नहीं देता जिसका वर्णन महात्माओं ने किया है।

धनि–धनि वृन्दावन के रूख ।
रसिकन पारिजात यह दीखत, विमुखन ढाक पिलूख ॥

हमें तो हर जगह गंदगी दिखाई देती है, ब्रजवासियों में भी विकार दिखाई देते हैं। तो ये हमारे भाव कैसे पकें? भाव में एकरसता कैसे आये? एकरसता माने एक स्वभाव। फिर जीव

हिलता नहीं, डिगता नहीं। कच्चे साधक तो करोड़ों हुए पर परमात्मा तक पहुँचना वो एक अलग बात है। भगवान् से मिलने की ये बड़ी टेढ़ी-मेढ़ी राह है। कैसा रास्ता है? जैसे दुनिया में हर रास्ते का हिसाब मालूम होता है। मान लो मुम्बई जाना है तो बोले इतने समय में पहुँच जाओगे परन्तु इस प्रेम के रास्ते पर न शुरुआत है और न बीच है और न ही अंत है। कौन-से स्टेशन से जाना है? कितनी दूर है? कितना बाकी है? कुछ पता नहीं। हम लोग ऐसे रास्ते पर चल रहे हैं और अन्धे हैं। मुश्किल तो ये है कि आँख भी नहीं हैं। मतलब ज्ञान और विवेक की आँखें भी नहीं हैं। हम टटोल-टटोल कर अन्धों की तरह चल रहे हैं।

गीता में भगवान् स्वयं कहते हैं कि भजन के लिए तो बहुत लोग निकलते हैं, बहुत लोग प्रयत्न करते हैं लेकिन उनमें एकाध ही सिद्ध होता है, उन सिद्धों में कोई एकाध ही मुझको जान पाता है।

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥

(गी. ७/३)

किसी ने बड़ा सुन्दर कहा है कि ये प्रेम की डगर है यानि प्रेम का रास्ता है जिस पर सब चलना चाहते हैं या चल रहे हैं किन्तु ये रास्ता कैसा है? ये बड़ा टेढ़ा-मेढ़ा है।

"बड़ी रे टेढ़ी-मेढ़ी प्यारे श्याम तेरी राह ।"

☀ ब्रज धाम निष्ठा ☀

सतत् सेवन केवल धाम का ही सम्भव है।

जिस पाप व कष्ट को अन्य साधन नष्ट नहीं करते, उसे धाम नष्ट कर देता है। श्रीपाद प्रबोधानंद जी ने तो यहाँ तक कह दिया कि यदि कोई पतित, नीच या साधनहीन भी है और यदि वह भी निष्ठा से धाम का आश्रय ले ले तो वह अवश्य धामी से मिल जायेगा। किसी वस्तु का सतत् सेवन ही सिद्धि प्रदान करा सकता है। सतत् सेवन केवल धाम का ही सम्भव है। अन्य साधनों में बाधायें उपस्थित होती रहती हैं। धाम निष्ठा बड़ी विचित्र होती है। धाम में तो सोना भी भजन है।

जिसके पास धन है तो वो धन देगा, भोगी भोग देगा, ज्ञानी ज्ञान देगा, भक्त भक्ति देगा, धाम निष्ठा वाला धाम निष्ठा देगा, हर जीव संसार को कुछ न कुछ देता है परन्तु देता उसी वस्तु को है जो उसके पास होती है। प्रकृति के अनुसार ही जीव जीव का संग करता है, 'कामी' कामी का संग करता है, 'लोभी' लोभी का संग करता है, तुम जैसा संग करोगे वैसी ही तुम्हारी बुद्धि या प्रकृति बन

जायेगी। इसीलिए अपना संग सोच समझ कर करो। श्रद्धा वाले का संग करने से श्रद्धा बढ़ेगी। तभी तो जीव को जितना एक भक्त का संग पवित्र करता है, उतना गंगा भी पवित्र नहीं कर सकती। धाम निष्ठा के लिए निष्ठावान् का ही संग करें। निष्ठावान् पुरुष का सीधा अंतरात्मा पर संक्रमण होता है। जो निष्ठा लाखों जन्मों के साधनों से नहीं मिलती, वह सहज में ही निष्ठावान् के संग से मिल जाती है। ब्रज-धाम दिव्य है, ब्रज-धाम के रज-कणों को वैकुण्ठ से भी ऊँचा माना गया है। यहाँ की भूमि का कण-कण श्री राधा-कृष्ण के प्रेम चिन्हों से मंडित है।

सत, रज, तम इन तीनों गुणों से अतीत जो व्यापक परब्रह्म है, वही ब्रज है। यह सच्चिदानन्द स्वरूप, परम ज्योतिर्मय और अविनाशी है। जीवनमुक्त पुरुष इस व्यापक परब्रह्म में निवास करते हैं।

गुणातीतं परं ब्रह्म व्यापकं ब्रज उच्यते।
सदानन्दं परं ज्योतिर्मुक्तानां पदमव्ययम्॥

(भा.माहा. १/२०)

परम ब्रह्मस्वरूप ब्रज-धाम श्रीकृष्ण की नित्य निवास स्थली है। श्रीकृष्ण आत्माराम सच्चिदानन्दमय होकर ब्रज में भक्तों के लिए सहज में ही सुलभ हो जाते हैं। श्रीराधा भगवान् की आह्लादिनी शक्ति हैं; लावण्य, माधुर्य तथा प्रेम की साक्षात् मूर्ति श्रीराधा के साथ रमण करने के कारण ही श्यामसुन्दर आत्माराम कहलाते हैं। ब्रज का कण-कण श्री युगल सरकार के चरणों से अंकित व उनकी रस माधुरी से सिंचित है। यहाँ का प्रत्येक कण मुक्ति को भी मुक्त करने वाला है।

मुक्ति कहै गोपाल सों, मेरी मुक्ति बताय।
ब्रज-रज उड़ि मस्तक लगै, मुक्ति मुक्त है जाय ॥

ब्रज धाम के कण-कण में श्रीकृष्ण के स्वरूप का दर्शन पाकर स्वयं ब्रह्मा जी मोहित हुए थे और भाव विभोर हुए अपने नयनाश्रुओं से यहाँ के रज कणों का अभिषेक करने के लिए बाध्य हुए थे। ज्ञानी उद्धव जी ने भी इस ब्रज-रज में लता बनना अपना परम सौभाग्य माना था।

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ।

(भा. १०/४७/६१)

स्वयं विश्वामित्र, नारद, शुकदेव, गौतम, परशुराम आदि मुनियों ने इसी ब्रज चौरासी को अपनी तपस्या स्थली बनाया। आज भी करोड़ों भक्तजन यहाँ आकर अपनी आराध्या ब्रज-भूमि के दर्शन कर अपने को धन्य समझते हैं जो कि उनकी भक्ति की आस्था का केंद्र है।

धाम की महिमा को जब ब्रह्मा आदि भी नहीं जान पाते हैं तो उसके बारे में हम क्या बोलें? परन्तु शिष्टाचार के नाते कुछ कह रहे हैं। पहले हम जानते तो कुछ भी नहीं थे, ऐसे ही भाषण किया करते थे। कभी जयपुर जाते और कभी अलवर जाते। उस समय हम जयपुर व अलवर भाषण करने गये थे और बड़े आश्चर्य की बात है कि अलवर में एक ही दिन में कार में घूम-घूमके रात के दो बजे तक ३३ जगह हमारे भाषण हुए थे, वह हमारा आखिरी दौरा था। ज्यादा तो हमें याद नहीं पर एक आखिरी घर में सत्संग हो रहा था तो वहाँ हमें याद है कि हमसे तेरह प्रश्न पूछे गए थे। तेरहवाँ प्रश्न था कि ईश्वर प्राप्ति कैसे हो? हम इसे एक अनुभव तो नहीं कह सकते लेकिन जब हम इसका उत्तर देने लगे तो कुछ ऐसी घटना घटी कि हमारी वाणी रुक गयी।

वाणी इसलिए नहीं रुकी कि हम बीमार थे। हृदय में एक बात खटकी कि क्या तुमको भगवान् मिल गये हैं, जो तुम बोल रहे हो। बड़ी अजीब घटना घटी और हम थोड़ी बेचैनी सी महसूस करने लगे। वहाँ से हम निकलकर अपने कमरे में चले गये। जिसके घर में ठहरे थे उनसे हमने कहा कि माथुर जी आपकी गाड़ी कहाँ है? तो माथुर जी बोले – गाड़ी तो आपके लिए तैयार खड़ी है। हमने पूछा कि क्या तुम अभी हमें ब्रज के पास छोड़ सकते हो? वे बोले – ऐसा कैसे हो सकता है? कल आपका कार्यक्रम है। हमने कहा कि हम तो जायेंगे, हमें कुछ बेचैनी सी हो रही है। तुम नहीं छोड़ोगे तो हम पैदल ही चले जायेंगे। जो हमारे साथ महात्मा रहते थे वह भी हमारे साथ गये हुए थे और वे तो बड़े नाराज हुए और कहने लगे कि क्या तुम पागल हो गये हो? हमने कहा कि हाँ, हम कुछ पागल से ही हो गये हैं। फिर उनकी गाड़ी में जब हम डीग के पास आये तो हमने उनसे कहा कि आप अपनी गाड़ी वापस ले जाओ, अब ब्रज आ गया है लेकिन वो हमें जबर्दस्ती मान मंदिर तक छोड़ गये।

अगले दिन हम छत पर बैठे थे और एक महात्मा को अपने प्रोग्राम का कागज दिखा रहे थे। इतने में हमारे बाबा (श्री प्रिया शरण जी महाराज) यूँ ही टहलते-टहलते मन्दिर में आ गये। बाबा से हमारा यह नया-नया परिचय था। धाम की महिमा हमारे जीवन में यहाँ से शुरू होती है। उन्होंने कहा कि “भाई क्या हो रहा है?” हमने कहा, “बाबा हम अभी जयपुर से अलवर तक प्रोग्राम करके आये हैं, वहाँ से ये चिट्ठियाँ आयीं हैं इनको पढ़ रहे हैं।” उन्होंने हमारी तरफ देखा और बोले, “भड़ुआ ! ये चिट्ठियाँ ही पढ़ोगे, घर से तुम भजन करने निकले हो या यही पापड़ बेलने?” उनके ये ही शब्द थे। हमें बात कुछ अच्छी लगी और फिर हम उनके सत्संग में जाने लगे। उन्होंने हमसे कहा कि देखो जब घर से निकले हो तो धाम का आश्रय लो। वहाँ से हमारा जीवन बदला। धाम के बारे में

बहुत सी बातों को पढ़ने लग गये और हमने सोच लिया कि अब हमें यहाँ से नहीं जाना हैं। हम जब ब्रज में आये थे तो सबसे पहले हमने ये ही पाठ पढ़ा था।

भगवान् का नाम, रूप, गुण, लीला, धाम व धामी ये सब एक ही हैं किन्तु रसिक पुरुषों ने इनमें से धाम को सबसे सहज और सरल बताया है। 'नाम' सरल तो है पर सोते समय ये स्थिति तो नहीं हो सकती कि नाम अखण्ड चलता रहे, इसी तरह से 'रूप-चिंतन' भी अखण्ड नहीं हो सकता है और 'लीला-गुणगान' भी अखण्ड नहीं हो सकता है और 'जन-सेवा' भी अखण्ड नहीं चल सकती है।

इसीलिए महात्माओं ने कहा है कि धाम को पकड़ लो। धाम में अखण्ड निवास कर लो क्योंकि सोओगे तो भी धाम में रहोगे और जागोगे तो भी धाम में रहोगे। वृन्दावन महिमामृत में यहाँ तक लिखा है –

दूरे चैतन्यचरणाः कलिराविरभून्महान् ।
कृष्णप्रेमा कथं प्राप्यो विना वृन्दावने रतिम् ॥

ऐसे आचार्य तो चले गये जिनकी वायु से ही प्रेम की प्राप्ति होती थी। न महाप्रभु चैतन्य जी रहे, न हरिवंश जी महाराज रहे और न महाप्रभु हरिदास जी रहे, तो कृष्ण प्रेम की प्राप्ति कैसे हो? तो ग्रन्थकार कहते हैं कि वृन्दावन की रज का आश्रय कर लो, धाम का आश्रय कर लो, तुम्हें सब कुछ मिल जायेगा। शिव पुराण में भी आता है कि अगर कुछ नहीं आता है तो धाम में आकर मर ही जाओ। रसिकों ने भी इस बात को कहा है – **"वृन्दावन में मंजुल मरिबो"**

☀ कलियुग ☀

नहिं कलि करम न भगति बिबेकू ।
राम नाम अवलंबन एकू ॥

(रा.च.मा.बाल. २७)

कलियुग में केवल श्रीकृष्ण-कीर्तन से ही अभीष्ट की प्राप्ति हो जाती है। कलियुग को तुम बाधक मत मानो। कलियुग तो भक्ति में हमारा सहायक है।

यत्फलं नास्ति तपसा न योगेन समाधिना ।
तत्फलं लभते सम्यक्कलौ केशवकीर्तनात् ॥

(भा.माहा. १/६८)

जो फल तपस्या, योग एवं समाधि से भी नहीं मिलता, कलियुग में वही फल भगवान् के कीर्तन से ही मिल जाता है। सूत जी, शौनकादिक ऋषियों ने कलियुग का महत्व बताते हुए कहा है –

नानुद्वेष्टि कलिं सम्राट् सारङ्ग इव सारभुक् ।
कुशलान्याशु सिद्ध्यन्ति नेतराणि कृतानि यत् ॥

(भा. १/१८/७)

कलियुग का एक विशेष गुण यह है कि इसमें मानसिक पुण्य तो हो जाते हैं लेकिन पाप नहीं होते; इसीलिए राजा परीक्षित कलियुग से द्वेष नहीं रखते थे। रामायण में भी आता है –

कलिजुग जोग न जग्य न ग्याना ।
एक अधार राम गुन गाना ॥
कलि कर एक पुनीत प्रतापा ।
मानस पुन्य होहिं नहिं पापा ॥

(रा.च.मा.उत्तर. १०३)

कलियुग में न तो योग है, न यज्ञ है और न ज्ञान ही है, केवल भगवान् का नाम ही एकमात्र आधार है। इसमें मानसिक पुण्य हैं लेकिन पाप नहीं हैं। महाप्रभु चैतन्यदेव ने भी यही कहा है कि

भगवान् के नाम के बिना अन्य किसी साधन से कलियुग में मनुष्य की गति संभव नहीं है; इसलिए वह सतत् कृष्ण-नाम का ही कीर्तन करते थे।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

कलियुग भगवान् की ही शक्ति है जो केवल भगवान् से विमुख जीव पर ही अपना प्रभाव दिखाता है। भक्तों ने तो हर युग में काल को जीता है। कलियुग में भगवद्-गुणों का बार-बार चिन्तन करो। बार-बार चिन्तन करने से ही प्रभु में प्रेम व भक्ति होगी।

श्रुत्वा गुणान् भुवनसुन्दर श्रृण्वतां ते
निर्विश्य कर्णविवरैर्हरतोऽङ्गतापम्।
रूपं दृशां दृशिमतामखिलार्थलाभं
त्वय्यच्युताविशति चित्तमपत्रपं॥

(भा. १०/५२/३७)

रुक्मिणीजी ने श्रीकृष्ण-गुणों को सुना और उनका चिन्तन किया, ऐसा करने से उन्हें श्रीकृष्ण में प्रेम हुआ और उन्हें श्रीकृष्ण मिले। कृष्ण-गुण श्रवण समस्त तीर्थों का सार है। भगवान् के गुण मानस पापों या तापों को जला देते हैं और फल में प्रभु से मिला देते हैं। प्रेम प्राप्ति व प्रभु प्राप्ति का सहज मार्ग प्रभु गुणों का गान ही है।

☀ भगवन्नाम ☀

एक दवा तो ऐसी होती है जो केवल रोग को समाप्त करती है और एक दवा ऐसी होती है जो रोग को भी नष्ट करती है और स्वस्थ भी करती है।

नामसङ्कीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम् ।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम् ॥

(भा. १२/१३/२३)

भगवन्नाम इसी दवा का नाम है। हर क्षण प्रभु का नाम लेते रहो। ये पाप भी नाश कर देगा और मंगल भी करेगा। भगवान् को देख करके प्यार नहीं किया जाता, भगवान् को सुनकर प्रेम किया जाता है।

त्वं भावयोगपरिभावितहृत्सरोज
आस्से श्रुतेक्षितपथो ननु नाथ पुंसाम् ।

(भा. ३/९/११)

इस दुनिया में तो आँखों से देखा जाता है परन्तु उस दुनिया में कानों से देखा जाता है। श्यामसुन्दर की जो प्रेम की डगरिया है वो आँखों से नहीं दिखाई देती बल्कि सुनकर उस रास्ते पर चला जाता है। सुनना सीखो। हर क्षण उनके गुणों को सुनो, अपने-आप तुमको उनका रास्ता मिल जायेगा। रास्ता ही नहीं वे खुद ही आकर तुम्हारे पास बैठ जायेंगे। प्रभु ने कहा था कि “मैं वैकुण्ठ में नहीं रहता, जहाँ हमारे भक्त लोग बड़े स्नेह से गाते हैं, बस मैं तो वहीं पड़ा रहता हूँ।” सब के सब क्लेश केवल एक श्रवण मात्र से ही नष्ट हो जाते हैं और भक्ति की सहज में ही प्राप्ति हो जाती है। हर क्षण कृष्ण-गुणगान, कथा-कीर्तन का श्रवण करते रहो।

परन्तु कैसे? श्रवण करो तो परीक्षित जी की तरह। जिन्होंने सात दिन ऐसी लगन से कथा सुनी कि वह खाना-पीना ही भूल

गये। जब स्वयं शुकदेव जी ने कहा कि "कुछ ले लो।" तो परीक्षित जी बोले कि "हमें भोजन तो दूर पानी पीना भी बाधा लग रहा है।" ऐसी निष्ठा चाहिए सुनने में। भाव से, अभाव से या कुभाव से, तुम किसी भी तरह प्रभु का नाम लोगे तो भी प्रभु का नाम तुम्हारे सब पाप जला देगा। भगवान् को गाली देने के लिए भी अगर तुम उनका नाम लोगे या किसी विषमता के कारण प्रभु का नाम लोगे तब भी प्रभु तुम पर दया करेंगे।

साङ्केत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा ।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः ॥

(भा. ६/२/१४)

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ ।
नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ ॥

(रा.च.मा.बाल. २८)

जब मेघनाद मरते समय राम जी को गाली देकर मरा तो हनुमान जी कहते हैं कि धन्य है इसकी माँ जो ये मरते समय प्रभु का नाम तो ले रहा है। जबकि मेघनाद कुभाव से प्रभु का नाम ले रहा था, रावण प्रभु का नाम खीज या अनख से लेता था। जब प्रभु का नाम किसी भी तरह से लेने से ही कल्याण हो जाता है फिर प्रभु का नाम आप भाव से लोगे तो कल्याण कैसे नहीं होगा? जीव के लिए भगवन्नाम आवश्यक है। भगवन्नाम के माध्यम से प्रभु हमारे हृदय में आते हैं और उसे पवित्र करते हैं। भगवन्नाम तो मुर्दे को भी पवित्र बना देता है तभी तो मृत्यु के समय `राम नाम सत्य` बोला जाता है।

अगर किसी कारण से स्नानादि नहीं होता तो कोई बात नहीं है। स्नान तो बाहरी स्थूल देह को पवित्र करता है परन्तु भगवन्नाम तो अन्तःकरण को भी पवित्र बना देता है। जो सामर्थ्य भगवान् में है, उससे कहीं अधिक शक्ति भगवन्नाम, कथा-कीर्तन में है। यहाँ तक कहा गया है कि नाम में प्रभु से भी अधिक शक्ति है।

निरगुन तें एहि भाँति बड़ नाम प्रभाउ अपार ।
कहउँ नामु बड़ राम तें निज बिचार अनुसार ॥

(रा.च.मा.बाल. २३)

अत: जरा-सा भी काल का, कष्ट का या दुःख का भय मत करो। केवल प्रभु नाम स्मरण करते रहो। हम लोग भगवान् को न स्मरण करके दुःख का ही स्मरण करते रहते हैं। चित्त में जब तक भगवान् का नाम नहीं है तब तक ही जीव को भय लगता है। भय का तात्पर्य ही ये है कि प्रभु चित्त से दूर हैं। सिर्फ उपासना ही जीव को भय रहित बनाती है। अतः प्रभु का हर क्षण स्मरण करो। तुलसीदासजी ने भी कहा है कि जब बुखार होता है तो खीर अच्छी नहीं लगती। वैसे ही मनुष्य के पापों के कारण ये आध्यात्मिक चीजें उसे अच्छी नहीं लगतीं। ये पाप जीव को प्रभु की शरणागति में नहीं आने देते।

तुलसी पिछले पाप ते, हरि चर्चा न सुहाय ।
जैसे ज्वर के अंश ते, भोजन की रुचि जाय ॥

एक उदाहरण देते हैं कि जब हनुमान जी ने अशोक-वाटिका में जानकी जी को देखा तो देखते ही समझ गये कि जानकी जी के प्राण राम जी के विरह में क्यों नहीं छूटे।

नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट ।
लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहिं बाट ॥

(रा.च.मा.सुन्दर. ३०)

ये एक बहुत बड़ी बात है कि सीता जी ने प्राण नहीं छोड़ा परन्तु दशरथ जी ने प्राण छोड़ दिया। क्यों? इसका क्या कारण था? क्या जनकनन्दिनी सीता जी को राम जी से प्रेम नहीं था? ये बात समझने की है। इसको समझकर तब भगवन्नाम का महत्त्व समझोगे। इसका उत्तर हनुमान जी देते हैं कि दशरथ जी के प्राण इसलिए छूट गये क्योंकि उनकी साधना दूसरे ढंग की थी और सीता जी की साधना दूसरे ढंग की थी।

पहली बात तो यह है कि जानकी जी को भी दशरथ जी की तरह श्री राम जी से बिछुड़ने का उत्कट विरह था पर उनका अनावर्त भगवन्नाम चल रहा था। प्राण तो धन है। जैसे आप सोना-चाँदी किसी तिजोरी में रखते हैं और उसे ताले से बंद कर देते हैं और फिर उसके लिए पहरेदार भी लगाते हैं। आपने बैंक में देखा होगा कि अंदर ताले में बंद तिजोरी में माल होता है और बाहर पहरेदार खड़ा होता है। तिजोरी किवाड़ों के भीतर होती है तभी तो माल बचता है नहीं तो चोर लूट लें। 'दूसरा' जनकनन्दिनी जी का ध्यान सिर्फ श्री राम जी पर ही था। ये ध्यान की कपाट है जो प्राणों को निकलने नहीं देता। इस तरह का ध्यान तो हम लोग नहीं कर सकते फिर भी भगवन्नाम तो सुनते हैं, कथा तो सुनते हैं। तीसरी बात ये है कि सीता जी ने आँखों को अपने चरणों में लगा रखा था, दूसरा कोई दृश्य नहीं देखती थीं। कब रावण आया? कौन क्या कर रहा है? किसी भी अन्य चीज के ऊपर उनका ध्यान नहीं होता था।

इन तीन बातों के ही कारण सीता जी के प्राण नहीं निकले। हनुमान जी ने बताया कि सीता जी की दशरथ जी से भी ऊँची स्थिति थी। कोई ये न सोचे कि दशरथ जी ने प्राण छोड़ दिया तो केवल उनका ही एकमात्र प्रेम था और सीता जी का 'प्रेम' प्रेम नहीं था। बहुत से लोग ऐसा सोचते हैं कि प्राण छोड़ना ही प्रेम की एक बहुत बड़ी कसौटी है परन्तु ऐसी बात नहीं है, प्राण छोड़ना बड़ी बात नहीं है, बड़ी बात है भगवन्नाम ग्रहण, बड़ी बात है भगवान् का ध्यान, बड़ी बात है भगवान् के चरणों में चित्तवृत्ति लगाना।

☀ चिन्तन ☀

भगवान् से मिलने की डोर क्या है? भगवान् की याद।

जल में बसै कुमुदनी, चन्द्र बसै आकाश।
जो जाके हृदय बसै, सो ताहि के पास॥

चन्द्रमा आकाश में रहता है और कुमुदनी पानी में कितनी दूरी पर रहती है लेकिन चाँद को देखकर के कुमुदनी खिलती है। इसी तरह आकाश में बादल गरजते हैं और मोर उन्हें देखकर नाचता है, मोर जमीन पर रहता है और कभी बादल से मोर मिल नहीं पाता लेकिन क्योंकि उसके हृदय में निरन्तर बादल का प्रेम है तो वो खुशी से नाचता रहता है। जिसके हृदय में जो बसता है वह उसके ही पास है। ***हर समय भगवान् को सोचो, भगवान् को हृदय में रखो तो हर समय भगवान् तुम्हारे पास हैं।*** भगवान् ने कहा है कि "तुम बस मुझे सोचो, सोचने से तुम मेरे पास और मैं तुम्हारे पास आ जाऊँगा।"

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः॥

(गी. १२/८)

ये सोचने की डोर, प्रेम की डोर है। जैसे पतंग की डोर हिलाने से पतंग इधर-उधर हो जाती है क्योंकि डोर से ही पतंग उड़ती है। वैसे ही भगवान् से मिलने की डोर क्या है? भगवान् की याद, भगवान् का चिन्तन। भगवान् गीता में कहते हैं –

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना ।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन् ॥

(गी. ८/८)

"तुम्हारा चिन्तन अगर सच्चा हो गया तो मैं मिल गया।" चिन्तन के लिये ही सत्संग किया जाता है कि भगवान् की याद आ जाये, याद का अभ्यास हो जाये।

अभ्यास कैसा हो? ऐसा नहीं कि माला लेकर बैठ गये और सोचते हैं अब पंगत का समय है। इसे अभ्यास नहीं कहते हैं। अभ्यास उसे कहते हैं कि चित्त दूसरी जगह न जाये। भगवान् ने कहा – अर्जुन ! तू युद्ध करते हुए मेरा ही चिन्तन कर।

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥

(गी. ८/७)

इसे याद करना कहते हैं कि चित्त कहीं सुख में या दुःख में न जाये। खीर खाते-खाते भी खीर का स्वाद नहीं, बस प्रभु की याद बनी हुई है। सामने बच्चा खड़ा है, स्त्री खड़ी है पर फिर भी प्रभु की याद बनी हुई है। कोई बीमार है या कोई कष्ट है फिर भी भगवान् की याद बनी हुई है। ये है याद। ये है प्रभु का सच्चा चिन्तन। दूसरी जगह कहीं भी मन जाये ही नहीं। अगर तुमने ऐसा कर लिया तो प्रभु के पास पहुँच जाओगे, निश्चय पहुँच जाओगे। भगवान् के पास पहुँचने का जो सहारा है वो ये याद ही है। जो भगवान् की याद करते हैं वे पहुँच जाते हैं। ये सहारा, ये डोर हमें कहाँ से मिलेगी? सत्संग से। ये डोर हमें सत्संग से मिलती है।

☀ एक ही चिंता ☀

भक्त में पूर्वराग (प्रेम) होना बहुत जरुरी है। भक्त के मन में बस एक ही चिंता रहती है कि हमारा प्यारा हमें कैसे मिले? मैं प्रभु को रिझाने का क्या उपाय करूँ? इस राग के बिना वह प्रभु को कैसे खोजेगा? ये लक्षण ही प्रभु प्रेम की शुरुआत है कि प्रभु का मिलन कैसे हो? जैसे-जैसे ये इच्छा प्रबल होती है, वैसे-वैसे ही सब अन्य इच्छाएँ इसमें लीन हो जाती हैं। सांसारिक सुख भी अपने आप फीके लगते हैं।

जैसे सूर्य अँधेरे को रौंद डालता है उसी तरह भगवद्-रति सारे मल अर्थात् विषय व विकारों को भून डालती है। 'पूर्वराग' प्रेम की वह अवस्था है कि जीव का अभी भगवान् से मिलन तो नहीं हुआ और **राग** यानि प्रेम अर्थात् प्रभु-मिलन की तीव्र इच्छा जागृत हो गई है। वह इतनी बढ़ने लगी है कि भक्त सदा इसी चिंतन में तन्मय रहने लगा है कि प्रेम-पात्र भगवान् कैसे मिलेंगे?

हर क्षण, हर पल वह प्रभु की सोच में ही खोया रहता है। यहाँ तक कि प्रभु के बिना उसे हर आनन्द सूना (नीरस) लगने लगता है। कुछ भी अच्छा नहीं लगता। सारा संसार सूना-सूना लगता है। ये भक्त की अवस्था 'पूर्वराग' कहलाती है। जैसे मछली को पानी से निकालकर दूध के सागर में रख दो तो वह जीवित नहीं रहेगी।

जाकौ मन लाग्यौ नँदलालहिं, ताहि और नहिं भावै हो ।
जौ लै मीन दूध मैं डारै, बिनु जल नहिं सचु पावै हो ॥

प्रेम की परिभाषा यही है कि अपने प्रेमास्पद के बिना रहा ही न जाय, वो ही प्रेम है। शरणागति शरीर की नहीं बल्कि मन की होती है। भरत जी शरीर से तो अयोध्या में रहे थे परन्तु मन राम जी के साथ निरन्तर था। गोपियों को श्रीकृष्ण का वियोग १०९ वर्ष तक रहा फिर भी प्रेम नष्ट नहीं हुआ। प्रेम क्या है? प्रेम वही है जहाँ बुद्धि

का लय हो जाता है; फिर उस जीव को ये पता ही नहीं रहता कि धर्म क्या है? अधर्म क्या है? सत्कर्म क्या है? प्रेम स्वतन्त्र है, ईश्वर रूप है।

प्रेम में भगवान् की भगवत्ता या मर्यादा भी लुप्त हो जाती है। प्रेम की विचित्रता समझी नहीं जा सकती, ये ही भगवत्प्रेम है। जब प्रेम होता है तो इतना तादात्म्य हो जाता है कि वहाँ श्रीकृष्ण के अतिरिक्त कुछ दीखता ही नहीं। अपना सब कुछ हार जाने के बाद ही प्रेम की सिद्धि हो सकती है। प्रभु तो ऐसे दयालु हैं कि अगर हम एक कदम भी उनकी ओर बढ़ायेंगे तो प्रभु हमारी तरफ सौ कदम बढ़ायेंगे। एक बार प्रभु की ओर चलकर तो देखो।

जो तू धावै एक पग, तो मैं धाऊँ पग साठ।
जो तू करै काठ, तो मैं लोहे की लाठ॥

☀ विषय ☀

विषय बड़े प्रबल हैं। विषय माने जो विशेष बाँध देते हैं, इतना बाँध देते हैं कि मन स्वतन्त्र नहीं रहता, मन आधीन हो जाता है। विषयों में वह शक्ति है कि ये मन, बुद्धि, चित्त सबको बाँध देते हैं। कितनी भी कोशिश कर लो, साधु बन जाओ, विरक्त बन जाओ लेकिन ये विषयों के बंधन नहीं छूटते। विषयों में इतनी शक्ति इसलिए है क्योंकि अभ्यास अनादिकाल का है, आज का नहीं है। चाहे हम कुत्ता बने, गधा बने, देवता बने, अप्सरा बने, स्त्री बने, चींटी बने, मछली बने, सर्प बने, हम कुछ भी बने विषय सब जगह थे और सब जगह हैं।

विषय-वासनाओं का विष, कालकूट विष से भी अधिक भयंकर है। हमारी इन्द्रियाँ विष इकट्ठा करती रहती हैं। जैसे – जब आँख प्राकृत रूप की ओर दौड़ती है तो उस समय आँख द्वारा विष का

संग्रह होता है। हमारी एकादश इन्द्रियाँ ही कालिया के सिर हैं। इन्द्रियों में जो विषय रस भरा पड़ा है, वही विष है। यदि हर इन्द्रिय पर श्रीकृष्ण आकर नाचें तो ये इन्द्रियाँ निर्विष हो सकती हैं। नहीं तो हम जितना भोग भोगते रहते हैं उतना ही विष एकत्रित होता रहता है।

विषयों का त्याग तो पीछे होता है, पहले हम यह जानते ही नहीं कि विषय हैं क्या? खाना-पीना, चलना ये सब विषय हैं। फालतू चलना पाँव का विषय है। जब हम व्यर्थ की बातें करते हैं भगवच्चर्चा को छोड़कर के फालतू बोलना भी विषय है। विषय बारह तरह के होते हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, ममता और एक अहंता, ये मिलकर बारह विषय बनते हैं।

एकादशासन्मनसो हि वृत्तय आकूतयः पञ्च धियोऽभिमानः ।
मात्राणि कर्माणि पुरं च तासां वदन्ति हैकादश वीर भूमीः ॥

(भा. ५/११/९)

बिना सम्पर्क के विषय का कोई महत्त्व नहीं है। हलवाई की दुकान में बहुत तरह की मिठाई पड़ी है परन्तु उस मिठाई से आपका कोई सम्बन्ध नहीं है, जब तक कि वो आपके मुँह में नहीं चली जाती है। इन्द्रियों के स्पर्श के बिना विषयों का अनुभव नहीं होता है। जब मिठाई का जिह्वा से स्पर्श होगा, तब हमारी चेतना मिठाई में गयी और तब उस मिठास का अनुभव होगा। विषयों का अनुभव स्पर्श से ही होता है। विषयों का अनुभव इन्द्रियों से जाना जाता है। हम मानते हैं कि रस विषयों में है परन्तु रस विषयों में नहीं है, विषयों में मिठास नहीं है, विषयों में सुख नहीं है, विषय तो इन्द्रियों से प्रकाशित होकर सुखद प्रतीत होते हैं।

प्रभु को वे ही पा सकते हैं जिनको प्रभु के सिवा कुछ और नहीं चाहिए। एक बार नारद जी ने प्रभु से कहा कि "प्रभो ! आपके इस वैकुण्ठ में इतनी अधिक जगह है, जीव धरती पर कितना दुःखी

है, आप उसे यहाँ क्यों नहीं रखते?” प्रभु ने कहा कि “हम तो तैयार हैं, पर यहाँ कोई आना ही नहीं चाहता।” नारद जी ने कहा “प्रभो! मैं लेकर आता हूँ।” नारद जी एक बूढ़े आदमी के पास गये जो मरने वाला था। नारद जी ने कहा कि तुम मौत का क्यों इंतजार करते हो? मेरे साथ वैकुण्ठ चलो और वहाँ सुख-पूर्वक रहो। परन्तु वह नहीं माना। कभी कहता कि बेटे की शादी करके जाऊँगा और कभी कहता कि पोते को देखकर जाऊँगा। ऐसे कहते-कहते ही मर गया, पर नारद जी के साथ नहीं गया।

ऐसे ही नारद जी ने बहुत जीवों को जोर लगाया, पर कोई भी चलने को तैयार नहीं हुआ। अंत में नारद जी प्रभु के पास गये और बोले कि प्रभो! आप ठीक कहते हैं, कोई भी आपके पास नहीं आना चाहता। प्रभु से मिलना वास्तव में कठिन नहीं है, वे हमारी आत्मा हैं, उन्हें कहीं न आना है और न कहीं जाना है। वे तो हमें मिले हुए ही हैं। हमारी मान्यता ने उन्हें अलग कर रखा है। भगवान् तो हमारी ओर उन्मुख हैं, हमने ही पीठ कर रखी है और खिलौनों से खेलने में लगे हुए हैं। हमारे मन, बुद्धि, सब बहिर्मुख हैं। हमारा बर्तन उल्टा रखा हुआ है और वर्षा हो रही है। ऐसे तो चाहे कितने दिन भी बर्तन रखा रहे और कितने दिन भी बारिश होती रहे तब भी हमारा बर्तन खाली ही पड़ा रहेगा। उसी तरह बहिर्मुखता के रहते हमको अनुभूति नहीं हो सकती। जैसे ही हमारी वृत्तियाँ अन्तर्मुख होंगी वैसे ही हमें भगवान् मिल जायेंगे।

योऽन्तः सुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः ।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ॥

(गी. ५/२४)

विषय रूपी खिलौनों से मुँह फेरकर प्रभु की ओर मुख कर लो। उनकी तरफ मुँह कर लो फिर उनकी कृपा का चमत्कार देखो। उनके मिलने में जरा-सी भी देर नहीं लगेगी। अपनी समस्त मन, बुद्धि, इन्द्रियों आदि का प्रवाह श्रीकृष्ण की ओर जैसे ही मुड़ेगा वैसे

ही प्रभु मिलेंगे। प्रभु की लीलायें जो भी तुम्हारे मन के अनुकूल हों उनमें मन लगाते जाओ। भगवान् लीलायें करते ही इसलिए हैं कि हमारा मन सहज में ही उनमें लग जाय। जिसका मन लग जाता है उसे फिर कठिन साधन करने की जरूरत नहीं रहती।

☀ भय ☀

निर्भयता को साधक की पहली सम्पत्ति माना जाता है।

भक्त को एक ही डर होता है कि कहीं हमारा प्रेमी हमसे रूठ न जाय। भक्त तो जो भी उसका प्यारा कर रहा है, उसे प्रेम से सह लेता है, उसे विश्वास होता है कि जो भी मेरा प्यारा कर रहा है वह अच्छा ही कर रहा है। जब तक हमारे में भय है तब तक समझो कि हम परमात्मा से दूर हैं। अगर हमें भय लग रहा है तो इसका मतलब है कि हमारी आस्था प्रभु में बिल्कुल नहीं है। जब तक भगवान् के चरणों को हम ग्रहण नहीं करते हैं, तब तक भय आदि होते रहेंगे।

भक्त कभी भी डरता नहीं है। जिन्हें प्रभु पर विश्वास नहीं होता, सिर्फ वे ही डरते हैं, प्रभु के बल पर भक्त तो बड़े ही निरपेक्ष होते हैं। भक्तों पर बड़े-बड़े संकट आते हैं परन्तु वे संकट उनको निखार देते हैं। भक्तों के अन्दर जो दृढ़ता होती है, वह भगवान् को अपने वश में कर लेती है। प्रभु कैसे वश में हो जाते हैं? ***जब भक्त प्रभु के सहारे पूरे संसार से बेसहारा हो जाता है, ऐसी घड़ियों में भक्त के आर्तनाद से प्रभु हिल जाते हैं।*** जब तक जीव की आशा जीव पक्ष से होती है, वही आशा जीव को भगवान् से दूर कर देती है। जब तक द्रौपदी ने अपने गुरुजनों, पतियों या स्वयं के बल का आश्रय लिया तब तक भगवान् नहीं आये। द्रौपदी के बेसहारे होते ही, वह 'गोविन्द' शब्द पूरा भी नहीं कह पाई थी कि भगवान् आ गए और

साड़ी का ढेर लग गया। संसार के सब सहारों को त्याग दो फिर देखो कि प्रभु आते हैं या नहीं।

तावद्भयं द्रविणगेहसुहृन्निमित्तं
शोकः स्पृहा परिभवो विपुलश्च लोभः ।
तावन्ममेत्यसदवग्रह आर्तिमूलं
यावन्न तेऽङ्घ्रिमभयं प्रवृणीत लोकः ॥

(भा. ३/९/६)

मेरापन की बुद्धि हटते ही जीव के सब डर चले जाते हैं। जीव का प्राण, शरीर सब कुछ परमात्मा का है, फिर जीव को डर क्यों लगता है? क्योंकि जीव ने इस शरीर को अपना समझ रखा है, अपना मानना ही डर का मूल कारण है। जब ये शरीर परमात्मा का है तो वे उसे रखें या मार डालें, वे जो कुछ करें वही ठीक है।

अपनापन हटाने से कभी डर नहीं लगेगा। भय आने पर जीव प्रभु से विमुख होता है। जितना अधिक भय है, उतना ही जीव के अंदर अविद्या है और भय कामनाओं के कारण ही आता है। इच्छा चाहे भोग की हो या मोक्ष की, ये सब पिशाचिनी हैं। इनसे बच जाओगे तो फिर भय कहाँ? प्रभु की प्रेम रूपी ज्योति आते ही भय रूपी अन्धकार भाग जाता है।

यदि सच्ची उपासना है तो भय साधक के पास रुक ही नहीं सकता। तुम्हारी उपासना सच्ची है इसका ये ही ठोस प्रमाण है कि तुम्हारे समस्त भय के संस्कार चले जायेंगे। आप फिर काल से भी नहीं डरोगे। निर्भयता को साधक की पहली सम्पत्ति माना जाता है।

☀ अहम् ☀

अहंकार जिसके अन्दर आ जाता है वह समझता है कि कर्ता मैं हूँ। सूक्ष्म-दृष्टि से हर आदमी को अपनी कमी को देखना चाहिए। हमारे अंदर कौन-सी बात की कमी है? जीव को अपनी कमियों को समझना चाहिए। जितना मनुष्य अपने 'मैं' को काटेगा उतना ही भीतर ज्ञान का प्रकाश होगा। तुम्हारे अंदर के प्रकाश से तुम्हारे साथ-साथ दूसरों को भी लाभ होगा। जैसे – दो पैसे का भी अगर दीपक जला दो तो उसका भी प्रकाश सबको लाभ देता है। ये तो फिर भी तुम्हारे आचरण का दीपक होगा।

प्रभु की सबसे बड़ी कृपा हम पर यह होती है कि वो कृपा करके हमारा अहम् नष्ट कर देते हैं। अहम् को छोड़ने में बड़ी तकलीफ होती है। जैसे एक माँ अपने बच्चे को हाथ से पकड़कर, उस बच्चे का ऑपरेशन करवा देती है, बच्चा चिल्लाता है पर माँ उस समय बड़ी कठोर बन जाती है। वैसे ही प्रभु हमें पकड़कर हमारा अहम् दूर कर देते हैं।

सुनहु राम कर सहज सुभाऊ।
जन अभिमान न राखहिं काऊ॥
संसृत मूल सूलप्रद नाना।
सकल सोक दायक अभिमाना॥
ताते करहिं कृपानिधि दूरी।
सेवक पर ममता अति भूरी॥
जिमि सिसु तन ब्रन होई गोसाईं।
मातु चिराव कठिन की नाईं॥

(रा.च.मा.उत्तर. ७४)

ये अहम् इतना सूक्ष्म होता है कि इसको देखना, पकड़ना व समझना बिना प्रभु की कृपा से जीव के लिए असम्भव है। तीनों

देवताओं में विष्णु जी बड़े क्यों माने गये? क्योंकि विष्णु जी के आचरण में अहम् नहीं था। जब भृगु जी ने ब्रह्मा जी को प्रणाम नहीं किया तो वे रूठ गये, शिव जी भी क्रोधित हो गये परन्तु विष्णु भगवान् को तो भृगु जी ने लात मारी तो भी उन्होंने उसको वरदान मान लिया। इसका भाव यही है कि जितना हमने अपने मैं-मेरेपन को कुचल दिया उतना ही अच्छा है।

हमें अपनी भक्ति, जप या तप का अहंकार नहीं करना चाहिए। एक तपस्वी ने काफी तप किया और तप से प्रसन्न होकर प्रभु प्रगट हो गए। तपस्वी को अहंकार हो गया कि मैं तो बड़ा तपस्वी हूँ, मैंने अपने तप से प्रभु को प्रगट कर लिया है। प्रभु ने कहा कि "वरदान माँग लो" तो उसने कहा कि "महाराज! आप तो जानते ही हैं कि मैंने कितने वर्ष तप किया तो उसके हिसाब से फल दे दो।" भगवान् ने कहा कि "कल बतायेंगे।" दूसरे दिन भयंकर गर्मी पड़ी और सभी जगह पानी सूख गया। तपस्वी जी प्यास के कारण मरणासन्न स्थिति में पहुँच गये। उसी समय भगवान् प्रगट हो गये और उन्होंने कहा कि तुम अपना फल ले लो। तपस्वी ने कहा कि "महाराज! इस समय तो मैं प्यास से मर रहा हूँ, आप मुझे पानी दे दो।" भगवान् ने कहा कि तुम मुझे अपनी तपस्या दो, तब पानी मिलेगा। उसने तपस्या दे दी और भगवान् ने उसे पानी दे दिया। भगवान् ने कहा कि तुम्हारी तपस्या का फल सिर्फ एक गिलास पानी था। तब उसकी आँखे खुलीं और वह भगवान् की शरण में अहंकार को त्यागकर गया।

भगवान् से मिलने का एक क्रम है। पहले भाव आयेगा फिर प्रभु आयेंगे। जैसे सूर्य बाद में आता है पहले उसका प्रकाश, उसकी किरणें आ जाती हैं, उसी प्रकार प्रेमरूपी सूर्य तो बाद में उदय होता है पहले उसकी किरणें आ जाती हैं। वह किरण ही भाव है। हृदय में भाव नहीं तो प्रेम कहाँ? प्रेम नहीं तो भगवान् कहाँ? भाव कैसे

आयेगा? जब मन में कोई अन्धकार नहीं होगा, तब भाव-सूर्य का उदय होगा। अन्धकार क्या है? अपनी अहंता-ममता ही अन्धकार है। अतः हमें अपनी अहंता-ममता का समर्पण करना है प्रभु के चरणों में। समर्पण करते ही अन्धकार दूर हो जायेगा।

यत्पादसेवाभिरूचिस्तपस्विनामशेषजन्मोपचितं मलं धियः ।

(भा. ४/२१/३१)

संसार में अहम् नाश करने का उपाय केवल सेवा है। नहीं तो जीव में अहम् का मैल रोम-रोम में भरा हुआ है। एक कुत्ते के दरवाजे के पास अगर दूसरा कुत्ता आ जाय तो कुत्ता भी भौंकता है। हमारे अन्त:करण में अनगिनत जन्मों का जो मल इकट्ठा हुआ है वह कैसे जायेगा? सिर्फ सेवा से; जैसे ही जीव की सेवा में रुचि होने लग जाती है उसी क्षण बुद्धि का मैल दूर होने लग जाता है। जैसे – भगवान् के चरणों से निकली गंगा कभी भी न ही किसी को मना करती है और न ही पाप नष्ट करने में देर लगाती है, वैसे ही सेवा गंगा भी जीव के अहम् को नष्ट करने में न ही मना करती है और न ही देर लगाती है।

हमारे अंदर 'अहम्' है इसका हमें कैसे पता चले? इसको जानने का एक तरीका है।

तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः ।
गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते ॥

(गी. ३/२८)

सारा संसार प्रकृति से चल रहा है। हमारे में भी शक्ति प्रकृति से आ रही है लेकिन अहंकार जिसके ऊपर आ जाता है, वह समझता है कि कर्ता-धर्ता सब मैं ही हूँ।

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ।
अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥

(गी. ३/२७)

मैं कर रहा हूँ, ये भाव जब तक है तब तक अहम् भाव है। 'मैं कर रहा हूँ' की जगह पर अगर 'प्रभु करवा रहे हैं' की प्रतीति होने लग जाये तो समझो अहम् चला गया है; फिर न तो किसी भी प्रकार का काम सताता है और न ही क्रोध। फिर तो प्रभु जैसा भी करवा रहा है सब ठीक है। जैसे मैल हट जाने के बाद ही स्नान करने का फायदा है, वैसे ही मन साफ करने के बाद भक्ति करने का फायदा है। बिना मैल निकाले तुम्हारा सब किया-कराया व्यर्थ हो जायेगा।

एक बार एक गाँव के कुँए में कुत्ता मर गया, उसकी दुर्गन्ध पूरे गाँव में फैल गई। सब गाँव वाले पंडित जी के पास गये कि कुँए की दुर्गन्ध कैसे दूर हो? पंडित जी ने बताया कि पूजा करवा दो, दुर्गन्ध चली जायेगी। सबने मिलकर पूजा करवा दी परन्तु दुर्गन्ध दूर ही नहीं हुई। तब एक संत उस गाँव में आये तो उन्होंने पूछा कि "क्या कुत्ता कुँए से निकाल दिया था?" तो सबने कहा कि "नहीं, पंडित जी ने उसे निकालने को नहीं कहा था।" संत ने कहा कि "अरे! चाहे पूजन आदि कुछ न करवाते परन्तु अगर केवल कुत्ता ही निकाल देते तो दुर्गन्ध दूर हो जाती।"

ऐसे ही अहम् रूपी दुर्गन्ध हमारे रोम-रोम में भरी पड़ी है। अहम् निकालकर भक्ति करोगे तभी यह फल देगी, नहीं तो दुर्गन्ध आती ही रहेगी। सैकड़ों लोग विरक्त बन जाते हैं लेकिन विरक्त बनने के बाद भी उनमें विरक्ति का अहंकार बना रहता है परन्तु अहम् चले जाने पर अगर जीव भक्ति-मार्ग में है तो वह जीव भगवद्-रूप हो जायेगा। अगर वह जीव ज्ञान-मार्गी है तो वह ब्रह्मरूप हो जायेगा। समस्त दुःखों की जड़ 'अहम्' ही है।

☀ साधक में विवेक ☀

जिस वस्तु को विवेक के साथ ग्रहण किया जाता है वह वस्तु स्थाई होती है; इसीलिए साधक में विवेक को भक्ति से बड़ा माना गया है। ये उल्टी बात है जबकि भक्ति सबसे बड़ी है और ज्ञान व वैराग्य तो भक्ति के लड़के हैं परन्तु भगवान् कहते हैं कि "साधक के लिए विवेक पहले चाहिए।"

तस्मादज्ञानसम्भूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः ।
छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत ॥

(गी. ४/४२)

उपासना में खड़े होने से पहले संशय को काटकर खड़े हो जाओगे तो बढ़िया है नहीं तो गिर जाओगे। उपासना करने से पहले इस बात को अच्छी तरह समझ लो, जब तक मन में संशय है, तब तक उपासना नहीं हो पायेगी परन्तु जब तुम अज्ञान के संशय को ज्ञान रूपी तलवार से काटकर के उपासना करोगे तो फिर कोई भी तुम्हें हिला नहीं पायेगा। ***भक्ति करने वाले के पास असीमित भोग आते हैं, वही सबसे बड़ा अनर्थ है। यदि इससे जीव बच जाय तो बेड़ा पार है।*** अनर्थ चार होते हैं। एक तो पापों के कारण अनर्थ होता है। दूसरा अनर्थ सत्कार्य करने के पश्चात् भोगों में लिप्त हो जाना या अहम् के वशीभूत होकर पाप कर्म करना। तीसरा अनर्थ है कि भक्त ही भक्त से द्वेष करता है और महापुरुषों का अपराध भी करने लग जाता है। चौथा अनर्थ ये है कि आप भक्त हैं, इस धारणा से लोग आपको सम्मान देंगे, धीरे-धीरे आप सम्मान की अपेक्षा करने लगेंगे।

विवेक से भक्ति-मार्ग में आने वाले अनर्थों से बचा जा सकता है। दया या कृपा में यदि विवेक नहीं है तो वह विनाशकारी हो जायेगी। पृथ्वीराज चौहान ने दया करके १७ बार मुहम्मद गोरी को

छोड़ दिया था परन्तु अंत में उसी गोरी ने विश्वासघात कर पृथ्वीराज को कैद कर लिया और अन्धा बना दिया, जिससे देश का बड़ा नुकसान हुआ। माता-पिता भी अपनी संतान के प्रति मोहवश दया करते हैं; जैसे – धृतराष्ट्र ने किया और परिणाम में सारा वंश समाप्त हो गया। यह बात विदुर जी ने कही थी धृतराष्ट्र को कि भैया ! इस कृष्ण-विमुख पुत्र के प्रेम में आप श्रीहीन हो रहे हैं।

स एष दोषः पुरुषद्विडास्ते गृहान् प्रविष्टो यमपत्यमत्या ।
पुष्णासि कृष्णाद्विमुखो गतश्रीस्त्यजाश्वशैवं कुलकौशलाय ॥

(भा. ३/१/१३)

मादा बिच्छू अपने शरीर को जीते जी अपने बच्चों को खिला देती है, उससे न तो बिच्छुओं ने जहर छोड़ा और न ही वो भव सागर से पार हुई। ऐसी दया नीच लोग ही किया करते हैं। विवेक के कारण ही बलि ने गुरु तक को छोड़ दिया था और भगवान् की माया पर विजय प्राप्त कर ली थी। इसलिए भक्ति मार्ग में विवेक होना अति आवश्यक है।

☀ सच्चे शत्रु – काम और क्रोध ☀

सच्चा शत्रु कौन है जीव का, जिससे जीव को रक्षा चाहिए। काम और क्रोध ही जीव के शत्रु हैं। काम और क्रोध से बचना ही जीव की वास्तविक रक्षा है। प्रभु की कृपा के बिना जीव काम और क्रोध से स्वयं नहीं बच सकता। आपत्ति से रक्षा कर देना, मृत्यु से रक्षा कर देना, दरिद्रता से रक्षा कर देना, कोई रक्षा करना नहीं है। एक आपत्ति के बाद दूसरी आपत्ति आ जाती है। हमारे अन्दर इच्छाएँ उत्पन्न न हों, ये ही भगवान् का वास्तविक देना है।

हजारों सूर्य भी मिलकर हमारे हृदय के अन्धकार को दूर नहीं कर पाते। प्रभु माँ की भाँति स्वयं कष्ट सहकर अपने भक्तों की रक्षा

करते हैं। जैसे उन्होंने नारद जी का विवाह नहीं होने दिया और स्वयं अपने ऊपर श्राप ले लिया। इच्छा कोई भी हो, वह जीव को जीते-जी खा जाती है। समस्त अपराधों का मूल काम है परन्तु हम इस कामना को छोड़ना ही नहीं चाहते। इन कामनाओं को छोड़ना हमें अच्छा ही नहीं लगता। क्रोध क्यों आता है? क्रोध इसलिए आता है कि या तो हमारी इच्छा पूरी नहीं हो रही या उसमें कोई बाधा उत्पन्न कर रहा है।

क्रोध से चित्त कठोर बन जाता है। प्राणी जैसे संग में रहता है, वैसा ही चिंतन करता है और फिर वैसा ही बन जाता है। हर प्राणी सतत् घूम रहा है क्योंकि वह अशांत है जबकि उसके हृदय में आनन्द के समुद्र भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र विराजमान हैं। जीव अशांत इसलिए होता है कि या तो वह काम से या क्रोध से जल रहा है।

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते ।
सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥

(गी. २/६२, ६३)

ये काम व क्रोध हमारी स्मृति को नष्ट कर देते हैं, जिससे ज्ञान भी नष्ट हो जाता है। एक समय था कि सुग्रीव बालि के भय से इधर-उधर भागते फिरते थे। यहाँ तक कि बालि ने उनकी स्त्री तक का हरण कर लिया था फिर दूसरा समय ये आया कि बालि के मरने के बाद सुग्रीव ने उसकी स्त्री को तो रख ही लिया और साथ में ये भी भूल गये कि हमें सीता जी की खोज भी करनी है। ज्ञान नष्ट होने पर विनाश निश्चित है।

☀ संतुष्टि ☀

संसार का हेतु ही असंतोष है। असंतोष के कारण ही जीव पाप करता है। सम्पूर्ण त्रिलोकी के विषय भी एक जीव को तृप्त नहीं कर सकते, त्याग ही जीव को तृप्त कर सकता है। अतः भोगी मत बनो, त्यागी बनो। इस सत्य को सदा स्मरण में रखो कि त्रिलोकी का भोग भोगने के बाद भी तुम भूखे ही बने रहोगे। भोग से तो कभी भी तृप्ति हो ही नहीं सकती।

यावन्तो विषयाः प्रेष्ठास्त्रिलोक्यामजितेन्द्रियम् ।
न शक्नुवन्ति ते सर्वे प्रतिपूरयितुं नृप ॥

(भा. ८/१९/२१)

जितने भी विषय हैं वे तृष्णा रूप हैं। तृष्णा उसे कहते हैं जिसमें कभी भी प्यास नहीं बुझती। अग्नि के पास जाकर सोचो कि हमें शान्ति मिले तो ये कैसे सम्भव है? इन वासनाओं को व विषयों को संतुष्टि से ही समाप्त किया जा सकता है। जो दैव इच्छा से प्राप्त हो, उसमें ही संतुष्ट रहो। नारद जी ने भी ध्रुव जी को यही कहा –

यस्य यद् दैवविहितं स तेन सुखदुःखयोः ।
आत्मानं तोषयन्देही तमसः पारमृच्छति ॥

(भा. ४/८/३३)

जो धनी है, उसका सारा समय उस धन की तृष्णा में व असंतोष में जाता है। वह सदा भगवन्नाम व संतोष रूपी धन से दूर रहता है। ***आशा का दास सबका दास बन जाता है*** पर कभी प्रभु का दास नहीं बन पाता। जिस जीव को एक बार अपने स्वामी पर विश्वास हो जायेगा, तब वह इधर-उधर नहीं जायेगा; कुत्ते की तरह जगह-जगह नहीं भटकेगा। संतोष से प्रभु के चरणों में ही बैठा रहेगा। भक्ति के रास्ते पर ज्यादा कठिन साधन – जप, तप या योग की आवश्यकता नहीं है परन्तु आवश्यकता है सदा संतुष्ट रहने की ताकि द्वंद्वों से परे रहकर तुम शान्त रह सको।

चक्रवर्ती सम्राट् होते हुए भी अम्बरीष जी सदा संतुष्ट थे परन्तु हम अभी छोटे से साधक भी नहीं बने हैं और हम अनेक इच्छाओं के जाल में फँसे रहते हैं। अपार धन-सम्पत्ति वाला भी संतुष्ट हो सकता है या तृष्णा से भरा हो सकता है और जिसके पास धन नहीं है वह भी संतुष्ट हो सकता है या तृष्णा से भरा हो सकता है। संतुष्टि का सम्बन्ध सिर्फ मन से है। ***संसार में दुःख का कारण मन का असंतोष ही है।*** जब लकड़ी में घुन लग जाता है तो वह कितनी भी कीमती लकड़ी है पर वह लकड़ी बेकार हो जाती है, उसकी कोई कीमत नहीं रहती है और फिर वह फेंकनी पड़ती है क्योंकि अगर नहीं फेंकोगे तो बाकी भी लकड़ियाँ खराब हो जायेंगी।

ऐसा ही हमारा शरीर है, इसमें मन ही घुन है जो शरीर रूपी लकड़ी को सारहीन बना रहा है। जब तक हमारे मन में वासनायें हैं, तब तक संसार रूपी वृक्ष बढ़ता ही रहेगा। इस संसार रूपी वृक्ष को उखाड़कर उसको पाओ जिसको आज तक नहीं पाया है। सुख के लिए प्रयत्न क्यों करते हो? जैसे दुःख बिना बुलाये आता है, उसी तरह सुख भी जितना तुम्हें मिलना है, बिना माँगे अवश्य मिलेगा। प्रयत्न करो तो केवल उसी के लिए करो जिसको अब तक प्राप्त नहीं कर सके हो। ***संसारी सुख के लिए प्रयत्न करके अपनी जिन्दगी को मिट्टी में क्यों मिलाते हो? प्रयत्न केवल प्रभु प्राप्ति का करो।*** इससे पहले कि संसार तुमको छोड़ दे, तुम संसार को छोड़ दो अर्थात् संसार को अपने मन से निकाल दो। जो वस्तु रहने वाली नहीं है, उसका संग्रह फिर क्यों? जो सदा हमारे साथ रहने वाला है, उसको पाओ; उसे ही ढूँढ़ने की कोशिश करो।

संसार में हर प्राणी सुख की कामना करता है पर जहाँ कामना आयी, वहीं जीव नष्ट हो जाता है। भीष्म पितामह ने यही कहा था जब युधिष्ठिर ने पूछा था कि महाराज! मौत क्या है? भीष्म पितामह ने एक बहुत बड़ी बात कही; भीष्म पितामह बोले कि

युधिष्ठिर ! देखो, जैसे किसी के फोड़ा हो, शुरू में इलाज नहीं हुआ तो बढ़कर कैंसर बन जाता है और कैंसर की जड़ें बहुत भीतर फैल जाती हैं। जब फोड़ा बनना शुरू हुआ था तभी इलाज हो सकता था। इसी तरह जो ***मनुष्य के भीतर इच्छाएँ आती हैं ये ही पककर मौत बन जाती हैं। इसी का नाम मृत्यु है।***

सुख तो इस भवसागर में मिल ही नहीं सकता है। मद, मोह, मात्सर्य, काम, क्रोध, लोभ – ये छः डाकू हमें सदा लूटते रहे हैं। ये डाकू उसी को लूटते हैं जिसकी बुद्धि कामना से भ्रष्ट और नष्ट हो गयी है। सब सम्बन्धी सियार हैं, जो जीते जी जीव को खा रहे हैं फिर भी जीव उन लुटेरों से बचने का प्रयत्न नहीं करता। संसार तो दुःख रूप है और इसमें जीव सुख की चाह लेकर भटकता रहता है, सुख की आशा उसकी पिपासा को और अधिक बढ़ाती रहती है।

मनुष्य वृद्ध हो जाता है परन्तु सुख की आशा बनी ही रहती है। जब सब नष्ट हो रहा है और सुख नाम की कोई चीज है ही नहीं फिर सुख की कामना क्यों? अनित्य शरीर से ऊपर उठो। शरीर से ऊपर उठते ही तुम सुखों को छोड़कर आनन्द में आ जाओगे। भोग-सुख केवल एक स्वप्नमात्र है। स्वप्न में खाया भोजन क्या भूख को शान्त कर सकता है; 'नहीं, बल्कि वह भूख अग्नि को और भी अधिक बढ़ा देगा। ये सुख की भ्रान्ति सच्चा सुख पाने के लिए मिटानी होगी। आशायें जीव को दुर्बल बना देती हैं और कमजोर व्यक्ति भक्ति मार्ग पर नहीं चल सकता। भगवान् के अविनाशी पद को प्राप्त करने के लिए हमें इन दुर्बलताओं का त्याग करना ही पड़ेगा।

सदा सन्तुष्टमनसः सर्वाः सुखमया दिशः ।
शर्कराकण्टकादिभ्यो यथोपानत्पदः शिवम् ॥

(भा. ७/१५/१७)

भक्त के पास एक कवच होता है, वह कवच क्या है? भक्त हर परिस्थिति में संतुष्ट रहता है। संतुष्टि ही उसका कवच है। यह संसार एक काँटों का जंगल है, इसमें कहाँ तक बचोगे? काँटों से बचने के लिए जूता रूपी कवच पहन लो। अतः इस संसार में संतोष रूपी कवच धारण कर लो। भयंकर से भयंकर स्थिति है तो भी संतुष्ट रहो। सच्चा भक्त हर स्थिति में भगवद्कृपा का अनुभव करता है। भक्त हार में भी अपना हित ही समझता है।

विपदः सन्तु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो ।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम् ॥

(भा. १/८/२५)

कुंती जी ने जान-बूझकर कष्टों का वरण किया। हम लोग इन बातों को सुनते तो बहुत हैं परन्तु कुछ भी जीवन में नहीं अपनाते। ***हमें विश्वास रखना चाहिए कि भगवान् के आश्रय में कभी भी अमंगल नहीं होता, सदा मंगल ही मंगल होता है।***

☀ कर्म ☀

सभी कर्म भविष्य में फल बनकर सामने आते हैं।

कुछ लोग कर्म करना ही छोड़ देते हैं, ये गलत है। क्रिया का त्याग कर दोगे तो पता कैसे चलेगा कि मैं कर रहा हूँ या नहीं कर रहा हूँ, कर्म त्याग से ये पता नहीं चलता। कर्म करने पर ही पता चलता है कि हम उससे कितना जुड़े हुए हैं।

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः ।

(गी. ३/८)

हमारे बाबा (श्री प्रियाशरणजी महाराज) एक बात बताते थे कि जो बंदर होता है वह सर्प पकड़ लेता है, पकड़कर उसके मुख को जमीन पर रगड़ता है और फिर उसको उठाकर फूँ-फूँ करता है। अगर सर्प जिन्दा होता है तो वो भी फन उठाकर फूँ-फूँ करने लग

जाता है फिर बन्दर समझ जाता है कि अभी ये जिन्दा है। वह उसे फिर घिसता है, फिर उठाता है। जब तक सर्प जिन्दा होता है, वो फूँ-फूँ करता है। जब सर्प मर जाता है तो बंदर कितना भी फूँ-फूँ करे पर सर्प कुछ नहीं करता।

इसलिए हमें कर्म छोड़ने से नहीं, उसे करने से ही पता चलता है कि अहम् है या मर गया। आज का कर्म कल का फल होगा। आज का कर्म भविष्य का फल होगा। हमारे हाथ में जो समय है, हम उसका कुछ भी कर सकते हैं परन्तु जब ये समय हमारे हाथ से निकल गया तो हम कुछ भी नहीं कर सकते। अतः कर्म करते समय हमें बहुत ही सावधान होना चाहिए क्योंकि जो एक बार हो गया, वह बदल नहीं सकता। ***सभी कर्म भविष्य में फल बनकर सामने आते हैं। हर कर्म को सावधानी से करो।*** जो भगवान् को पसन्द हों वे ही कर्म करो और जो उन्हें पसन्द न हों वे कर्म मत करो। हमारे जो बाबा (श्री प्रिया शरण जी महराज) थे, वह एक बार अनुष्ठान कर रहे थे तो जो उनके भी गुरुदेव (पण्डित राम कृष्ण दास जी) थे, उन्होंने बाबा से अनुष्ठान छुड़वा दिया। उन्होंने कहा कि अनुष्ठान मत करो। जितने भी मन्त्र हैं उनसे ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है, तुम निष्काम होकर भगवन्नाम लो। सब मन्त्र भगवन्नाम से ही तो बने हैं, इसलिए भगवन्नाम ही लेना चाहिए, नहीं तो तुममें और एक पंडित में क्या फर्क रह जायेगा?

अभी जो भी हम वर्तमान में कर्म कर रहे हैं, ये ही आगे चलकर संचित कर्म में बदल जायेंगे और हमारा प्रारब्ध बनकर आयेंगे। अभी यह हमारे वश में है कि हम कैसे कर्म करते हैं? हम इन्हें सुधार सकते हैं। हम इन्हें प्रभु को अर्पण करके निष्काम भाव से कर सकते हैं ताकि आगे चलकर ये संचित कर्म न बनें। हमारे कर्म, कुम्हार के घड़े बनाने की गीली मिट्टी के समान हैं। जैसा हम चाहे

बना सकते हैं किन्तु यदि ये मिट्टी सूख जायेगी तो फिर हम उससे मनचाहा आकार नहीं बना सकते।

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभि धीयते ।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ॥

(गी. १३/१)

भगवान् ने शरीर को क्षेत्र और जीव को क्षेत्रज्ञ कहा है। शरीर से जो कर्म उत्पन्न होते हैं, वे सदा जीव के साथ बने रहते हैं। वे नष्ट नहीं होते। वे चित्त में संस्कारों के रूप में एकत्रित होते रहते हैं। संस्कार चित्त को रंग देता है। शरीर से कर्मों की खेती होती है, जो भी खेती तुम करोगे, वही तुम्हें खानी पड़ेगी। जैसा बीज खेती में डालोगे, वैसी ही उपलब्धि आपको होगी।

नावमः कर्मकल्पोऽपि विफलायेश्वरार्पितः ।
कल्पते पुरुषस्यैष स ह्यात्मा दयितो हितः ॥

(भा. ८/५/४८)

छोटे से छोटा कर्म जिसका सम्बन्ध प्रभु से जुड़ गया, वही साधन बन गया। वही कर्म तुम्हें प्रभु से निश्चित मिला देगा। इसलिए हर कर्म प्रभु के लिए करो। किसी भी बहाने से एक बार मन श्रीकृष्ण में लग जाये। एक बार सम्बन्ध जुड़ जाये, तो बस मानो कि विद्युत करंट ने तुमको पकड़ लिया। फिर ये छूटने वाला नहीं। कर्म से प्रभु प्रसन्न होते हैं लेकिन कोई कर्म करना ही नहीं चाहता; नहीं तो कर्म करना तो ऐसा साधन है कि तुम्हारा प्रत्येक कर्म प्रभु से मिला सकता है। गोपियों के समस्त कर्म श्रीकृष्ण के लिए ही थे। गोपियों ने विरह में भी श्रृंगार किया। क्यों किया? क्योंकि गोपियों का विरह में भी 'श्रृंगार' प्रभु मिलन की आशा में था।

गोपियों ने विरह में प्राण छोड़ने का भी विचार किया था परन्तु प्रश्न उठा कि तुम जिसके लिए जीती हो, तुम्हारे प्राण त्यागने पर क्या वह प्रसन्न होगा? कभी नहीं। अतः वे उनकी प्रसन्नता के

लिए जीती रहीं। गोपियों का तो हर कार्य प्रभु की प्रसन्नता के लिए होता था। श्रीकृष्ण को थोड़ा-सा भी कष्ट न हो, यही उनका उद्देश्य था। रैदासजी जूता सिलते-सिलते प्रभु से मिल गये, नामदेवजी रंगरेज थे, कबीरदासजी जुलाहा थे, सैन भक्त नाई थे। सभी अपने-अपने साधारण कर्मों के माध्यम से ही प्रभु से मिल गए।

कर्म कोई भी हो, बुरा नहीं है। समस्त प्राणी जिसकी शक्ति से कर्म कर रहे हैं, वह शक्ति परमात्मा की ही है। जिससे ये शक्ति मिली है हमें उसकी सेवा करनी चाहिए। मन, बुद्धि, इन्द्रिय आदि से प्रभु की सेवा करनी चाहिए। जिओ तो श्रीकृष्ण के लिए, खाओ-पिओ तो श्रीकृष्ण के लिए; भक्त की हर क्रिया भगवान् के लिए होती है। भक्त की दीवानगी को कौन समझेगा? यदि शरीर से सामर्थ्य नहीं है तो विचार-दान से सेवा करो परन्तु कार्य करते समय ये याद रखो –

जो कुछ किया सो तुम किया, मैं कुछ किया नाहिं ।
कहो कही जो मैं किया, तुम ही थे मुझ माहिं ॥

☀ भक्त ☀

भक्त कौन है? इसका जवाब चैतन्य महाप्रभु जी ने तीन श्रेणियों में दिया है – जिसके मुख से एक बार भी भगवन्नाम निकल जाये, एक तो वह भक्त है। दूसरा जो सतत् भगवन्नाम में लगा रहता है वो भक्त है, एक भक्त वह है जिसके पास बैठने से भगवन्नाम निकलने लग जाये। चाहे भक्तों को तीन श्रेणियों में बाँटा गया है परन्तु भक्त तीनों ही हैं; अभाव किसी में भी नहीं करना है।

शुकदेवजी ने भी भक्तों की तीन कोटियाँ बताई हैं। पहली कोटि जो कि सबसे उत्तम है, वह ये है कि उत्तम भक्त सभी प्राणियों में भगवान् को देखता है, ये उत्तम भाव है। इससे नीचे मध्यम कोटि

का भक्त वह है जो प्रभु से तो प्रेम करता है, दीनों से मैत्री का भाव और नासमझों पर कृपा करता है। तीसरी कोटि प्राकृत भक्तों की है उसमें भक्त मूर्ति की तो पूजा करता है, मूर्ति में तो भाव रखता है परन्तु और सब जगह भाव न करके अनादर करता है पर ये भी भक्त है, इसकी भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। तुम चाहे मध्यम कोटि के भक्त बनकर कार्य करो परन्तु ये समझते रहो कि उच्च कोटि की भक्ति क्या है? तुमको कहाँ पहुँचना है। अगर आगे का लक्ष्य नहीं रखोगे तो तुम आगे नहीं बढ़ पाओगे। मध्यम से नीचे चले जाओगे। इसलिए हर क्षण सत्संग करो और आगे बढ़ते जाओ, अपने को भक्ति में कहीं भी संतुष्ट मत कर लेना।

भगवान् का भक्त कितना बड़ा है? इसकी महिमा कौन जान सकता है? जहाँ भी भक्त एक बार बैठ जाता है, वहाँ समस्त तीर्थ स्वयं आ जाते हैं।

भवद्विधा भागवतास्तीर्थभूताः स्वयं विभो ।
तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तःस्थेन गदाभृता ॥

(भा. १/१३/१०)

भक्त तो तीर्थ को भी पवित्र करने वाला होता है। भक्त के पास स्वतः एक गंगा नहीं करोड़ों गंगायें आ जाती हैं। भगवान् स्वयं भक्त की पूजा किया करते हैं। सारा संसार तो भगवान् का अनुगमन करता है परन्तु भगवान् अपने भक्त का अनुगमन करते हैं। भगवान् स्वयं कहते हैं कि मेरे अंदर जो गुण हैं वे भक्तों की सेवा के पुण्य प्रताप से प्राप्त हुये हैं।

यत्सेवया चरणपद्मपवित्ररेणुं
सद्यः क्षताखिलमलं प्रतिलब्धशीलम् ।
न श्रीर्विरक्तमपि मां विजहाति यस्याः
प्रेक्षालवार्थ इतरे नियमान् वहन्ति ॥

(भा. ३/१६/७)

भक्तों की सेवा से ही मेरी चरणरज को ऐसी पवित्रता मिली कि वह चरणरज अनन्त पाप राशि चाहे वह करोड़ों जन्मों की ही क्यों न हो, एक क्षण में समाप्त कर देती है। भक्तों की सेवा से ही मुझे ऐसा स्वभाव मिला, जिसके कारण लक्ष्मी जी मुझे कभी छोड़ना ही नहीं चाहतीं।

सोऽहं भवद्भय उपलब्धसुतीर्थकीर्ति-
श्छिन्द्यां स्वबाहुमपि वः प्रतिकूलवृत्तिम् ॥

(भा. ३/१६/६)

भगवान् कहते हैं कि यदि मेरी भुजा भी भक्त का अपराध करेगी तो मैं उसे भी काट दूँगा। इतना बड़ा बन जाता है प्रभु का भक्त। भक्तों का अलग-अलग मार्ग होता है, भक्तों की भिन्न-भिन्न भावनाएँ होती हैं, अलग-अलग स्थितियाँ होती हैं। इसीलिए किसी एक ही रास्ते पर नहीं चला जा सकता, एक ही नियम से सबको नहीं चलाया जा सकता। एक ही तरह से सबको नहीं नापा जा सकता। हर पंथ, हर सम्प्रदाय व हर ग्रन्थ अलग-अलग रास्ता दिखाता है। इस धारणा को लेकर उद्धवजी ने श्रीकृष्ण से प्रश्न किया था कि इनमें से कौन सा रास्ता सही है? भगवान् ने कहा कि जीवों की अलग-अलग प्रकृति होती है, इसलिए उनकी मति भी अलग-अलग है; इसी कारण से बहुत से मार्ग हैं। प्रह्लाद जी ने इसीलिए भक्ति को नौ भागों में बाँट दिया।

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥

(भा. ७/५/२३)

किसी की प्रकृति श्रवण की है तो किसी की अर्चन की और किसी की सेवा की। किसी भी 'मत' को लेकर हठ नहीं करना चाहिए। केवल अपने मार्ग का अनुसरण करो, अपने पर दृष्टि रखो कि हम कहीं राग-द्वेष में तो नहीं फँस रहे हैं। जब हृदय में राग-द्वेष आ जाता है, तभी सब बीमारियाँ आती हैं। अगर चित्त में राग-द्वेष

नहीं हैं तो काल भी उस जीव का कुछ नहीं बिगाड़ सकता। हरिदास ठाकुर जी कोड़े खाते थे और 'हरि-हरि' बोलते थे, जिससे कि उनके सामने वाले का, उनको मारने वाले का भी कल्याण हो जाए।

☀ भक्तापराध ☀

भक्त के अपराध से डरना चाहिए, किसी भी भक्त का अपराध नहीं करो। भगवान् ने स्वयं कहा है – "ब्रह्मा जी ! संसार के जितने भी पाप हैं, उनमें से सबसे बड़ा भक्तापराध ही है।" शिवजी रामचरितमानस में काकभुशुण्डि जी को कहते हैं –

इन्द्र कुलिस मम सूल बिसाला ।
कालदंड हरि चक्र कराला ॥
जो इन्ह कर मारा नहिं मरई ।
बिप्र द्रोह पावक सो जरई ॥

(रा.च.मा.उत्तर. १०९)

रूप गोस्वामीजी से तो अनजान में अपराध हुआ था, एक बार रूपगोस्वामी जी लीला चिन्तन कर रहे थे तो पुष्प चयन लीला में, श्रीकृष्ण सुन्दर-सुन्दर पुष्प, पंजों पर खड़े होकर श्रीजी के लिए लाते हैं किन्तु एक दिन श्रीजी स्वयं पुष्प चुनना चाहतीं हैं, अतः जैसे ही वे उचककर डाल पकड़तीं हैं, श्यामसुंदर डाल छोड़ देते हैं, श्रीजी लटक जातीं हैं।

इस दृश्य को देखकर गोस्वामीजी हँसते हैं। इसी बीच एक लंगड़ा ब्राह्मण वहाँ से जा रहा था, उसको लगा कि रूपजी उस पर हँस रहे हैं, उसको मन में थोडा दुःख हुआ। बस तभी से रूपजी को लीला के दर्शन होना बंद हो गया। इससे दुःखी होकर रूपजी ने सनातनजी से कहा कि हमसे अनजान में कोई अपराध हुआ है, इसीलिए अनुभूति नहीं हो रही है, पता नहीं किसके प्रति अपराध

हुआ है अब माफी भी किससे माँगी जाय? इस पर सनातनजी ने कहा कि तुम वैष्णवों की पंगत करो। उस समय वृन्दावन में गिने चुने भक्त होते थे। सभी आये। पंगत के बाद रूपजी ने कहा कि मुझसे जिस किसी भक्त का जाने-अनजाने में कोई अपराध हो गया हो तो उसके लिये मैं क्षमा माँगता हूँ। इस पर वे लंगड़े ब्राह्मण देव बोले, "तुम्हीं उस दिन मेरी चाल को देखकर हँस रहे थे।" इस घटना के बाद रूपजी को पुनः लीला-दर्शन आरम्भ हो गया।

सनकादिक, भगवान् के प्यारे पार्षदों को भक्तों के प्रति अभाव रखने के कारण, उनकी भलाई के लिये श्राप देते हैं। नारदजी प्रचेताओं से कहते हैं कि रसरूप भगवान् भक्तापराधी का भजन स्वीकार नहीं करते।

न भजति कुमनीषिणां स इज्यां हरिरधनात्मधनप्रियो रसज्ञः ।
श्रुतधनकुलकर्मणां मदैर्ये विदधति पापमकिञ्चनेषु सत्सु ॥

(भा. ४/३१/२१)

यदि हम आध्यात्मिक जीवन में कुछ भी विकास चाहते हैं तो हमें भक्तापराध से अवश्य बचना चाहिए।

ऋषभदेवजी जो पृथ्वी के राजा थे उन्होंने अपने पुत्रों को शिक्षा दी थी कि हर प्राणी का हृदय मंदिर है जिसमें भगवान् रहते हैं। चर-अचर अर्थात् प्राणीमात्र में भगवान् का निवास समझो। चर-अचर सबका सम्मान करो, यही प्रभु-पूजा है।

☀ वाणी का तप ☀

अपनी मधुर वाणी से जीव तीर्थ रूप हो सकता है।

तीन प्रकार के तप होते हैं – शारीरिक, मानसिक एवं वाचिक तप। इन तीनों में से वाचिक अर्थात् वाणी का तप सबसे सरल है। वाणी में कोई परिश्रम नहीं लगता और ना ही कुछ खर्च होता है फिर भी वाणी का तप, शारीरिक व मानसिक तप से बहुत कठिन है। वाणी से ही सबसे अधिक पाप होते हैं। वाणी के पाप से बचने के लिए सदा सत्य वाणी, प्रिय वाणी व हितकर वाणी बोलो।

इन्द्रियों का स्वाभाविक प्रवाह अपने इष्ट की ओर यदि नहीं है तो हमारा सब कुछ व्यर्थ है। स्वाभाविक का तात्पर्य है कि जिसके बिना हम रह नहीं सकें। जैसे चैतन्य महाप्रभु जी शौच के समय अपनी जिह्वा को पकड़कर रखते थे क्योंकि उनकी जिह्वा का स्वाभाविक अभ्यास भगवन्नाम लेने का हो गया था। उनकी जिह्वा रुकती ही नहीं थी, ये है भक्ति। इन्द्रियाँ जब तक संसार के विषयों में दौड़ रही हैं, तब तक भक्ति कहाँ? कपड़े को जिस रंग में रंग दोगे, वह वैसा ही रंग जायेगा। इन्द्रियाँ जब विषयों में रंग जाती हैं, तब लाल व काले (रज और तम) रंग में रंग जाती हैं। इन्द्रियाँ जब भगवान् की तरफ चलती हैं तो भगवद्रूप हो जाती हैं।

जीव की वाणी में ऐसी मधुरता है कि ये वाणी जीवों के हृदय की कठोरता को दूर कर सकती है। सभी लोगों में ज्ञान, बोध व पवित्रता जागृत कर सकती है। अपनी मधुर वाणी से जीव तीर्थ रूप हो सकता है। एक क्षण के लिए भी अगर उसके पास कोई आये तो वो उसे भी अपनी वाणी से पवित्र कर दे। जल की तरह शीतल व पवित्र बनो और दूसरों को शीतलता व पवित्रता प्रदान करो।

स्वच्छः प्रकृतितः स्निग्धो माधुर्यस्तीर्थभूर्नृणाम् ।
मुनिः पुनात्यपां मित्रमीक्षोपस्पर्शकीर्तनैः ॥

(भा. ११/७/४४)

इसीलिए मनुष्य को हर बात सम्भाल कर बोलनी चाहिए। जैसे कि हम कह रहे हैं कि 'दुष्ट' तो दुष्ट शब्द वाणी से ही नहीं कह रहे हैं उसकी लकीर अंदर तक बन जाती है। हमको-तुमको दिखाई नहीं पड़ता; इसीलिए तो भगवान् का नाम जपा जाता है, कीर्तन किया जाता है। जब भगवान् का नाम वाणी से लेंगे तो उससे मध्यमा, पश्यन्ती से परावाणी तक प्रभाव पड़ेगा और धीरे-धीरे सारा शरीर भगवद्मय हो जाएगा। इसीलिए नाम की इतनी महिमा है। जितनी नाम की महिमा है उतना ही गलत बोलने का नुकसान है। हमने किसी को गुंडा कहा तो केवल उसका ही नुकसान नहीं हुआ, ये हमारे भीतर तक पहुँचा। इसीलिए भगवान् ने कहा है कि वाणी का तप शरीर के तप से बड़ा है। कोई शरीर से तपस्या करता है और वर्षों तपस्या करता है, पर वाणी से कोई ऐसी बात निकल गयी तो सारी तपस्या गई। सदा जुबान सम्भाल कर बोलना चाहिए।

कोई गाली दे या गलत बोले पर तुम मत बोलो, तुम अपना नुकसान मत करो। तुम चुप रहोगे तो उसका भी भला होगा और तुम्हारा भी। वो भी आगे गलत बोलने से बच जायेगा। वाणी का तप सब तपों से बड़ा है। वाणी का पाप भी सब पापो में बड़ा है। बाकी पाप तो छुपके करने पड़ते हैं पर वाणी का पाप तो खुलेआम होता है और तो और चेला गुरु के सामने ही वाणी का पाप करता है। लोग भगवान् का दर्शन करते हैं तो भगवान् के सामने ही झगड़ने लग जाते हैं। ये जुबान खुलेआम पाप करवाती है। भरे बाजार में चलती है, बड़ों के सामने चलती है। इसीलिए वाणी के तप को सबसे बड़ा कहा गया है।

वाणी का तप कैसे हो? ऐसी वाणी मत बोले कि जिसे सुनकर, दूसरे को दुःख हो या कष्ट हो, किसी को फटकारो मत। एक शब्द भी बोलो तो ऐसे बोलो कि वो भी भजन बन जाये। हम जितना मीठा व प्यारा बोलेंगे उतना ही अच्छा है। सदा सत्य बोलें, ***सत्य बोलने से वाणी की शक्ति बढ़ती है।***

☀ चार डाकू ☀

काल का बंधन, कर्म का बंधन, स्वभाव का बंधन और गुणों का बंधन; ये चार डाकू एक साथ मिलकर हजारों तरह के बन्धन बन जाते हैं।

फिरत सदा माया कर प्रेरा।
काल कर्म सुभाव गुन घेरा॥

(रा.च.मा.उत्तर. ४४)

काल का बंधन तो यह है कि जो कुछ भी होता है वह समय के अनुसार होता है; कर्म का बंधन यह है कि न चाहते हुए भी हमें कर्म करना पड़ता है; जैसे – अर्जुन ने कहा कि मैं युद्ध नहीं करूँगा, तो प्रभु ने कहा कि ये तो तुम्हें करना ही पड़ेगा।

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।
सन्न्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि॥

(गी. ९/१८)

कर्म को तो कोई भी नहीं छोड़ सकता पर अगर कर्म प्रभु को समर्पण करके किया जाय तो उससे मुक्त हुआ जा सकता है। स्वभावजन्य कर्म हर जीव को जल्दी नहीं छोड़ते। जैसे कि हम सोचें कि हम गुस्सा नहीं करेंगे पर मौके पर फिर गुस्सा आ जाता है। चौथी रस्सी गुण का बंधन, ये गुण तीन हैं – सत, रज व तम; ये तीनों गुण बुद्धि में बैठे हुए हैं। सतोगुण को बढ़ा करके, रजोगुण और तमोगुण को मार डालो। फिर विशुद्ध सत्वगुण को बढ़ा करके

सतोगुण को मार डालो परन्तु इन बन्धनों से बचना, इनको बदलना आसान नहीं है।

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥

(गी. ७/१४)

जीव माया शक्ति को नहीं जीत सकता लेकिन एक उपाय है कि जीव प्रभु की शरण में चला जाए फिर सब सम्भव है।

☀ प्रेम में बिकना सीखो ☀

कृष्ण को खरीदना चाहते हो तो पहले बिकना सीखो।

प्रेम में सौदा कब होता है? जब पहले बिकता है खरीदने वाला। अपना सब कुछ कृष्ण को देना सीखो। तुम बिक जाओगे तो कृष्ण को खरीद लोगे। शुकदेव जी कहते हैं –

गोपीभिः स्तोभितोऽनृत्यद् भगवान् बालवत् क्वचित् ।

(भा. १०/११/७)

श्रीकृष्ण गोपियों के हाथों ऐसे बिके कि कठपुतली की तरह; जैसे गोपियाँ नचाती थीं वैसे ही नाचते थे। ऐसे हैं श्रीकृष्ण कि वह अपने-आपको भी बेच देते हैं भक्तों के हाथों, फिर भक्त को खरीदते हैं। गोपी कहती है –

आजु गई दधि बेचन हौं सखि, उलटी आप बिकाई री ।

हम बिक जाएँ, यही प्रेम है। अभी तो हमें स्त्री ने खरीदा है, बेटे ने खरीदा है, रोग ने खरीदा है, भोग ने खरीदा है; प्रेम में कैसे बिका जाता है, ये समझो? हमारे हृदय में श्रीकृष्ण के सिवाय कोई नहीं आए, सब की याद हटा दो। सबको याद करने से हम कमजोर बनते हैं। किसी का बच्चा बीमार है तो याद करने से क्या होगा? क्या ठीक हो जायेगा? 'नहीं'।

जैसे दुनिया में एक छोटा सा बच्चा है, उसे कौन पालता है? कौन दूध पिलाता है? कौन खिलाता है? उसकी माँ, उसे तो कुछ भी नहीं पता है, खाली रो देता है। रोने के बाद कोई आती है और दूध पिलाती है, टट्टी-पेशाब धो जाती है, कपड़ा ओढ़ा देती है। बस वह रो देता है, ये क्या है? ये ममता की दुनिया है। उस प्रेम की नकल है। भगवान् स्वयं कहते हैं कि देखो! एक बात सुनो व समझो, "मैं सर्वशक्तिमान होने पर भी प्रेम के बंधन में बँधता हूँ।" पूछा तो क्या प्रेम आपसे बड़ा है? भगवान् बोले कि प्रेम हमारा स्वरूप है। भगवान् अपने-आप अपने से बँधते हैं। अपनी स्वरूप शक्ति प्रेम से बँधते है।

यदि प्रभु को पाना है तो ये सोच लो कि हम अब दुनिया में किसी की भी याद नहीं करेंगे। एकमात्र श्रीकृष्ण ही सच्चे हैं बाकी सब झूठे हैं। हम भी बिक सकते हैं अगर हमारी सभी क्रियायें प्रभु के लिए हो जाएँ। तुम्हारा बात करना भी भजन हो जाय कि बात करेंगे तो प्रभु की करेंगे, तुम्हारा भोजन करना भी प्रभु के लिए हो जाय कि भोजन करेंगे ताकि शरीर से प्रभु का भजन करेंगे। हर क्रिया भजन हो जाय। ऐसा करते-करते एक दिन किसी से बात करते समय भी ये लगेगा कि कृष्ण से बात कर रहे हैं। हम ये भूल जायेंगे कि ये स्त्री है या ये गोरी है। बस ये ही याद रहेगा कि भगवान् से ही बात कर रहे हैं। ***अगर थोड़ा सा भी जीव के हृदय में प्रेम आ जाय तो प्रभु धक्का देने पर भी उसके हृदय से नहीं जायेंगे।***

☀ प्रेम साधन-सबसे श्रेष्ठ ☀

प्रेम रसमय साधन है। प्रेम निर्भय उपासना है। जैसी एकता प्रभु से प्रेम साधन से हो पाती है वैसी और किसी साधन से नहीं हो पाती। भ्रमर गीत में गोपियाँ कहती हैं कि भौंरे ! तू मुझे ज्ञान योग की शिक्षा देता है पर इसे सुने कौन? ज्ञान सुनता वह है जिसे ब्रह्माकार वृत्ति बनानी हो।

योग का लक्षण है कि चित्त निरोग हो जाये।

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ॥

(योगसूत्र १/१)

पर हमारे पास तो चित्त ही नहीं, हमारे पास तो मन ही नहीं। हमारे तो एक ही मन था जो श्रीकृष्ण के साथ चला गया है।

ऊधौ मन न भये दस बीस ।
एक हुतो सो गयो स्याम संग, को आराधे ईस ॥

ये प्राण यहाँ क्यों हैं? हम इसलिए जीती हैं क्योंकि हमें आशा है कि कृष्ण आयेंगे। वे जब आयेंगे और हमें नहीं पायेंगे तो दुःखी होंगे। हम अपने लिए नहीं जी रहीं। एक विरहणी कहती है –

कागा सब तन खाइयो चुन-चुन खइयो माँस ।
दो नैना मत खाइयो स्याम मिलन की आस ॥

इन नेत्रों को श्यामसुन्दर कभी दिखाई देंगे इसकी आस है। ये प्रेम की दशा है।

कृष्ण द्वारिका आये तो सब रानियों ने अपनी आँखों के आँसुओं को रोक दिया कि हमारे आँसू देखकर कृष्ण को दुःख होगा। हमारे प्यारे कृष्ण को ये न हो जाये कि हम रो रही थीं। अगर उनके हृदय में जरा-सा भी खेद आ गया तो प्रेम, प्रेम नहीं रहेगा। ये तो द्वारिका की रानियों के बारे में है। गोपियों का तो कहना ही क्या है? वे कहती हैं कि अगर कृष्ण को वहाँ सुख है तो यहाँ न आवें। उद्धव ! तुम कृष्ण को यहाँ की करुण कहानी मत कहना।

इसी गोपी-भाव पर किसी ने सुंदर पद लिखा था –

राधारानी यमुना के तट पर खड़ी हैं, यमुना जी से कह रही हैं कि हे यमुने ! तू वृन्दावन से मथुरा बहती है तो तुम्हारे किनारे श्यामसुंदर आते होंगे और हमारा हाल पूछते होंगे तो हे यमुने ! हमारे हृदय का प्रेम कहना पर हमारी पीड़ा मत कहना। हमको कितना प्रेम है ये तो कह देना पर हमको कितना दर्द है ये मत कहना। आगे कहती हैं कि कहना तेरी राधा नित मेरे तट पर आती है और तेरे हाथों छुई गगरी में मेरे तट से जल भर ले जाती है। तुम्हारे हाथों से छुई मटकी में पानी भरने नहीं बल्कि, इस याद में लाती है कि इसे कन्हैया ने छुआ था। पानी भरने आती तो है मगर गगरी को अपने से चिपटाने के लिए। पानी भरने आती है ये तो कहना पर कितने आँसू गिरा जाती है ये मत कहना। कहना पूर्णिमा की रातों में मधुवन के वनों में जाती है पर वहाँ अपने वस्त्रों को आँसुओं से कितना भर ले जाती है ये मत कहना। कहना तेरी याद में फूल फिर खिल आये हैं, कोयलें गीत गाती हैं तेरी याद में ये भी कहना पर उसे सुनकर मन कितना अधीर होता है ये मत कहना।

कहना 'राधा' साँझ सबेरे तेरी काली गईया को अपने हाथों से दोह आती है पर दूध कितना जमीन पर गिरा, कितना बर्तन में पड़ा ये मत कहना क्योंकि प्रेम में दूध कितना जमीन पर गिरा, कितना बर्तन में पड़ा ये पता ही नहीं चलता। कहना 'राधा' मेरे तट पर मंगल गीत गाती है। आयेंगे दो चार दिन में श्याम, मइया को समझाती है किन्तु निराशा में डूब जाता आशा का तीर ये न कहना।

आप समझो प्यार क्या है? प्यार दूसरे को सुख देना है। संसार में प्यार नहीं है क्योंकि हर इंसान प्यार लेना चाहता है। हर इंसान सुख लेने के लिए प्यार करता है और हम सब समझते हैं कि हम सच्चा प्यार करते हैं।

मिथो भजन्ति ये सख्यः स्वार्थैकान्तोद्यमा हि ते ।
न तत्र सौहृदं धर्मः स्वार्थार्थं तद्धि नान्यथा ॥

(भा. १०/३२/१७)

इसी में जीवन चला जाता है, सारा जीवन मिट्टी में मिल जाता है। प्रह्लाद जी ने बलि को गोद में बैठाकर यह शिक्षा दी थी –

किमात्मनानेन जहाति योऽन्ततः
किं रिक्थहारैः स्वजनाख्यदस्युभिः ।
किं जायया संसृतिहेतुभूतया
मर्त्यस्य गेहैः किमिहायुषो व्ययः ॥

(भा. ८/२२/९)

"बेटा! अपने शरीर को कभी भी प्रेम मत करना क्योंकि ये बुढ़ापा आते ही हमारा साथ छोड़ देता है।" बेटा-बेटी, स्त्री आदि सब हैं, इन्हें डाकू समझना। डाकू तो फिर भी बन्दूक की नोक से छीनता है पर ये सब हँसकर छीन लेते हैं। डाकू जब धन छीनता है तो दुःख होता है और दुःख में इंसान को भगवान् की याद आती है पर जब बेटा-बहू मीठे-मीठे बन कर छीनते हैं तो भगवान् की याद भी नहीं आती। ये तो डाकुओं से भी ज्यादा खतरनाक हैं। कृष्ण

से प्रेम करते चलो, अपने जीवन की चिन्ता मत करो। जिसको न आग जला सके, न पानी गला सके, समस्त भय रहित जो है वह है प्रेम।

☀ प्रेम कुछ नहीं चाहता ☀

यह बिनती रघुवीर गुसाईं ।
और आस-बिस्वास-भरोसो, हरो जीव-जड़ताई ॥
चहौं न सुगति, सुमति, संपति कछु, रिधि–सिधि बिपुल बड़ाई ।
हेतु-रहित अनुराग राम-पद बढ़ै अनुदिन अधिकाई ॥
कुटिल करम लै जाहिं मोहि जहँ जहँ अपनी बरिआई ।

गोसांई तुलसीदासजी लिखते हैं कि हे राम! मैं इहलोक, परलोक आदि के सुख आपसे नहीं चाहता, कोई सद्गति नहीं चाहता। बोले, “तो क्या चाहते हो?” ‘प्रेम’, बस तुमसे प्रेम हो जाये और कुछ नहीं चाहता।

चहौं न सुगति, सुमति, संपति कछु, रिधि–सिधि बिपुल बड़ाई ।

“हे राम! मैं सद्गति नहीं चाहता, सुमति नहीं चाहता, धन-सम्पत्ति भी नहीं चाहता, रिद्धि-सिद्धि भी नहीं चाहता, बड़ाई भी नहीं चाहता।” राम बोले, “अच्छा! तुम ये सब नहीं चाहते हो तो मरकर नरक गये तो क्या होगा?” तुलसीदासजी बोले –

कुटिल करम लै जाहिं मोहि जहँ जहँ अपनी बरिआई ।

“नरक गये तो कोई बात नहीं; हमारे खराब कर्म हमें नरक ले जाएँ तो आप रोकना मत, हमें जाने देना।”

प्रेम वही कर सकता है जो कुछ नहीं चाहता है। कई लोग कहते हैं कि हमने इस जन्म में कोई पाप नहीं किया। अरे! इसमें नहीं तो पिछले में किया होगा। अगर पाप नहीं किया तो अभी तक प्रभु क्यों नहीं मिले? अगर पाप नहीं किया तो अब तक प्रभु मिल गये होते। जिसको अभी तक प्रभु नहीं मिले, वो पापी है।

अगर पाप नहीं किया होता तो प्रभु अवश्य मिल गये होते। आगे गोसांई जी कहते हैं कि पाप हमें नरक ले जायें तो ले जाने देना, आप रोकना नहीं। चाहे मैं नरक में रहूँ या सड़ता रहूँ, बस तुम्हारी याद बनी रहे। हमारे हृदय में बस तुम्हारा प्रेम बढ़ता रहे फिर हमारे लिए नरक भी नरक नहीं रहेगा। प्रेमी को बाहर का कोई होश नहीं रहता, वह तो प्रेम में डूबा रहता है। प्रेम वह मस्ती है जिसे न कोई सुख वहाँ से हटा सकता है और न कोई दुःख वहाँ से हटा सकता है। प्रेम वह शक्ति है, जहाँ दुःख अपना कोई असर नहीं दिखा सकता। प्रेमी को कोई दुःख दुखी नहीं कर सकता। संसारी सुख उसे सुखी नहीं कर सकते, इसी का नाम प्रेम है। वह तो नरक में भी प्रसन्न रहता है।

☀ गोपियों से सम्बन्ध ☀

अर्जुन ने श्रीकृष्ण से पूछा कि आपका गोपियों से क्या सम्बन्ध है? भगवान् बोले – "सुनो! गोपियाँ हमारी माता, पिता, स्त्री, सब कुछ हैं। वे हमारी गुरु भी हैं और शिष्या भी हैं, हमारी सबसे बड़ी हितैषी भी ये ही हैं। जब ब्रह्मा सब गोप-बालकों, बछड़ों को चुरा ले गये थे तब हमने शिशु बनकर उनका दूध भी पिया। ये पूछो कि

गोपियों से हमारा कौन-सा सम्बन्ध नहीं है? गोपियाँ हमारी सब ओर से सब कुछ बन गईं हैं। ऐसा सम्बन्ध न संसार में कोई था और न कोई होगा। मेरे महत्व को, मेरी श्रद्धा को, मेरी गति को, मेरे तत्व को, सब तरह से जितना गोपियाँ जानती हैं उतना कोई भी नहीं जानता।"

एक बार कृष्ण के पेट में दर्द हुआ तो सारे वैद्यों ने दवा दे दी, मगर कोई फायदा नहीं हुआ, तब नारद जी ने पूछा कि क्या इस दर्द की कोई और भी दवा है? कृष्ण ने कहा कि हाँ है, यदि कोई भक्त अपनी चरण रज दे दे तो ये दर्द ठीक हो जायेगा। नारद जी ने सभी से कहा कि कृष्ण के पेट में दर्द है और दवा है कि कोई भक्त अपनी चरण रज दे दे। नारद जी सारी दुनिया घूम आये पर किसी ने भी अपनी चरण रज नहीं दी। सभी ने कहा कि यदि हमने अपनी चरण रज भगवान् को दी तो हमारी क्या गति होगी? कृष्ण की सोलह हजार एक सौ आठ रानियों ने भी नहीं दी।

तब नारद जी ने भगवान् से कहा कि महाराज ! आप चिल्लाते रहो, आपके लिये दवा नहीं मिल रही है; भगवान् बोले, "क्यों?" नारद जी ने कहा कि हम सब जगह जाकर आये लेकिन किसी ने भी चरण रज नहीं दी। भगवान् ने पूछा, "क्या ब्रज में गये?" नारद जी बोले – "नहीं गये, जब आपकी १६,१०८ रानियों ने नहीं दी तो और कौन देगा, बेचारी गँवारिन गोपियाँ क्या देंगी?" भगवान् बोले कि तुम ब्रज में जाओ।

नारद जी ब्रज में आये, कैसा ब्रज का भोला प्रेम, सब गोपियाँ इकट्ठी हो गईं, गोपियों ने अपने पैरों की सब मिट्टी रगड़-रगड़ के दे दी। सब बोलीं हमसे ले लो, हमसे ले लो। सब गोपियों ने इतनी चरण रज दे दी कि एक गट्ठर बँध गया। उन्होंने वह गट्ठर नारद जी के सिर पर रख दिया और कहा कि ले जाओ, फिर कभी बीमार पड़ जायें तो काम आ जायेगी। गोपियाँ बोलीं कि हम नरक में जायें

तो जायें हमारा कान्हा ठीक हो जाये। ये ही है गोपी-प्रेम। आदिपुराण में अर्जुन ने पूछा कि महाराज ! आपके अनन्त भक्त हुए हैं और होंगे, उनमें सबसे श्रेष्ठ आप किसको समझते है? ये बड़ा गहरा प्रश्न था कि अनन्त भक्त हैं और भक्तों में छोटा-बड़ा समझना बड़ा कठिन होता है लेकिन भगवान् ने वहाँ निर्णय कर दिया और कहा –

निजाङ्गमपि या गोप्यो ममेति समुपासते ।
ताभ्यः परं न मे पार्थ निगूढ प्रेम भाजनम् ॥

जो गोपियाँ देखने में तो संसारियों की तरह अपने शरीर को सजाती-संवारती थीं पर वे अपने शरीर को अपना नहीं अपितु भगवान् का मानती थीं। संसारी स्त्रियाँ शरीर को इसलिए सजातीं हैं ताकि दूसरे लोग देखें और उनकी ओर खिंचें पर गोपियाँ शरीर को श्रीकृष्ण का मानती थीं, इसी से उनकी शरणागति भगवान् में बढ़ गई। ये गोपी प्रेम बड़ा विचित्र प्रेम है। ये गोपी प्रेम बहुत विशेष प्रेम है। ये हमें शिक्षा देता है कि प्रेम क्या है? प्रेम किसे कहते हैं? प्रेम का स्वरूप क्या है? प्रेम कैसे किया जाता है? ये शिक्षा है साधकों के लिए, सिद्धों के लिए, योगियों के लिए, सब के लिए। महाप्रभु चैतन्यदेव ने प्रेम और काम में अंतर बताया है –

कामेर प्रेमेर बहुत अन्तर ।
काम-अंधतम, प्रेम निर्मल भास्कर ॥
निजसुख वांछा हेतु काम तो प्रबल ।
कृष्ण सुख वांछा हेतु प्रेम तो प्रबल ॥

प्रेम की छाया काम है उसकी प्रेम-सी ही रूप रेखा है पर है काम। काम और प्रेम बाहर से एक जैसे लगते हैं परन्तु एक पीतल का खिलौना है और एक सोने का। दोनों पीले-पीले हैं। काम में अपना आनन्द, अपना स्वार्थ रहता है, प्रेम में बिल्कुल उल्टा होता है, जिससे प्रेम किया है अपने प्रेमास्पद को सुख मिले बस, ये दोनों

बातें एकदम उल्टी हैं। बाहर से क्रिया एक है। प्रेम त्याग की नींव पर खड़ा होता है और काम अपने स्वार्थ की नींव पर खड़ा होता है।

दोनों में कितना अंतर है? जब तक हृदय में किसी तरह की इच्छा है तो काम है। कोई कितना भी जप कर रहा है या तप कर रहा है ये सब काम ही कहा जायेगा। लोग बाहरी क्रिया, बाहरी बातें देखकर बोलते हैं कि वह महात्मा है, वह बहुत ऊँचा है पर उसके भीतर क्या है ये नहीं सोच सकते। जैसे ही अहंता व ममता हटती है जीव प्रभु रूप हो जाता है। बस इतनी सी बात थी कि वे शरीर को अपना नहीं समझती थीं। श्रीकृष्ण ने कहा कि इसीलिए अर्जुन ! उनसे ज्यादा कोई भी मेरे गूढ़ प्रेम का पात्र नहीं है। गोपियाँ जितना शरीर का धर्म करती थीं वे इस भाव से करती थीं कि ये शरीर भगवान् का है। इसी भाव के कारण उनकी उपासना सबसे गहरी होती थी। गोपियाँ शरीर को अपना न समझके श्रीकृष्ण का मानती थीं इसलिए उनसे ज्यादा कोई भी प्रेम का पात्र नहीं है। जो लोग गोपियों को मूर्ख स्त्री मानते हैं उनका तो समझो कि भाग्य ही फूट गया है। गोपियाँ तो प्रभु को चुनौती दे रही हैं –

मैवं विभोऽर्हति भवान् गदितुं नृशंसं
सन्त्यज्य सर्वविषयांस्तव पादमूलम् ।
भक्ता भजस्व दुरवग्रह मा त्यजास्मान्
देवो यथाऽदिपुरुषो भजते मुमुक्षून् ॥

(भा. १०/२९/३१)

तुम हमारे दिल में बैठे हो तो खुद ही देख लो कि हमारे दिल के किसी कोने में किसी विषय की कोई इच्छा तो नहीं रह गई है; भगवान् को भी चुनौती देने वाली ऐसी वीर थीं गोपियाँ व ऐसी त्यागमयी थीं गोपियाँ। गोपियों ने कहा कि आप हमारे हृदय में घुसकर देख लो कि हमने सब विषय छोड़ दिये हैं कि नहीं? सब

विषयों को छोड़कर तब तुम्हारे चरणों में आयीं है। तब तुम्हारे चरणों की भक्ति की है।

☀ प्रेम की स्थितियाँ ☀

गोपियों ने श्रीकृष्ण से कहा कि जो तुमने हमें स्त्री-धर्म का उपदेश दिया कि हम जाकर पतियों की सेवा करें, ये परम-धर्म है, पर जो हम कह रही हैं वह इस परम-धर्म के भी आगे की बात है। उस परम-धर्म से भी आगे है प्रेम-धर्म। इसीलिए प्रेम-धर्म के आगे आकर सब बात कट जाती है। सब धर्म, लोक-धर्म, वेद-धर्म सब कट जाते हैं। गोपियों से ही सीखकर श्रीकृष्ण ने गीता (१८/६६) में अर्जुन से कहा था –

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

(गी. १८/६६)

शरणागति का धर्म सब धर्मों से ऊँचा है फिर धर्म को छोड़ देना, इस बात को समझना कठिन है क्योंकि पहले तो धर्म क्या है? इसको समझना कठिन है फिर धर्म को छोड़ देना, जो धर्म इतनी बड़ी चीज है उसको छोड़ देना ये और भी कठिन बात है। किसलिए छोड़ा जाता है धर्म? प्रेम के लिए; प्रेम ही एक ऐसा है कि जो सब धर्मों से ऊँचा है। प्रेम अपने को मिटाने के लिए किया जाता है। नदी समुद्र के पास पहुँचकर अपने को मिटा देती है। चाहे तो पतंगा अपनी रक्षा कर सकता है अग्नि से परन्तु पतंगा जल जाता है, पतंगा अपने आपको मिटा देता है।

प्रेम की एक ऐसी स्थिति होती है कि जहाँ अपना शरीर और अपना मन भी अपने हाथ में नहीं रहता। ऐसी स्थिति हो जाती है

ऐसी विवशता हो जाती है कि प्रेम में वो आज्ञा भी नहीं मान सकता। प्रेमी की भी आज्ञा नहीं मान सकता।

इसी का एक उदाहरण देते हैं कि जैसे – विवाह में स्त्री अपने पति के पाँव छूती है, वैसे ही सीता जी का राम जी से जब विवाह हुआ तो सब कहती हैं कि राम जी के चरण छूओ, सीता जी चरण नहीं छू रहीं हैं, ये तो बड़ी गड़बड़ है। अभी-अभी तो विवाह हुआ है और ये पैर नहीं छू रही तो आगे क्या होगा? बोले नहीं, ये अलौकिक प्रेम है वे इसलिए पाँव नहीं छू रही हैं, विवश हैं पाँव कैसे छुएँ?

गौतम तिय गति सुरति करि नहिं परसति पग पानि ।
मन बिहसे रघुबंसमनि प्रीति अलौकिक जानि ॥

(रा.च.मा.बाल. २६५)

सीता जी सोच रही हैं कि इनके चरणों की धूल में जादू है। इनके पैर के स्पर्श से अहिल्या आकाश को उड़ गई तो मैं भी कहीं पाँव छूते ही आकाश में उड़ गई तो फिर क्या होगा? तो वो अहिल्या की गति को याद करके डर के मारे राम जी के चरण ही नहीं छू रही हैं। रामजी हँस रहे हैं, सब लोग आश्चर्य कर रहे हैं लेकिन इस बात को राम जी समझ रहे हैं। ये लौकिक प्रेम नहीं है बल्कि अलौकिक प्रेम है, इसलिए ये पाँव नहीं छू रही हैं। ये सब प्रेम की स्थितियाँ हैं।

समर्पण की ये पराकाष्ठा है, चन्द्रमा आकाश में रहता है और कुमुदनी पानी में जमीन पर कितनी दूरी पर रहती है लेकिन चाँद को देखकर के कुमुदनी खिलती है। इसी तरह आकाश में बादल गरजते हैं और मोर उन्हें देख कर नाचता है। मोर जमीन पर रहता है, मोर कभी बादल से मिल नहीं पायेगा लेकिन क्योंकि उसके हृदय में निरन्तर बादल का प्रेम है तो वो खुशी से नाचता रहता है।

प्रेमी कितना नि:स्वार्थ होता है इस बात को कपिल भगवान् ने कहा है कि प्रेमी को तो कुछ नहीं चाहिए। प्रेमी तो भगवान् के चरणों की निकटता भी नहीं चाहता, किसी भी प्रकार के मिलन की भी कामना नहीं करता।

सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत ।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः ॥

(भा. ३/२९/१३)

वह तो कहता है कि प्रभु चाहे आप-अपने निकट भी न बुलाओ, ना ही अपने धाम में बुलाओ, न ही कोई वरदान दो, बस अपनी सेवा मुझे दे दो। भक्त तो बस इतने में ही संतुष्ट है। हनुमान जी से जब राम जी ने कहा कि हनुमान ! धाम को चलो तो उन्होंने धाम में जाने से मना कर दिया। उन्होंने कहा कि जब तक आपकी कथा रहेगी तब तक मैं यहीं रहूँगा।

☀ कृष्ण की महिमा ☀

भगवान् की कितनी बड़ी कृपा है कि हमें मनुष्य बनाया और कृपा करके अपना नाम, महिमा, लीला हमें दी? कैसे हैं श्रीकृष्ण? बहुत सुंदर श्रृंगार है, सिर पर मोर-मुकट है, गले में वैजयन्ती माला है जो नीचे तक लटक रही है। एक हिरनी वैजयन्ती माला के साथ सटकर खड़ी है और श्रीकृष्ण की माला से कभी-कभी उसके कान छू जाते हैं। एक हिरनी श्रीकृष्ण के पास चली गई और पीताम्बर के नीचे खड़ी हो गयी तो पीताम्बर उसके ऊपर लहरा रहा है।

धन्याः स्म मूढमतयोऽपि हरिण्य एता
या नन्दनन्दनमुपात्तविचित्रवेषम् ।
आकर्ण्य वेणुरणितं सहकृष्णसाराः
पूजां दधुर्विरचितां प्रणयावलोकैः ॥

(भा. १०/२१/११)

गोपियाँ कहती हैं कि देखो इन हिरनियों का भाग्य, देखो, इनके पति भी साथ-साथ हैं। ऐसा क्यों कहा? बोलीं कि देखो ! एक तो इनके पति हैं जो साथ-साथ हैं और इनको नहीं रोकते हैं, हिरनियों को अपने साथ लेकर आये हैं कि कृष्ण के दर्शन कर लो। एक हमारे पति हैं जो हमको रोकते हैं कि खबरदार, वहाँ जाने की जरूरत नहीं। हम पर कैसे-कैसे पहरे लगाते हैं।

गोपियाँ कहती हैं कि देखो, हिरनियाँ श्रीकृष्ण की पूजा कर रही हैं और इनके पति सामने खड़े देख रहे हैं, वे पूजा कैसे कर रही हैं? क्या हिरनियाँ घण्टी हिलाती हैं? आरती करती हैं? कैसे पूजा करती हैं? गोपियाँ कहती हैं कि 'पूजा' घण्टी हिलाने या आरती करने को नहीं कहते हैं।

जैसे कि एक पुजारी ने भोग लगाया। भगवान् ने देखा तो सुदर्शन से बोले कि आओ सुदर्शन, पुजारी ने १५ दिन पुराना लड्डू भोग लगाया है, तुम इसको काट दो। सुदर्शन जी बोले – नहीं महाराज ! मेरी धार चली जायेगी। इसको पूजा थोड़े ही कहते हैं। पूजा माने आपका भाव कैसा है? हिरनियाँ पूजा कर रही हैं वे अपनी प्रेम भरी आँखों से, प्यार भरे चितवन से ऐसे देख रही हैं मानो पी जायेंगी। इनका ये ही छप्पन भोग है। प्रेम से देख लिया यानि पूजा हो गयी। पूजा एक भाव है, बाहरी क्रिया नहीं।

☀ सर्वभाव ☀

श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं कि जो जान जाता है कि एकमात्र मैं ही सब का मूल हूँ। मैं ही प्रेम का, रस का साक्षात् स्वरूप हूँ, वह एकमात्र मेरा ही भजन करता है, मुझे ही चाहता है, मुझे ही सोचता है, मुझे ही प्यार करता है। उसे कोई संशय नहीं होता। वह एक ही वृत्ति, एक ही धारणा, एक ही दृष्टि, एक ही भाव रखता है कि तुम्हीं

पुरुषोत्तम हो। वह सब कुछ जान जाता है उसे फिर कुछ और जानना बाकी नहीं रहता और वो ही फिर सर्वभाव से श्रीकृष्ण का भजन कर सकता है।

सर्वभाव से एकमात्र श्रीकृष्ण को भजो।

हम सर्वभाव से श्रीकृष्ण का भजन क्यों नहीं कर सकते? हम लड्डू का भजन क्यों करते हैं? क्योंकि हम जानते हैं कि लड्डू मीठा है और ऊपर से कहते हैं कि कृष्ण में मिठास है लेकिन भीतर से इन्द्रियाँ अपना संसार जमाये बैठी हैं, कहती हैं कि लड्डू मीठा है, इससे रस मिलता है। इसीलिए भगवान् कहते हैं कि मुझे जानो लेकिन मूढ़ता से मत जानना।

ऊपर से कहते रहते हो कि कृष्ण में रस है | नहीं, असल में जानो कि रस कृष्ण ही है, आनन्द कृष्ण ही हैं, प्रेम कृष्ण ही हैं, संसार में कुछ नहीं है।

एक तो शरीर पर मोहित होकर के प्यार करता है और मर जाता है, सदा के लिये अन्धकार में चला जाता है। इसके अतिरिक्त वह पुरुष जो यह जानता है कि शरीर के अन्दर आत्मा है, जो अविनाशी एकरस है और उससे प्यार करता है | अर्जुन ! उससे भी आगे चल, उसके आगे मैं हूँ।

गो गोचर जहँ लगि मन जाई ।
सो सब माया जानेहु भाई ॥

(रा.च.मा.अरण्य. १५)

भगवान् कहते हैं कि इन सबसे आगे चल। आगे तब मैं मिलूँगा। जो मुझे जान जाता है उसे मेरा एक दिव्य रसमय रूप मिलता है। ***जिसे संसार की सम्पत्ति मोहित नहीं करती, संसार में कोई भोग मोहित नहीं करता वो ही मेरा सर्वभाव से भजन कर सकता है।*** 'सर्वभाव' माने हमारे पास जो कुछ है – इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार आदि वह सब श्रीकृष्ण का है, श्रीकृष्ण के लिए है। संसार का नहीं है, भोगों का नहीं है। ऐसा नहीं हो कि श्रीकृष्ण हमारे सब कुछ हैं और नोटों का बण्डल आते ही प्रभु को भूल गए; ये सर्वभाव नहीं, केवल पाखण्ड, आडम्बर है। सर्वभाव उसे कहते हैं कि एकमात्र धन हैं तो श्रीकृष्ण।

भगवान् स्वयं गीता में १८ वें अध्याय के ३७, ३८ और ३९ वें श्लोक में इस बात को कहते हैं कि सच्चा सुख व मिथ्या सुख क्या है? मिथ्या सुख वही है जो पहले तुम्हें मजा दिखायेगा, पीछे तुम्हें मार डालेगा। सात्विक सुख की पहचान है –

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् ।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् ॥

(गी. १८/३७)

सच्चा सुखा वह है जो पहले तुम्हें कड़वा लगेगा फिर पीछे अमृत लगेगा। मिथ्या क्या है, पहले लड्डू खाया तो मीठा लगा और ज्यादा खाया तो फिर दस्त हो गया। ये सब संसारी सुख पहले ऐसे ही मजा देते हैं, पीछे जीव को मार डालते हैं।

☀ माधुर्य रस के अधिपति ☀

श्रीकृष्ण की हर क्रिया रसमय होती है। यही है श्रीकृष्ण का असली रूप। श्रीकृष्ण माधुर्य के अधिपति हैं। इसीलिए वल्लभाचार्य जी ने मधुराष्टकम् में प्रभु का बड़ा अच्छा वर्णन किया। यही बात शुकदेव जी ने कई जगह पर कही है। उन्होंने तो समस्त अवतारों का वर्णन करने के बाद, यहाँ तक कहा है कि ब्रज गोपियों ने जिस रूप, रस का आस्वादन किया है वो ऐसा रूप है जो किसी को नहीं मिला।

गोप्यो लब्ध्वाच्युतं कान्तं श्रिय एकान्तवल्लभम् ।
गृहीतकण्ठ्यस्तद्दोर्भ्यां गायन्त्यस्तं विजह्रिरे ॥

(भा. १०/३३/१५)

स्वयं भगवती, श्री लक्ष्मीजी तक को भी नहीं मिला वो ही रस गोपियों को मिला तो आश्चर्य तो हुआ ही। ये आश्चर्य सबने माना। गोपियाँ तो क्या, ग्वाल-बाल के भाग्य पर ही ब्रह्मा जी भी आश्चर्य करते हैं और कहते हैं –

अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम् ।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम् ॥

(भा. १०/१४/३२)

ब्रजवासियों का ऐसा अहो भाग्य, ये बहुत बड़ी बात है जो ये कृष्ण के सखा व यार बने।

कभी श्रीकृष्ण बंसी बजा रहे हैं, कभी कोयल की नकल कर रहे हैं, कभी कोयलों से बातचीत कर रहे हैं, कभी उड़ते पंछियों की जो छाया बन रही है उनके साथ दौड़ रहे हैं, हंसों के साथ उनके चलने की नकल उतार रहे हैं, कभी मोरों के साथ नाच रहे हैं, कभी मेंढक की तरह फुदक रहे हैं। अब ये सब देख शंका करने वाले को लगता है कि क्या परमात्मा इतना मूर्ख बन गया? हजारों शंकायें मन में

उठती हैं पर इन हजारों प्रश्नों का एक ही उत्तर है कि भगवान् की जो प्रेमा शक्ति है 'प्रेम', ये स्वरूपा शक्ति है, ये स्वरूपा शक्ति भगवान् को आनन्दमयी लीला के लिए सब कुछ बना देती है। भूखा बना देती है, माखन चोर बना देती है, भिखमंगा बना देती है। राजा बलि से भीख माँगने चले गये कि भक्त से लड़ेंगे नहीं। ये प्रेम-शक्ति, ये भक्ति-शक्ति 'भगवान् की स्वरूपा शक्ति' है। ये लीला आनंद-विनोद के लिए भगवान् को कभी कुछ तो कभी कुछ बना देती है।

☀ मुरली मनोहर ☀

जब श्रीकृष्ण को गोपीजनों के लिए रस की स्थापना करनी होती है तो टेढ़े हो जाते हैं। जब उनको आराधना करना है, किसी को रिझाना है तो टेढ़े हो जाते हैं। इसका प्रमाण है कि मन, बुद्धि, चित्त सब हरण कर लेते हैं। श्रीकृष्ण का नाम है – मुरली मनोहर, जो मन को हरण कर ले। ये मन को हरण कर लेते हैं। गोपियों ने उद्धव से कहा था कि हमारे पास दस-बीस मन थोड़े ही हैं, एक ही था उसे श्यामसुन्दर ले गये, अब हम किस मन से योग करें?

"ऊधो मन ना भये दस-बीस ।"

श्यामसुन्दर मन क्यों हरण करते हैं? मन इसलिए हरण करते हैं कि इनका मन हमारे में ऐसा लग जाये फिर दुनिया वाले जोर भी लगावें तब भी इनका मन हमसे न हटे। उनका मन हमेशा के लिए मेरे में चला जाये।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥

(गी. १८/६५)

जो मेरे में मन लगाता है वो मेरे में ही रहता है। सदा के लिए जान लें कि जहाँ पर आपका मन होता है, आप वहीं पर होते हैं। भगवान् इसीलिए मन हरते हैं ताकि जिसका मन हर लिया वो सदा के लिये श्रीकृष्ण का हो गया। बन्धन का कारण क्या है? मन। जब मन प्रभु ने चुरा लिया तो काम हो गया उसका।

ऐसे हैं श्रीकृष्ण जो मन को चुराते हैं। कृष्णप्रेम में विषयों की याद नहीं आती। इसीलिए ऐसी विस्मृति भक्तों को ही हो सकती है और किसी को नहीं, ऐसा कितने ही भक्तों के साथ हुआ। जड़भरत जी के साथ, प्रहलाद जी के साथ, गोपियों के साथ तो कहना ही क्या? गोपी गीत से पहले एक श्लोक आता है। जब श्रीकृष्ण रास से चले गये तो गोपियाँ उनको ढूँढ़ रही हैं। वे उनको लताओं में, वनों में, यमुना किनारे पर ढूँढ़ रही हैं। खोई-खोई आँखों से ढूँढ़ रही हैं। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते उन्होंने सभी से पूछा कि श्रीकृष्ण कहाँ है? सबसे पूछती रहीं। ऐसी डूब गयीं कि हम गोपी हैं ये भी भूल गयीं। अपने को कृष्ण समझने लग गयीं।

तन्मनस्कास्तदालापास्तद्विचेष्टास्तदात्मिकाः ।
तद्गुणानेव गायन्त्यो नात्मागाराणि सस्मरुः ॥

(भा. १०/३०/४४)

ऐसा विचित्र प्रेम है उनका। गोपियाँ श्रीकृष्ण बन गयीं, कोई कृष्ण बनके गिरिराज पर्वत उठा रही है कि ब्रजवासियो! डरो नहीं,

मैं तुम्हारा रक्षक हूँ। कोई गोपी कालिया नाग को नाथने लग गयी। जैसे श्रीकृष्ण नाचे थे कालिया नाग पर, उसी तरह नाचने लग गयी। ये है आत्मविस्मृति। ऐसी आत्मविस्मृति कि कृष्ण बनके ये भी भूल गयीं कि हम कौन हैं, कोई पूतना बन गयी और कोई बकासुर बन गयी। विस्मृति इसे कहते हैं कि जहाँ कुछ भी याद नहीं रहे। यह गोपियों की स्थिति है, इस जगह जब उनका मन पहुँच गया तो गोपियाँ अपने को भूल गयीं कि हमारा क्या नाम है, अपने घरों को भूल गयीं कि हमारे घर कहाँ हैं? हम किस गाँव से आयी हैं, कैसे आयी हैं? सब भूल गयीं। शुकदेव जी कहते हैं कि जब ऐसी स्थिति होती है तो उस गान में अद्भुत शक्ति होती है। ऐसे प्रेम में डूबे हुये भक्तों के पास विषय कहाँ रह जायेंगे? मन की आसक्तियों के कारण ही विषय अच्छे लगते हैं, जब सब चला गया तो विषयों की क्या चलाई?

☀ श्यामसुन्दर का स्वभाव कपटी ☀

गोपियाँ श्रीकृष्ण को कपटी कहती हैं।

ये कैसी बात है? गोपियाँ तो श्रीकृष्ण के करुणामय स्वरूप को जानती थीं और अब कपटी कह रही हैं। कपटी माने कि वह स्वभाव जो भीतर कुछ और है और बाहर कुछ और है। हम लोग

कपटी का अर्थ करते हैं कि जो कपटी होता है वो नीच होता है। कपटी के दोनों अर्थ समझ लो। लोग कपटी को कहते हैं कि खराब है – पेट का काला है। 'कपटी' बड़ा अच्छा भी होता है। कपटी से कोई अच्छा भी नहीं होता है। कपटी का अर्थ है कि भीतर कुछ और है पर दिखा कुछ रहा है। यूँ समझो एक माँ भी अपने बच्चे से कपट करती है; बच्चा दवाई नहीं खा रहा है और माँ छल करके किसी तरह से खिला देती है, ये कपट है पर ये कपट अच्छा है। जैसे बच्चा है, साँप को देखकर पकड़ने दौड़ता है, उसे कुछ नहीं पता कि साँप क्या है? तो माँ जोर से दौड़के उसको बचाती है, गुस्सा करती है। अब ये गुस्सा कपट है। भीतर तो बड़ा प्रेम है लेकिन ऊपर से गुस्सा करती है।

ये कपट भगवान् भी करते हैं। कैसे करते हैं? जैसे एक बार नारद जी ने भगवान् से कहा कि महाराज! आपने हमारा विवाह नहीं होने दिया, क्यों? तो भगवान् ने उत्तर दिया कि देखो मुनि! हित किसमें है ये तो बच्चा नहीं जानता है, ये तो मैं जानता हूँ इसलिए मैंने तुम्हारे साथ ऐसा छल किया।

गोपियाँ कह रही हैं श्रीकृष्ण से कि तुम कपटी हो, इसकी व्याख्या आचार्य लोग बड़ी सुन्दर करते हैं। सनातन गोस्वामी जी ने कहा कि कपटी माने बहिर्मुखी, बोले कि नहीं ऐसा अर्थ नहीं करना चाहिए क्योंकि ऐसा अर्थ परमात्मा पर लागू नहीं होता है। परमात्मा कपट करता जरुर है लेकिन क्यों करता है? हित के लिए या लीला के लिए या प्रेम के लिए या रस के लिए। बोले कि ये कृष्ण की आदत है।

☀ कपट कैसे होता है? ☀

कृष्ण कपटी हैं क्योंकि प्रेम की लीला करते हैं, प्रेम में आनन्द तभी आता है जब कपट होता है। कपट कैसे होता है? जैसे ग्वाल-बाल मईया की दी हुई खाने की अपनी-अपनी पोटली काँधे पर बाँधे साथ-साथ गौ चराने को जा रहे हैं।

मुष्णन्तोऽन्योन्यशिक्यादीन् ज्ञातानाराच्च चिक्षिपुः ।
तत्रत्याश्च पुनर्दूराद्धसन्तश्च पुनर्ददुः ॥

(भा. १०/१२/५)

अब श्याम ने पीछे से जाकर पोटली को चुरा लिया। ग्वाल को जाते-जाते याद आयी कि मेरी पोटली तो किसी ने चुरा ली। मुड़कर देखा तो बोला कि नन्द के लाला तूने चुराई है, तू ही पीछे आ रहा है, पीछे वाला चोर है। जब वह ग्वाला पीछे पहुँचा तो श्याम ने झट पोटली दूसरे ग्वाल के पास फेंक दी फिर तीसरे के पास; ये ही लीला है। श्यामसुन्दर तो चुरा-चुरा के खावें। अब ये क्या है? कपट है। चोरी बिना कपट के नहीं होती।

रूप गोस्वामी जी ने एक जगह कहा है कि प्रेम क्या है? प्रेम की गति सर्प की गति की तरह टेढ़ी-मेढ़ी होती है, तभी तो प्रेम की लीला चलती है। सर्प सीधी जगह भी टेढ़ा चलता है, सीधा कभी नहीं जायेगा। ये है प्रेम का स्वभाव। प्रेम में लीला तभी बनती है जब उसमें छल-कपट, झूठ होता है। इसीलिए श्यामसुन्दर का स्वभाव कपट का है। भगवान् लीला के लिए कपट करते हैं जिससे कि रस बढ़े, प्रेम बढ़े। बिना कपट के लीला नहीं होती।

जैसे श्रीकृष्ण एक कुञ्ज में लेटे थे। अब कपट का दूसरा उदाहरण देखो कि कैसे प्रेम में बिना कपट के लीला नहीं चलती। ब्रज-गोपियाँ श्याम को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते आयीं कि श्यामसुंदर कहाँ है? श्यामसुंदर जानबूझके पीताम्बर ओढ़कर सोने का बहाना करके

कुञ्ज में लेट गये कि देखें ये गोपियाँ क्या बात करती हैं? ये कपट किया, जाग रहे हैं लेकिन जागने के बाद भी सोने का ढोंग कर रहे हैं। गोपियाँ आयीं, एक गोपी बोली, “कन्हैया तो यहाँ सो रहे हैं।” दूसरी बोली, “सो तो रहे हैं पर बड़े होशियार हैं फिर इशारा करके बोली कि सो नहीं रहे।”

अब दोनों ही कपट कर रहे हैं एक दूसरे से। अब जो ज्यादा कपटी होगा वो ही जीतेगा। एक बोली, “कन्हैया को जगा लो” तो दूसरी गोपी बुलाने लगी, “ओ श्याम !” अब ठाकुर जी और जोर से खर्राटे भरने लग गये। सब गोपियाँ आपस में बोलीं कि अब कैसे जगायें? एक बोली कि इसकी बुराई करो फिर सब बैठ गयीं और एक बोली कि अरे ! ये सो रहे हैं, पर हैं चोर; चोर का क्या है रात भर डोलै और दिन भर सोवे। दूसरी बोली “हैं, रात भर चोरी करी तभी तो सो रहा है। इसके पास सोने के अलावा कोई काम तो है नहीं।” तीसरी बोली, “इसका तो ये रोज का काम है।” मतलब बुराई शुरू कर दी, अब श्याम से रहा न जाये पर चुपचाप सो रहे हैं।

गोपियाँ सोच रही हैं कि अभी भी नहीं उठे हैं। फिर बोलीं, “अरे ! इसका तो खानदान ही ऐसा है मईया भी ऐसी ही है।” दूसरी बोली, “नन्द बाबा भी तो ऐसे ही हैं।” अब जब माँ-बाप की बात आयी तो श्याम से न रहा गया और पीताम्बर छोड़कर उठ गये और बोले कि अरे ! कौन है? जो मेरे माँ-बाप की बात कर रही है। तो बोली, “कन्हैया ! तुम पहले ही उठ जाते तो माँ-बाप तक गाली क्यों जाती?”

भगवान् इसलिए भी कपटी हैं क्योंकि वो छिपकर के भक्तों का कल्याण करते हैं। छिपकर क्यों करते है? क्योंकि जहाँ दिखावा है वहाँ प्रेम नहीं है। सच्चे प्रेम में दिखावा नहीं होता है। सच्चा प्यार तो अपने प्रेमी का हित कर देता है पर दिखाता नहीं है। झूठे प्रेम में

दिखावटीपन होता है। भगवान् छिपकर हमारा कल्याण करते हैं, हम इसे समझ नहीं पाते। भगवान् ने स्वयं कहा है कि हे गोपियो ! मैंने जो छल किया, आपको यहाँ रात में छोड़ करके चला गया, आपको तड़फती छोड़ करके चला गया, इस छल-कपट का लक्ष्य क्या था?

एवं मदर्थोज्झितलोकवेदस्वानां हि वो मय्यनुवृत्तयेऽबलाः ।
मया परोक्षं भजता तिरोहितं मासूयितुं मार्हथ तत् प्रियं प्रियाः ॥

(भा. १०/३२/२१)

तुम्हारा मन हमारे में और ज्यादा लग जाये इसीलिए मैंने ऐसा कपट किया। हे गोपियो ! तुम हमारे में दोष मत देखो। हमारा कपट तुम्हारे प्रेम को बढ़ाने के लिये हुआ है। इसीलिए ये कपट बहुत प्रशंसनीय है।

☀ गति – विदः ☀

श्री ब्रज-गोपीजन श्यामसुंदर को 'गति विदः' कह रही हैं। 'गति विदः' का अर्थ है कि आप सबकी गति जानते हैं। इसीलिए कहा कि जो चोर है जिसके पास चोरी का माल है वो अपने आप तलाशी नहीं देता है क्योंकि तलाशी में चोरी पकड़ी जायेगी। जो चोर नहीं है वो अपने-आप दिखा देता है कि देख लो हमारे पास कुछ नहीं

है। ब्रज-गोपियों के मन में कुछ नहीं है, केवल एक श्रीकृष्ण ही हैं। बाहर कृष्ण और भीतर कृष्ण और सब जगह कृष्ण।

इसीलिए वो कहती हैं कि तुम सब जानते हो। सब गतियों को जानते हो। हमारे भीतर झाँककर देख लो। इसी बात को हनुमान जी ने भी एक बार कहा था और करके भी दिखाया था। जब श्री सीता जी ने उनको मणियों का हार दिया, वे मणियाँ समुद्र-मन्थन में से निकलीं थी और रावण के खजाने में सबसे कीमती हार वही था। ऐसा हार कहीं नहीं था। देवताओं के भी पास नहीं था, वह हार विभीषण ने सीता माता के लिए दिया था।

उस हार को जब सीताजी ने भरी सभा में उतारा तो सब समझ गये कि ये किसी को देंगी तो सबने लालच भरी नजर से देखा कि ये प्रसाद हमको मिल जाये लेकिन श्री सीताजी उठीं और हार हनुमान जी के गले में डाल दिया। सब लोग चुप रहे क्योंकि वास्तव में तो काम हनुमान जी ने ही किया था, समुद्र पार किया, सीता माता की खोज की, लंका फूँकी। भाव ये है कि ये इसके अधिकारी हैं लेकिन जो हुनमान जी ने नाटक किया वो किसी की समझ में नहीं आया।

एक-एक मणि को दाँतों से तोड़ने लगे और तोड़ के फेंक देते थे। जिन मणियों के लिए देवता भी तरसते थे ऐसी मणियाँ थीं। इस तरह से तोड़ना किसी को भी अच्छा नहीं लगा; आखिर में पूछ ही लिया कि हनुमान जी ! ये आप क्या कर रहे हो? इस हार को क्यों तोड़ रहे हो? हनुमान जी बोले कि मैं देख रहा हूँ कि इसमें भगवान् का नाम है या नहीं है। राम नाम है या नहीं है। जो वस्तु भगवान् के नाम से रहित है वह किसी काम की नहीं है।

ये भक्तों के लक्षण होते हैं। ***कोई भी चीज है अगर भगवान् से सम्बन्धित नहीं है तो भक्त उसे स्वीकार नहीं करता है।*** परिवार, कुटुम्ब, मकान, जमीन, स्त्री, पुत्र, ये एक सिद्धांत है कि भगवान् के सम्बन्ध से ही इनको ग्रहण करो, इसी में कल्याण है। ऐसा भक्तों

का सिद्धांत है। हम लोग सबमें भगवान् का सम्बन्ध नहीं देखते तभी माया में फँसे हैं। बिना भगवान् को अर्पित किया कुछ मत लो। परिवार में हर कोई भगवान् का स्मरण करे नहीं तो प्रेम करने के योग्य नहीं है। हनुमान जी ने कहा कि जिस वस्तु में भगवान् का नाम नहीं या सम्बन्ध नहीं वो नहीं चाहिये। ये तो एक लीला भई नहीं तो सम्बन्ध तो था, सीता माता ने दिया था, इससे बड़ा सम्बन्ध और क्या होगा? लेकिन हनुमान जी ने शिक्षा दिया।

आगे सबने पूछा कि क्या आपके शरीर में भगवान् हैं या भगवान् का नाम है? इस मणि को तो आप तोड़कर फेंक रहे हैं, आपके शरीर में कहाँ लिखा है राम नाम, कहीं भी दिखाई तो नहीं पड़ रहा। हनुमान जी ने कहा – देखो, और दोनों हाथ लगाकर छाती को चीर दिया, सबने देखा कि भीतर भगवान् राम व सीता बैठे हुए हैं। तो ये वो ही दिखा सकता है जिसके अंदर सच्चाई है। हमारे जैसे क्या चीरेंगे और क्या दिखायेंगे?

तो गोपियाँ कहती हैं कि 'गति विदः' कृष्ण! तुम सबकी गति जानते हो। हे कृष्ण! तुम हर प्राणी के भीतर की बात जानते हो। हम तो अपने ही मन की बात नहीं जान सकते। हमारा मन कब धोखा दे देगा, कब हमें काम, क्रोध, लोभ में पटक के मार डालेगा, हम लोग नहीं जानते। आगे इस 'गति विदः' का दूसरा अर्थ ये भी है, गोपियाँ कहती हैं कि देखो कृष्ण! हम भी 'गति विदः' हैं। हम भी सब जानती हैं।

कृष्ण ने पूछा कि तुम क्या जानती हो? गोपियाँ बोलीं कि हम जानती हैं कि दुनिया में प्रेम करने का फल क्या है? और तुमसे प्रेम करने का फल क्या है? कृष्ण बोले, "इसमें क्या बात है?" गोपियाँ बोलीं, "नहीं है, हम पराये दुःखों को, पराई पीर को जानती हैं। हर कोई ये नहीं जान सकता। ये तो वही जान सकता जिसे ये दुःख होता होगा तो हम जानती हैं कि तुमसे प्रेम करने का दुःख क्या है।

इसको तुम क्या जानो?” कृष्ण बोले, “क्यों?” गोपियाँ बोलीं, “हमने दोनों हालत देखीं हैं। हमारा पहले विवाह हुआ, पति मिला फिर तुमसे प्यार हुआ तो हम उस प्रेम को भी जानती हैं और इस सच्चे प्रेम को भी जानती हैं। इसलिए हम भी गति विदः हैं।”

आचार्यों ने ये अर्थ हम लोगों के लिए किया। क्यों? क्योंकि संसार में फँसने का जो दुःख है और वहाँ से छूटने का भी जो सुख है, ये दोनों बातें भगवान् का भक्त ही जानता है। हमारे जैसे को कुछ नहीं पता; इसीलिए भगवान् के भक्त को भगवान् से भी बड़ा कहा गया है क्योंकि वह झूठे संसार में से अपने को निकालकर यहाँ लाता है। ये ही बात सहजोबाई ने अपनी गुरु वन्दना में लिखी है कि भगवान् कभी गुरु से बड़ा नहीं हो सकता क्योंकि जो कष्ट गुरु ने सहा है वह भगवान् क्या जाने।

राम तजूँ गुरु को ना बिसारूँ ।

सहजोबाई ने कहा कि मैं राम को छोड़ दूँगी पर गुरु को नहीं छोड़ूंगी।

हरि ने पाँच चोर दिए साथा ।
गुरु ने लई छुड़ाय अनाथा ॥

पूछा कि भगवान् क्या बैरी है? बोलीं, “भगवान् तो सबसे बड़ा बैरी है।” बोले, “क्यों?” क्योंकि जो ये दुनिया भर की आफत लगाई है, ये परमात्मा ने ही तो लगाई है। भगवान् ने ही ये पाँच तत्त्व ये पाँच चोर दिये हैं जो हमें कष्ट दे रहे हैं पर गुरु ने तो हमें इनसे छुड़ाया है। जो कृपा गुरु या भक्त में है वो किसी में भी नहीं, भगवान् में भी नहीं।

गोपियाँ इसी भाव को कह रही हैं कि श्यामसुंदर ! हम दोनों को जानती हैं। हम अंधकार की भी गति जानती हैं और प्रकाश की भी गति जानती हैं।

☀ अधरामृत हमें दो ☀

गोपीजनों ने कहा –

सुरतवर्धनं शोकनाशनं स्वरितवेणुना सुष्ठु चुम्बितम् ।
इतररागविस्मारणं नृणां वितर वीर नस्तेऽधरामृतम् ॥

(भा. १०/३१/१४)

"हे श्रीकृष्ण, हे मेरे कान्त, हे मेरे जीवन, तुम्हारा अधरामृत जो प्रेम को बढ़ाने वाला है, जो झूमती गाती हुई बंसी के द्वारा चूमित है, जिस अधरामृत में ये चमत्कार है कि ये सब रोगों को समाप्त कर देता है, वह अधरामृत हमें दो, उसका दान हमें करो।"

गोपियों का कष्ट सिर्फ श्रीकृष्ण अधरामृत से ही नष्ट होगा। बोले, "देखो, अधरामृत क्या है?" संसार में तो अधरामृत है ही नहीं। संसार में जो होठों के अन्दर है उसे अधरामृत कहते हैं पर ये अधरामृत नहीं है। इस संसार में कोई प्रेम करे और अधरों का रस लेना चाहे तो उसमें विकार ही विकार मिलते हैं क्योंकि वो जो रस है वह शरीर से निकलने वाला विकार है। जो रस शरीर से आ रहा है वो विकारमय है लेकिन श्रीकृष्ण का अधरामृत, श्रीकृष्ण के अधरों में जो रस है वह चिन्मय है, दिव्य है। वह रस बोलता है, गाता है, सुनता है, सब कुछ करता है। श्रीकृष्ण के अधरामृत में एक विचित्र विशेषता है। इसमें ऐसा मद है कि जो आज तक न था और न होगा। बोले, "क्यों?"

देव्यो विमानगतयः स्मरनुन्नसारा
भ्रश्यत्प्रसूनकबरा मुमुहुर्विनीव्यः ॥

(भा. १०/२१/१२)

कोई ऐसा है ही नहीं जो श्रीकृष्ण की बंसी को सुनकर मोहित न होवे, ऐसी सामर्थ्य त्रिभुवन में किसी में नहीं। महासती लक्ष्मी,

पार्वती, सरस्वती में सामर्थ्य नहीं कि वे श्रीकृष्ण के रूप को देखकर, बंसी को सुनकर, धैर्य रख सकें।

☀ अधरामृत को अमृत क्यों कहा गया? ☀

अमृत कहने का भाव है कि जो अमृत स्वर्ग से आया था वह तो बड़े कष्टों से सागर का मंथन करके आया था परन्तु वह अमृत कुछ नहीं इस अधरामृत के आगे। इस अमृत का अधिकारी सिर्फ कृष्ण भक्त है। जब भक्त त्याग करता है तो भगवान् उसके ऋणी हो जाते हैं। भगवान् कहते हैं कि जो भक्त हमारे लिये मकान, स्त्री, पुत्र आदि छोड़ता है, मैं उसे कैसे छोड़ सकता हूँ?

ये दारागारपुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम् ।
हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे ॥

(भा. ९/४/६५)

हम लोग मकान तो छोटी चीज है, कुटिया के लिए लड़ते हैं, हमें धिक्कार है। भक्त तो भगवान् के लिये अपने प्राणों को भी छोड़ देता है, लोक-परलोक भी छोड़ देता है। जैसे – गरुड़ जी ने अमृत नहीं पिया, बोले – मुझे तो सिर्फ कृष्णरति चाहिये। तभी भगवान् ने उन्हें अपना वाहन बनाया कि आप जैसे भक्त से हमारा गौरव बढ़ेगा।

☀ कृष्ण का रूप ☀

"देखो, कैसा था कृष्ण का रूप? कृष्ण के रूप को देखकर उसी समय ब्रज के वृक्षों पर फूल व फल आ जाते थे। प्रेम में वो झुक जाते थे। सारे ब्रज के वृक्ष मधुओं से भीग जाते थे।" क्यों? क्योंकि कृष्ण का रूप ऐसा है। गोपियाँ बोलीं कि इस रूप को देखकर के गायें, पशु-पक्षी, वृक्ष, लताएँ, हिरन सबके रोंगटे खड़े हो जाते थे।

इसे देखकर मनुष्य ही नहीं बल्कि गायों के भी रोंगटे खड़े हो जाते थे जबकि उनको पशु कहा जाता है। भगवान् के रूप का ऐसा प्रभाव है कि बछड़े भी आँसू बहाते थे। वे दूध नहीं पी पाते थे। मुँह में दूध आ गया तो उसे निगलें या बाहर निकालें, कृष्ण रूप देख करके उनको कोई होश नहीं रहता था।

पेड़ों की क्या हालत होती थी? लताओं की क्या हालत होती थी?

ये तो अचर हैं पर इनके भी आँसू बहते थे। पेड़ों के आँसू क्या हैं? 'मधु', मधु की धारा बहती थी। मधु माने जिससे शहद बनता है। मधुमक्खी उनका मधु लेकर के इकट्ठा करती हैं। हम लोग मधु नहीं खा सकते। हम लोग मधुमक्खी का जूठन खाते हैं। असली मधु तो भँवरा पीता है।

अस्यापि देव वपुषो मदनुग्रहस्य
स्वेच्छामयस्य न तु भूतमयस्य कोऽपि ।
नेशे महि त्ववसितुं मनसाऽऽन्तरेण
साक्षात्तवैव किमुतात्मसुखानुभूतेः ॥

(भा. १०/१४/२)

आपका चिन्मय रूप, त्रिलोकी की सुन्दरता एक बूँद में इकट्ठी की गयी है। रूप की सुन्दरता, गंध की सुन्दरता, रस की सुन्दरता, शब्द की सुन्दरता ये सब जितनी भी त्रिलोकी की सुन्दरता है उन सबका सार है आपका कृष्ण रूप। भगवान् के अधरामृत, रस की एक बूँद के किसी अंश से अनन्त संसार में ये लड्डू-पेड़ा ये सब स्वादिष्ट पदार्थ बने हुए हैं; भगवान् के दिव्य अंग की गंध का कोई अंश अनन्त संसार के फूलों में, चंदन में बसी हुई है । रूप की सुन्दरता, गंध की सुन्दरता, रस की सुन्दरता, शब्द की सुन्दरता, ये सब जितनी भी त्रिलोकी की सुन्दरता है उन सबका सार है कृष्ण रूप।

☀ बंसी ☀

बंसी सदा सुहागिन है, बंसी के सुहाग का वर्णन सनातन गोस्वामीजी करते हैं कि जो सदा श्रीकृष्ण के होठों से चिपकी रहती है वो सदा सुहागिन है। बंसी का सुहाग सदा भरा रहता है। बंसी बहुत मीठी हो गयी है क्योंकि जिसे सदा श्रीकृष्ण के होठों का रस मिल रहा है, वह क्यों न मीठी हो। इस बंसी के द्वारा श्रीकृष्ण के अधरामृत चूमे गये हैं। इसीलिए गोपियों को ऐसा लगता है कि कृष्ण के अधरामृत सदा गाया करते हैं। बंसी और अधरामृत दो नहीं हैं, ये दोनों तादात्म्य से एक हो चुके हैं। गोपियाँ कहती हैं कि ये बंसी बैरिन है, जो दिन-रात बजती है।

शुकदेव जी कहते हैं कि बंसी बैरिन नहीं है। ये तो दिन-रात रस से भरी रहती है। इसके साथ ही श्रीकृष्ण अपने रस को चारों ओर फैला रहे हैं। ये सबके शोक को हरती है। बंसी तो सदा सुहागिन है, ये तो बहुत मीठी है। क्योंकि बंसी और श्रीकृष्ण का अधरामृत दोनों एक ही हैं। दोनों में प्रेम हो गया है, दोनों एक हो चुके हैं। जैसे श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे राधे! देखो कैसा विलक्षण प्रेम है, कभी-कभी पता ही नहीं चलता है मैं राधा बन जाता हूँ और तुम कृष्ण बन जाती हो।

मैं तू तू मैं हो गये, मैं देही तू प्रान ।
अब को अनहि कहि सकै, मैं और तू है आन ॥

कोई ये कह ही नहीं सकता कि राधा अलग है या कृष्ण अलग है। जो कहता है वह प्रेम शून्य है। वेदों ने भी ये ही बात कही है कि जो राधा है वो ही कृष्ण है; जो कृष्ण है वो ही राधा है। दोनों क्या हैं? दोनों एक रस हैं। रस ही कृष्ण है और रस ही राधा है। दोनों ही एक रसरूप हैं। दोनों रस के समुद्र हैं। दोनों एक हैं पर क्रीड़ा के लिए दो देह धारण करते हैं। तादात्म्यता को ही प्रेम कहते हैं। जब

प्रेमी, प्रेमी के साथ इतना तादात्म्य को प्राप्त कर ले कि अलगाव न रहे तो उसे प्रेम कहते हैं। श्रीकृष्ण का अधरामृत और बंसी को गोपियाँ कहती हैं कि ये तो एक तादात्म्यता को प्राप्त हो चुके हैं।

श्रीकृष्ण खड़े बंसी बजा रहे हैं अपने बाँयीं ओर दाहिने गाल को लटका करके मस्तक को टेढ़ा करके, भौंओं को टेढ़ा करके, बड़े बारीक सुरों को बाँसुरी से निकाल रहे हैं।

वामबाहुकृतवामकपोलो वल्गितभ्रुरधरार्पितवेणुम् ।
कोमलाङ्गुलिभिराश्रितमार्गं गोप्य ईरयति यत्र मुकुन्दः ॥

(भा. १०/३५/२)

जब कोई कलाकार अपने भाव में डूबता है तो बाहर शरीर पर भी उसी तरह की क्रियाएँ होने लग जाती हैं; वैसे ही श्रीकृष्ण बाँसुरी बजा रहे हैं तो उनकी भौंहों पर जोर पड़ता है तो वो टेढ़ी हो जाती हैं। भीतर का भाव बाहर आ गया फिर अन्दर बाहर एक हो जाता है। जब भीतर भाव ही नहीं तो वो संगीत नहीं है। भावहीन, भाव शून्य संगीत, संगीत नहीं है। श्रीकृष्ण को देखो बजाते समय ऐसी मधुरता में आ गये कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। मधुरता में होता क्या है? रस का भोलापन होता है। उन्होंने अपने लाल-लाल होठों पर हरी-हरी बंसी रख दी है। उस बंसी पर कोमल उँगलियों से कोमल स्वर भैरवी बजा रहे हैं, उनकी छटा ही अलग है।

एक गोपी पूछ रही है जो श्रीकृष्ण को नहीं जानती थी कि जो ये पीताम्बर ओढ़े, मोर मुकुट पहने अपनी उँगलियों से बाँसुरी बजाते आ रहा है, ये किसका लड़का है? इसका पता बता दे? ये कहाँ रहता है? गोपियों की ऐसी दशा हो जाती थी श्रीकृष्ण को देखकर। गोपियाँ बंसी को सुनकर लज्जित हो जाती थीं क्योंकि उनके हृदय को वो बंसी छू लेती थी, उनका प्रेम जागृत कर देती थी, मिलन की इच्छा तीव्र कर देती थी। लज्जा तभी आती है, जब

सब कुछ बंसी वाले के चरणों में अर्पित हो गया। चित्त ही जब अर्पित हो गया तो रहा क्या? मूर्छा को प्राप्त हो गयीं, किसी बात का ध्यान नहीं रहा। इसी बात को गोस्वामी जी कहते हैं कि ये श्रीकृष्ण का अधरामृत जिसमें बंसी का स्वर भरा हुआ है, ऐसा कौन है? जो उसे सुनकर उसकी मधुरता में झूम न जाये।

सनातन जी एक जगह कहते हैं कि श्रीकृष्ण बंसी बजाते नहीं हैं, तो फिर क्या करते हैं; वह बंसी को उठाते हैं और अपने होठों से लगाते हैं। जब उनके होठों का अधरामृत बंसी को मिलता है तो वो स्वयं गाने लग जाती है कि मुझे मिल गया जो मिलना था। कृष्ण का चुम्बन पाकर बंसी गाने लग जाती है। कृष्ण बंसी नहीं बजाते। कृष्ण के चुम्बन करने की चातुरी ऐसी है, भरे नेत्रों से भरकर चूमते हैं तो बंसी बज उठती है।

☀ बंसी का भाग्य ☀

गोपियाँ कहती हैं –

भुङ्क्ते स्वयं यदवशिष्टरसं ह्रदिन्यो
हृष्यत्त्वचोऽश्रुमुमुचुस्तरवो यथाऽऽर्याः ॥

(भा. १०/२१/९)

श्रीकृष्ण के अधर पर जो वेणु है अगर यह स्त्री जाति का होता तो हमें इतना दुःख नहीं होता पर यह पुरुष होकर के हमारे हिस्से का अधरामृत पी जाता है, देखो कितना अन्याय है? गोपियाँ कह रही हैं कि इस वेणु (बांस) ने क्या तपस्या की है?

देखो, हम गोपी हैं, किसी गोपी ने कई-कई कल्प तक तपस्या की थी तब श्रीकृष्ण रस मिला। जिस कृष्ण रस को पाने के लिये संतो ने अरबों वर्ष तक तपस्या की, तब वो रस मिला। वेद की श्रुतियाँ जाने कब से प्यासी बैठी थीं? अब जाकर उन्हें ये रस

मिला। तो जो ऐसा दुर्लभ रस है, गोपियाँ कहती हैं कि देखो, ये हमारे हक का रस पी जाता है। यह वेणु श्रीकृष्ण का अधरामृत पीता है तो इसके माता-पिता कितने खुश हैं। किसी का लड़का अफसर बन जाये तो उसके माता–पिता बड़े खुश होते हैं। तो जब इस वेणु को श्रीकृष्ण का अधरामृत मिला तो माँ-बाप बड़े खुश हुए। तो इस वेणु के माता-पिता कौन हैं? बोले माता तो है सरोवर जिनके किनारे बांस के पेड़ खड़े थे और उन सरोवरों ने अपने पानी से इन पेड़ों को सींचा जैसे माता दूध पिलाती है, उसी तरह से ये जो बांस के पेड़ थे उनको सरोवरों ने अपने पानी रूपी दूध से सींचा इसीलिए सरोवर माँ हैं। बाप तो ये पेड़ हैं जिन पर ये बाँस लगे हुए थे। जब उन दोनों ने देखा कि अपने पुत्र को श्रीकृष्ण मिल गये तो दोनों खिल गये। पूछा कैसे पता चला कि खिल गये? जब बंसी बजी तो सभी सरोवरों में सब तरफ से कमल खिल गये। जब माँ खुश होती है तो उसके खुशी से रोंगटे खड़े हो जाते हैं। जितने सरोवर थे ब्रज में उनके किनारे जो बाँस के पेड़ थे उनकी आँखों में से खुशी से आँसू निकलने लगे। ऐसे उसके माँ-बाप प्रसन्न भये पर दुःख इस बात का है कि ये पुरुष जाति होने पर गोपियों के अधिकार की वस्तु पी गया। इसी भाव को सनातन गोस्वामीजी कहते हैं कि ये वेणु पुरुष जाति का है। सब जानते हैं कि बाँस पुरुष है इसने आकर के श्रीकृष्ण का अधरामृत पी लिया।

इस बंसी का भाग्य देखो। श्रीकृष्ण ने अच्छी तरह से इसे चूमा और इसी से ये इतनी मीठी हो गयी है। एक सुहागिन का सुहाग क्या होता है? जब सुहागिन का सुहाग उसका नायक उसके पास रहता है तो उसे सुहागिन कहते हैं और जब उसका नायक दूर चला जाता है तो उस सुहागिन का नाम बदल जाता है। जिसका सौभाग्य भर रहा है वो सुहागिन है। इसीलिए इस बंसी का सौभाग्य देखो कि इसे श्रीकृष्ण होठों से लगा रहे हैं। इसे होठों से लगा कर

अलग नहीं करते। जब किसी विरहणी के पति पास नहीं रहते तो वो विरह में सूख जाती है। सूख-सूखकर के दुबली हो जाती है पर मिलन के बाद उसके सब अंग-अंग पुष्ट हो जाते हैं। बोले बंसी को देखो कि विरह में सूख गयी थी, खोखली हो गयी थी। कुछ नहीं रहा था इसमें, पिंजर हो गयी थी।

अब देखो श्रीकृष्ण के मिलने से सारा दुबलापन चला गया और ऐसे जोर से बोल रही है, ऐसा नाद कर रही है मानो इसने सारा संसार जीत लिया है। आज ये श्रीकृष्ण अधरामृत पी करके कितनी पुष्ट हो गयी है । गोपियाँ कहती हैं कि देखो, सुन्दर सुहाग कैसे मिलता है? तीव्र तप से मिलता है। देखो, पार्वती जी ने तप किया था, तब शिव मिले। जितने भी सुन्दर वर मिले तीव्र तप से मिले। गोपियाँ अपने पूर्व कल्पों की बातें कहती हैं कि हम लोगों को देखो, सैकड़ों कल्प तक हमने तप किया, श्रीकृष्ण की प्राप्ति ऐसे ही नहीं हुई। प्रलय के बाद जब भगवान् सो जाते हैं तब श्रुतियाँ जाती हैं भगवान् को जगाने कि उठो, जागो। आप इस योगनिद्रा को नष्ट कर दें। श्रुतियाँ कहती हैं कि हे प्रभो ! लाखों-लाखों वर्ष तक ऋषि-मुनि लोग अपने प्राण, मन, इन्द्रियों को एकाग्रचित्त करके दृढ़ योग से (दृढ़ योग कब बनता है? जब साधक अपने प्राण, मन, इन्द्रियों को बहिर्मुखता से रोक देता है, उस योग को दृढ़ योग कहते हैं) लाखों वर्ष अपने हृदय में आपकी आराधना करते हैं, तब कृपा करके आप उन्हें दर्शन देते हैं।

☀ अकिञ्चन भक्त ☀

अकिञ्चन भक्त कभी भी कोई कामना लेकर प्रभु की शरण में नहीं जाता।

सब लोग समझते हैं कि शरणागति सबसे बड़ी चीज है पर शरणागति से भी बड़ी एक चीज है। वो क्या है? शरणागति तो ऐसी है कि जैसे विभीषण को रावण ने लात मारी तो वो भगवान् की शरण में चला गया। द्रौपदी की किसी ने जब रक्षा नहीं की तो वो भी भगवान् की शरण में चली गयी। गजराज कितने ही वर्ष लड़ता रहा पर अंत में हारकर प्रभु की शरण में चला गया। सब पर कष्ट आया तो वे शरण में गये और उनके समस्त कष्ट दूर हो गये।

पर इस शरणागति से भी बड़ा एक भक्त होता है, 'अकिञ्चन भक्त'। जो कभी भी कोई कामना लेकर प्रभु की शरण में नहीं जाता है।

सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत ।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः ॥

(भा. ३/२९/१३)

अकिञ्चन भक्त तो केवल प्रभु से प्रेम करने, प्रभु की सेवा करने के लिए, प्रभु को सुख देने के लिए प्रभु की शरण में जाता है।

☀ दामोदर☀

श्रीकृष्ण को दामोदर क्यों कहा?

श्रीकृष्ण प्रेम के आधीन हो गये हैं, ये कैसे पता चला? क्योंकि उनका दामोदर नाम बताता है कि आज तक उस प्रभु को कोई भी किसी भी अवतार में बाँध नहीं सका था केवल श्रीकृष्ण ही बँधे रस्सी से; यशोदा मईया ने बाँध दिया; तभी नाम पड़ा 'दामोदर'। 'दाम' माने रस्सी और 'उदर' माने जिनके पेट पर बाँधी गयी। शुकदेव जी ने कहा है –

एवं संदर्शिता ह्यङ्ग हरिणा भृत्यवश्यता ।
स्ववशेनापि कृष्णेन यस्येदं सेश्वरं वशे ॥

(भा. १०/९/१९)

इस लीला में श्रीकृष्ण ने दिखा दिया कि देखो मैं सर्वशक्तिमान, मुझको कौन बाँध सके? मेरी इच्छा से ही अनेक ब्रह्माण्ड बन जाया करते हैं, मुझे कुछ करना नहीं पड़ता। हम लोगों को मकान बनाना हो तो सब सामान इकट्ठा करना पड़ता है और बनाने वाले को बुलाना पड़ता है पर उस प्रभु की सत्ता को देखो जिसके सोचते ही अनेक ब्रह्माण्ड बन गये, वो जो इतना सर्वशक्तिमान है, वो रस्सी से बँध जाता है। यशोदा कहती है कि तुझे बाँध के ही छोड़ूँगी। सारी रस्सियाँ छोटी पड़ गयीं। सारे गोकुल की रस्सियाँ लायी गयीं।

यशोदा पसीने-पसीने हो गयी। श्रीकृष्ण ने कहा, "अब मुझे बस में होना ही पड़ेगा। ठीक है बाँध ले माँ।" इसलिए गोपियों ने दामोदर नाम दिया कि कैसे कृष्ण हैं, जो प्रेम की रस्सी से बँधे हुए हैं।

☀ चोर कान्हा ☀

वल्लभाचार्य जी लिखते हैं कि गोपियाँ कहती हैं कि कृष्ण तुम चोर हो, तुम माखन चोर हो। माखन चोर ही नहीं तुम चितचोर भी हो। चित चोर ही नहीं चीर चोर भी हो। चीर चोर ही नहीं पाप चोर भी हो, शरणागत के पाप चुरा लेते हो। पता नहीं तुम और क्या-क्या चोर हो?

इसलिए तुम धूर्त हो क्योंकि चोरी बिना धूर्तता के नहीं होती। गोपियों का रोज-रोज माखन खा जाते थे तो गोपियों ने पंचायत की। एक गोपी बोली कि मैं पकड़ के दिखाऊँगी, मेरा भी नाम नहीं, अगर कृष्ण को पकड़ के न दिखा दूँ। कई दिनों तक छिप-छिपकर पीछा करती रही और एक दिन दाँव लगा। भीतर घुस करके पहले तो श्रीकृष्ण ने बड़ा मीठा-मीठा दही खाया फिर माखन खाने लगे तो बस उसी समय पकड़ लिया उन्हें।

व्रजे वसन्तं नवनीत चौरं गोपाङ्गनानां च दुकूल चोरम् ।
अनेक जन्मार्जित पाप चौरं चौराग्रगण्यं पुरुषं नमामि ॥

संसार का सबसे बड़ा चोर हमारा कृष्ण है। गोपाल सहस्त्रनाम में पार्वती जी से शिव जी कहते हैं कि हे देवी ! हमारा इष्ट कौन है? जो कामी है, लम्पट है और सबसे ऊँचा चोर है। ऐसा कोई और चोर नहीं हुआ। हर रोज माखन चुराते हैं तो आज पकड़े गये। आज अच्छी तरह से पकड़े गये, आज बचके नहीं जा सकते। बीच दरवाजे पर गोपी खड़ी है कि भाग न सके पर चोर भी बड़ा होशियार है। श्रीकृष्ण बोले – "तू खड़ी रह, पहले मैं अपना काम तो

कर लूँ।” गोपी बोली कि श्यामसुंदर ! अब कैसे जाओगे अपने घर? इतने में श्यामसुंदर ने एक धूर्तता की; श्यामसुंदर ने अपने मुख में दूध भर लिया और दरवाजे की ओर दौड़े, जैसे ही गोपी पकड़ने आयी तो उसकी आँखों पर जोर से कुल्ला कर दिया। जैसे ही गोपी ने आँखें मलीं तो पीछे से निकल गये और बाहर जाके किलकारी करके कहने लगे कि ले पकड़ ले, पकड़ ले।

☀ आपका नाम अच्युत ☀

भगवान् का एक नाम अच्युत है, ‘अच्युत’ माने जो अपने गुणों से हटता नहीं है। भगवान् के जो गुण हैं वे चिन्मय हैं। हमारे में जो गुण हैं वे त्रिगुणमय हैं, उनका परिवर्तन होता रहता है। हम सो गये तो तमोगुण आ गया; जाग गये, काम करने लगे तो रजोगुण आ गया; भजन करने लगे तो सतोगुण आ गया। गप्प करने लगे, आलस आ गया तो तमोगुण आ गया। ये तीनों गुण हर समय इतनी जल्दी बदल जाते हैं कि एक क्षण में पता नहीं कितने चक्र लगा जाते हैं। जैसे कि भजन कर रहे हैं तो कभी उसमें मन कम लगा, कभी ज्यादा लगा, ये बदलाव होता रहता है। एक गुण के अंदर भी परिवर्तन होता रहता है, ये जीव का स्वभाव है।

पर भगवान् इसके विपरीत अच्युत हैं, चिन्मय हैं, करुणाशील हैं। उनके गुण कभी भी बदलते नहीं हैं। प्रेम के भीतर एक सहज अवस्था होती है, अच्युत जो कभी भी छुपाता नहीं। अच्युत को भजने वाला भी अच्युत हो जाता है। अच्युत की शरण में जाने वाला भी अच्युत हो जाता है। प्रेमी के हृदय में कभी भी संशय नहीं होता कि ये करें या वो करें। प्रेमी के हृदय में कोई द्वन्द्व नहीं होता। संशय व द्वन्द्व अज्ञान से आते हैं। जहाँ संशय आ गया वहीं प्रेम की

व भक्ति की नैया डूब गयी। संशय आने का मतलब हमारे हृदय में प्रेम नहीं। बोले फिर क्या किया जाये?

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे ।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते ॥

(गी. ४/२७)

ज्ञान रूपी तलवार ले लो कि केवल श्रीकृष्ण को ही पाना है। ज्ञान रूपी तलवार से अज्ञान व संशय को काट दो और फिर मैदान में अड़ जाओ कि कष्ट आता है तो आने दो, अगर अब मौत भी आती है तो आने दो लेकिन हम खड़े हैं, इसी का नाम प्रेम है, इसी का नाम भक्ति है।

☀ भगवान् सब जगह हैं ☀

भगवान् सब जगह हैं, भगवान् से कोई भी बात छुपी नहीं है। भगवान् सबकी गति जानते हैं। अगर मनुष्य ये जान ले तो कभी कोई पाप कर ही नहीं सकता। अगर मनुष्य ये जान ले तो हर घड़ी भगवान् को ही याद करे फिर कोई भी क्रोध या लोभ उस पर अधिकार नहीं जमा सकेगा। चोरी तभी होती है जब मन में भाव रहता है कि कोई नहीं देख रहा पर सच्चा भक्त कभी यह नहीं सोचता है कि भगवान् नहीं देख रहे हैं।

सच्चा भक्त कौन है? ***सच्चा भक्त वह है जो कण-कण में भगवान् को देखता है।*** हर कण-कण में भगवान् के हाथों को देखता है। भगवान् ने स्वयं कहा है कि मेरी आँख कहाँ नहीं है? पर हम लोग ये बात याद ही नहीं रखते हैं तभी किसी को शत्रु बनाते हैं, किसी से बैर करते हैं, किसी से कुछ छुपाते हैं। क्यों? हम याद नहीं रखते कि प्रभु हैं, भगवान् हैं। सच्चा भक्त ये अनुभव करता है कि प्रभु हर क्षण हर जगह हैं। देखो ! हमारे-तुम्हारे ऊपर बहुत बंधन हैं,

देश का बंधन है, शरीर का बंधन है, काल का बंधन है। जैसे – आप कथा सुन रहे हैं तो आप यहाँ हैं, अपने घर में नहीं हैं। ये शरीर एक समय में एक ही जगह पर रहता है, ये शरीर का बंधन है। काल का बंधन है कि जैसे आप आज हैं, ६० साल के बाद नहीं रहोगे; ये काल का बंधन है। इन बन्धनों के कारण ही हम जीव हैं। भगवान् पर कोई बंधन नहीं है वे सदा हर जगह हो सकते हैं। इसीलिए भगवान् के हाथ हर जगह हैं, पाँव हर जगह हैं। हमारे तो हाथ-पाँव एक ही जगह हैं। हमें चलना पड़ता है, भगवान् को चलना नहीं पड़ता।

उनके तो सब जगह ही हाथ-पाँव हैं। द्रौपदी ने पुकारा तो उसी समय वहीं साड़ी से प्रगट हो गये, वो हमारी सब बातों को सुनते हैं। हमारे मन के सब भावों को सुनते हैं, जो भी हम सोचते हैं, उसे वो सुनते हैं। जैसे – आकाश हमें सब जगह से घेरे है, वैसे ही भगवान् हमको सब जगह से घेरे हैं। जिसे ऐसा विश्वास हो जाता है, उसे आस्तिक कहते हैं।

☀ दैन्य ☀

संकल्पात्मिका वृत्ति 'मन' है, निश्चयात्मिका वृत्ति 'बुद्धि' है, समानात्मिका वृत्ति का नाम 'चित्त' है, अनुभवात्मिका वृत्ति का नाम 'अहम्' है। अनुभव अहम् में होता है, यदि अहम् नहीं है तो अनुभव होगा ही नहीं। तो क्या अनुभव को समाप्त करना है? नहीं, भक्त इसको कभी भी समाप्त नहीं करना चाहता क्योंकि फिर भगवान् का अनुभव कैसे होगा? अतः भक्त इसे चिन्मय बना लेता है, ज्ञानी इस अनुभव को समाप्त कर देता है, योगी इसको लीन कर लेता है। प्रभु का दास या भक्त इन सबसे उच्च है जो इसे भगवान् से जोड़ देता

है। दीनता को अपना भूषण बनाकर, भक्त इस अहम् को समाप्त कर देता है।

दैन्य आने पर काम, क्रोधादि विकार आपमें आयेंगे ही नहीं और ना ही कोई प्रतिक्रिया की भावना होगी। कोई यदि गाली दे रहा है या कोई बुरा-भला कह रहा है तो ये ही सोचना चाहिए कि हम इसी के पात्र हैं। स्वयं को दूसरों से ऊँचा नहीं सोचना चाहिए। दूसरों में कभी भी अभाव नहीं करना चाहिए, हर समय कमी अपने में ही देखो। भगवान् स्वयं भी भक्त के दोषों की तरफ ध्यान न देकर उसके जरा से सत्कर्म को बार-बार याद करते हैं।

प्रभु को देखौ एक सुभाइ ।
तिनका सौं अपने जन कौ गुन मानत मेरु-समान ।
सकुचि गनत अपराध-समुद्रहिं बूँद-तुल्य भगवान ॥

समस्त आचार्य एक ही बात कहते हैं कि अगर आप में दैन्य है तो समस्त गुण अपने आप आ जायेंगे। दैन्य में किसी घटना या किसी भी प्राणी के व्यवहार की चित्त पर कोई प्रतिक्रिया नहीं होती। पानी में कुल्हाड़ी मारो तो क्या उसमें घाव हो सकता है? नहीं, इसी प्रकार भक्त भी जल ही की भाँति स्वच्छ होते हैं। भक्त जहाँ भी बैठता है वहाँ अपने स्वभाव से स्वच्छता का वातावरण उत्पन्न कर देता है।

अहंकार की दीवार जब तक बनी हुई है, तब तक प्रभु नहीं मिलेंगे। भक्त की दीनता इस अहंकार को दूर करके प्रभु से मिला देती है। दीनता हृदय की होनी चाहिए। बाहरी व्यवहार से कुछ पता नहीं चलता। पता नहीं किसके हृदय में कितना प्रेम है? पता नहीं किसके हृदय में कितना दैन्य है? बाहरी व्यवहार तो प्रदर्शन के लिए भी किया जा सकता है। अधिकांश लोग अपनी कमियों को ढकने के लिए विनम्र व्यवहार करते हैं। अन्तर्यामी भगवान् ही सबके हृदय की स्थिति को जानते हैं और कोई नहीं जान सकता।

सत्कर्मों में भी कोई न कोई अनर्थ अवश्य उत्पन्न हो जाता है। दैन्य ही भगवान् को प्रिय है। साधन कोई भी हो, अगर उसमें अभिमान है तो वह तुम्हें भगवान् से दूर कर देगा।

एवं भगवतः कृष्णाल्लब्धमाना महात्मनः ।
आत्मानं मेनिरे स्त्रीणां मानिन्योऽभ्यधिकं भुवि ॥

(भा. १०/२९/४७)

गोपियों को भगवद्-प्रेम में भी अहम् उत्पन्न हो गया था। हनुमान जी को भगवद्-सेवा करते हुए अहम् उत्पन्न हो गया था। सोचने लग गये थे कि भरत जी का बाण, क्या मेरा भार सह सकेगा?

सुनि कपि मन उपजा अभिमाना ।
मोरे भार चलिहि किमि बाना ॥

(रा.च.मा.लंका. ६०)

भक्त वही है जिसके अन्दर दीनता होती है। इतनी दीनता कि तिनके को भी अपने से बड़ा मानते हैं। आज जब हम प्रसाद पा रहे थे तो हमसे किसी ने पूछा कि जब भगवान् के सामने सब लोग जाते हैं तो दाँत के नीचे तिनका दबाकर व हाथ जोड़कर के जाते हैं। ऐसा क्यों? हमने कहा कि हर एक चीज के बहुत से भाव होते हैं। एक ही क्रिया के बहुत से भाव होते हैं। हर कोई अपनी भावना के हिसाब से प्रत्येक क्रिया को करता है। महाप्रभु ने कहा है –

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना ।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः ॥

तिनके से नीचे अपने को मानो, इतना छोटा बनना सीखो, बोले क्यों? क्योंकि घास पर पैर रख दो तो घास कभी मना नहीं करती है परन्तु जब तुम पाँव रखकर चले जाते हो तो फिर से सिर उठा लेती है लेकिन भक्त कभी भी सिर नहीं उठाता है। भक्त ऐसा ही होता है। इस शरीर का क्या अहंकार करना? क्या है इस शरीर की

कीमत? अच्छे से अच्छे पहलवान भी आग में जलकर राख हो जाते हैं।

कौन कहता है कि प्रभु से मिलना कठिन है?

अरे ! प्रभु से मिलना तो बहुत ही सरल है। हमें कोई भी प्रयत्न नहीं करना। प्रभु तो पहले से ही रोम-रोम में विद्यमान हैं। ***केवल आसुरी भाव अहंकार को निकाल फेंको, फिर प्रभु स्वतः ही मिल जायेंगे।*** जो तुम्हें सताता है, तुम उसे प्रेम करो। तुम उसे सुख दो। प्रतिकार मत करो। प्रतिकार की भावना ही अहंकार है।

☀ धैर्य ☀
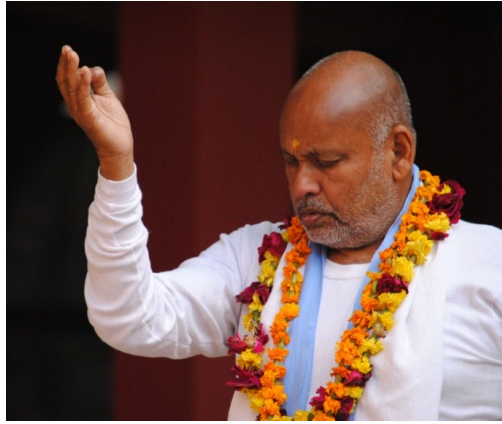
धर्म के विषय में जब परीक्षा का समय आता है तो हम लोग गिर जाते हैं। धर्म के प्रताप से सब कुछ सम्भव है परन्तु हमें धैर्य नहीं छोड़ना चाहिए।

धर्म पालन में लोग अविश्वास करा देते हैं परन्तु कैसा ही कलियुग क्यों न हो, धर्मात्मा को धैर्य रखना चाहिए। भगवान् ने दैवी सम्पत्ति में धैर्य को लिया। भक्त की सम्पत्ति ही धैर्य है।

शंकाओं से बचते हुए अपने धर्म में लगे रहो। जीव के मन में शंकाएँ तो आती रहती हैं। जैसे कि जीव जब देखता है कि कोई पापी है और वो आनन्दमय जीवन व्यतीत कर रहा है तो उसे बड़ी शंका होती है। परन्तु वो पापी उस समय अपने पूर्व कर्म के पुण्य से सुख ले रहा है। किसी भी विधान में शंका मत करो। फल हर एक को अवश्य मिलता है परन्तु वह मिलेगा सबको निश्चित समय पर ही। धर्म भगवान् का स्वरूप है। धैर्य रखो और अपने सत्कर्म में व अपने धर्म में लगे रहो।

☀ मन में मैल ☀

मन में मैल नहीं रखना चाहिए। ये मैल क्या है? किसी से प्रेम करते हैं और किसी से द्वेष करते हैं। किसी की तरफ प्रेम से देखते हैं और किसी की तरफ द्वेष से। बस ये ही मैल है हमारे अंदर द्वन्द्व का जो आज तक नहीं मिटा। मनुष्य मर जाता है, चिता पर जल जाता है पर ये साथ लेकर ही मरता है। जहाँ जन्म लेता है इसे फिर लेकर जन्मता है। गोपियाँ कहती हैं कि बड़े-बड़े योगी तपस्या करके जिस द्वन्द्व को नहीं मिटा सके, उसे कृष्ण चरित्र मिटा देता है। उसका संसार मिट जाता है। जिसका द्वन्द्व मिट गया तो उसका संसार मिट गया क्योंकि फिर संसार से प्रेम ही नहीं रहा।

भजन करने वाले को दो चीजें जानना चाहिये। एक जो चीज भजन में बाधा देती है और दूसरी वो चीज जो भजन में सहायता देती है। जो चीज बाधा देती है उसे जानना जरुरी है जैसे कि डॉक्टर ने दवा दी जुकाम की और कहा इसे काढ़ा बनाकर पी लेना। हमारे साथ एक बार यही हुआ, हमें बुखार और जुकाम था। एक महात्मा ने कहा कि सात पत्ती तुलसी, सात काली मिर्च आदि घोटकर, औटाकर पी लेना। हम समझ नहीं पाये। घोटकर तो पी

गये पर औटा नहीं पाये। उससे जुकाम व बुखार दोनों बढ़ गये। शरीर और जकड़ गया। इसलिए दोनों को जानना जरुरी है। दोनों चीजों को जानने वाला ही सच्चा साधक है। जैसे हम सत्संग करते हैं इससे भी जरुरी है कुसंग से बचना। क्यों? क्योंकि कुसंग से तो राम जी की मैया की भी बुद्धि बिगड़ गयी थी।

को न कुसंगति पाइ नसाई।
रहइ न नीच मतें चतुराई॥

(रा.च.मा.अयो. २४)

सत्संग में हम गये तो वहाँ भगवान् की महिमा सुनने को मिली उससे भगवान् में विश्वास हुआ, नाम कीर्तन में श्रद्धा हुई, किसी के पास गये और उनकी चार बातें सुनी तो अपना विश्वास तुरन्त घट जाता है। श्रद्धा और विश्वास की कमाई खत्म हो जाती है।

जिस किसी ने भी श्रीकृष्ण का एक बार भी नाम लिया या सुना, जिसने श्रीकृष्ण का चरित्र लीला की एक बूंद भी अपने कानों में सुनी, जिसने एक बार कृष्ण-नाम की बूंद चख ली, वह सब कुछ भूल गया। उसके सब द्वन्द्व मिट गये। सच यही है कि जब कृष्ण रस आता है ये 'तेरा-मेरा' के द्वन्द्व और राग-द्वेष सब हट जाते हैं। हर कोई इन द्वंद्वों से पीड़ित है। ये कभी मिटते भी नहीं चाहे कोई गृहस्थ हो या संत। ये सब कब मिटते हैं? जब उस कृष्ण का माधुर्य रस हृदय में घुसता है, तब मिटते हैं। गोपियाँ कहती हैं कि उसके पहले ये नहीं मिटते। श्रीकृष्ण रस की मिठास जब तक हृदय में नहीं घुसती तब तक ये नहीं मिटते। अगर किसी के हृदय में ये द्वन्द्व हैं तो अभी कृष्ण से प्रेम नहीं हुआ। कृष्ण प्रेम की बूँद के बिना हृदय के मल नहीं जाते, चाहे आप कितना भी साधन कर लो; योग कर लो, जप कर लो या तप कर लो।

☀ मौन होना ☀

जब मन राग-द्वेष को छोड़ देता है, तब मन का मौन होता है।

मौन होना है तो मौन कोई वाणी को शान्त करना नहीं है। यदि ऐसा होता तो सभी पशु मौन रखते हैं परन्तु वह मौन नहीं कहा जाता।

गीता में भगवान् ने कहा है –

मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ॥

(गी. १७/६)

'मन का मौन' राग-द्वेष से अलग रहना है। जब मन राग-द्वेष को छोड़ देता है, तब मन का मौन होता है, तब जीव का मौन होता है। संसार में हर जीव अन्धा बना हुआ है। वह अपने को न देखकर दूसरों को देखने में लगा हुआ है। जब इंसान अपने को देखेगा, तब उसे अपने विकार नजर आयेंगे। संसार में ऐसे लोग बहुत कम हैं, जो अपनी कमियों का निरीक्षण करते हैं। ***किसी ने यदि अपनी कमियों को समझना सीख लिया तो उसका उसी समय कल्याण हो जायेगा।*** जैसे ही हम अपने अन्दर के राग-द्वेषों को समझ लेंगे, उसी समय ही माया का विनाश हो जायेगा।

☀ निष्कपटता ☀

सारी भक्ति की आत्मा है 'निष्कपटता'।

निष्कपटता से प्रभु प्रसन्न होते हैं। निष्कपटता का मतलब - जो मन में है, वही वाणी में है और जो वाणी में है, वही क्रिया में है, ऐसे लोग संत होते हैं परन्तु जिनके मन में कुछ और है, वाणी में कुछ है और कर्म में कुछ है, ऐसे लोग असंत होते हैं। हम लोग

अपने हर कर्म को छुपाते रहते हैं। कृष्ण अर्थात् कर्षण करने वाला, प्रभु हमारे कर्मों को खींचते हैं, बाहर निकालते हैं। तभी हमारे कर्म नष्ट होते हैं। कर्म कहने से नष्ट होते हैं और ढकने से अमिट होते हैं। भक्ति का सार है 'निष्कपटता'। भगवान् ने स्वयं कहा है –

निर्मल मन जन सो मोहि पावा ।
मोहि कपट छल छिद्र ना भावा ॥

(रा.च.मा.सुन्दर. ४४)

औरों की तो क्या कहें, स्वयं पार्वती जी भी कपट के कारण शंकर जी से दूर हो गयीं थीं।

शंकर जी ने उनका त्याग कर दिया था। जब राम जी जंगल में सीता जी के विरह में थे तो राम को देखकर सती जी को संशय हुआ। शिव जी ने समझाया पर वह नहीं मानीं। सीताजी का रूप धारण किया और आकर बैठ गयीं। प्रभु से क्या छिप सकता है? फिर पछतायीं कि भगवान् हमारे कपट को पहिचान गये फिर शिव जी ने पूछा कि परीक्षा ली या नहीं? यहाँ दुबारा फिर कपट कर गयीं। एक कपट बहुत कपट करवाता है। बोलीं, "मैंने परीक्षा नहीं ली।" महादेव जी समझ गये पर ये नहीं बोले कि तुम झूठ बोल रही हो। मन ही मन उन्होंने प्रभु की माया को प्रणाम किया। समझ तो गए ही थे कि सती झूठ बोल रही है।

ये कपट कभी भी जीव को प्रभु से मिलने नहीं देगा। दूध में पानी डाल दो तो पानी भी दूध के भाव बिक जाता है और उसी दूध में कहीं खटाई डाल दी तो फट जायेगा। कपट खटाई है जो प्रभु से अलग कर देती है।

जलु पय सरिस बिकाइ देखहु प्रीति कि रीति भलि ।
बिलग होइ रसु जाइ कपट खटाई परत पुनि ॥

(रा.च.मा.बाल. ५७)

☀ हम अपने दोषों के कारण प्रभु से दूर हैं ☀

वल्लभाचार्य जी 'शोक' का अर्थ करते हैं कि प्रभु हमारे हृदय-कमल में विराज रहे हैं पर हम अपने दोषों के कारण उनसे दूर हैं। कितनी दूर है? इतनी दूर हैं कि उनसे दूर कोई नहीं है। पास इतने हैं कि उनसे ज्यादा पास भी कोई नहीं है। ये शरीर भी दूर है। ये शरीर के अंदर मन है और उसके भीतर हृदय कमल पर भगवान् बैठे हैं। दूर हैं तो इतने दूर कि अनन्त ब्रह्माण्डों से भी दूर। ये बड़े दुःख की बात है कि हमारे मुख में लड्डू है पर हम खा नहीं सकते।

भगवान् स्वयं कहते हैं –

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च ।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत् ॥

(गी. १३/१५)

मैं पास से पास हूँ और दूर से दूर हूँ, बाहर हूँ, भीतर हूँ, अचर में हूँ, चर में हूँ; पर सूक्ष्म इतना हूँ कि कोई मुझे जान नहीं सकता। भगवान् कहते हैं कि मैं हूँ तो हर जगह पर मुझे कोई पकड़ नहीं सकता। जैसे आकाश है तो सब जगह पर उसे कोई पकड़ नहीं सकता। पास होते हुए भी दूर क्यों हैं? हमारे चित्त के विकारों के कारण। ये बड़े शोक की बात है। जब तक ये सब विकार हमसे दूर नहीं होंगे तब तक भगवान् नहीं मिलेंगे। इनको दूर करने के लिए ही भजन किया जाता है। भजन करने का लक्ष्य यही होता है कि हमारा चित्त निर्मल हो जाये। चित्त का शीशा साफ हो जाये परन्तु शोक इस बात का है कि जब भगवान् हमारे इतने पास हैं फिर भी हम उन्हें देख नहीं सकते, हम उन्हें छू नहीं सकते।

'अहम्-भाव' भगवान् से अलग कर देता है। याद रखो ये जो 'मैं' है हमें भगवान् से दूर कर देता है। हम लोग अपने को अच्छा समझते हैं, अच्छा कर्म करने वाला समझते हैं। ये सब अहम्-भाव

है जो भगवान् से अलग कर देता है। हम सोचते हैं कि हम बड़े विरक्त हैं, गृहस्थी सोचता है कि हम बड़े दानी हैं। ये सब बातें भगवान् से दूर कर देती हैं। देखो! जब हम सो जाते हैं तो मन भीतर गुफा में छुप जाता है, इन्द्रियों का साथ छोड़ देता है। किसी सोते आदमी से कहो, क्यों रे बेवकूफ, गधे, नालायक लेकिन उसको कुछ भी पता नहीं चलता। जब जाग जाये तो जरा-सा कहो तो थप्पड़ मारेगा लेकिन सोते समय मन इन्द्रियों को छोड़कर चला गया है तो हजार गाली भी दो तो भी कुछ नहीं कहेगा। सो रहा है तो भी वही कान हैं, ये भी नहीं कि कान में रुई डाल रखी है। आवाज कान में जा रही है, भीतर भी जा रही है पर मन ने इन्द्रियों का साथ छोड़ दिया तो अब कौन सुने? सोते समय सर्प ऊपर से चला गया तो अब कौन डरे?

☀ सहनशीलता ☀

खाद खोद धरती सहै काट कूट वनराय।
कटु वचन साधू सहै और पै सह्यौ न जाय॥

सहनशील प्राणी ही अपना व जगत् का कल्याण कर सकता है। पानी स्थिर और निर्मल होता है परन्तु बाहर की हवा उसे चंचल बना देती है। उसी तरह उद्वेग हमें असहनशील बना देते हैं। चित्त पर बाहरी हवा अर्थात् उद्वेगों का असर नहीं होगा तो वह विकार शून्य हो जायेगा।

तितिक्षवः कारुणिकाः सुहृदः सर्वदेहिनाम् ।
अजातशत्रवः शान्ताः साधवः साधुभूषणाः ॥

(भा. ३/२५/२१)

हर परिस्थिति में सहनशील रहना ही भक्त की पहिचान है। एक परिवार था, उसमें एक हजार आदमी थे। सारा परिवार एक था। कहीं भी झगड़ा नाम की कोई चीज ही नहीं थी। सभी सुनकर हैरान

होते थे कि ऐसे कैसे हो सकता है? ये क्या सच है, सब जानना चाहते थे। एक आदमी को भेजा गया, उसने जाकर देखा कि वहाँ तो पूरा शहर सा बस रहा था। उसने जाकर पूछा कि हम आपके परिवार में लड़ाई न होने का कारण जानना चाहते हैं तो उन्होंने कहा कि भाई ! बड़े के पास चले जाओ; वह जिसके भी पास जाये वो बोले कि बड़े के पास चले जाओ, वे अपने से बड़ों के पास भेजते जायें। अंत में उसे एक बड़े बुड्ढे आदमी के पास ले गये जो सौ साल से भी ऊपर था। उनसे कहा कि इस बात का जवाब हम आपको रात को देंगे। तो वह आदमी बोला कि ठीक है। वह दिन भर वहीं रहा, उसने देखा कि बहुत से चूल्हों पर खाना बन रहा है। जहाँ जिसको मौका मिल रहा है वो वहीं खा रहा है। कोई किसी से झगड़ ही नहीं रहा।

रात को वो बुड्ढे के पास गया तो बुड्ढे ने उसे एक हजार पन्ने की एक मोटी पुस्तक दी और बोला कि इसमें तुम्हारा जवाब लिखा है पर घर जाकर इसे खोलना। वह जब पुस्तक लेकर पहुँचा तो सब लोग इकट्ठे हो गये। जैसे ही पुस्तक खोली तो हर पन्ने पर एक ही शब्द लिखा था कि 'सहनशीलता' । सब पन्नों पर सिर्फ 'सहनशीलता, सहनशीलता, सहनशीलता' लिखा था।

☀ दुःख ☀

दुःख तो एक अग्नि है जो भक्त को सोने की तरह तपाकर और भी निर्मल व उज्ज्वल बना देता है।

दुःखों से कभी घबराओ मत। जहर भी मिले तो प्रेम से पी जाओ और अपने प्रेम को कुंदन बनाओ। अपने प्रेम को मिलन के सुख की तृष्णा से या लालसा से अपवित्र मत करो। अपने प्रेम को पीतल मत बनाओ। दुःखों से क्या घबराना?

विपदः सन्तु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो ।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम् ॥

(भा. १/८/२५)

हँसते-हँसते जहर पी जाओ कुन्ती की तरह; जिसने स्वयं कृष्ण से दुःख माँगे ताकि एक पल के लिए भी श्रीकृष्ण की याद न बिसरे। प्रभु के विरह का दुःख तो एक अग्नि है, जो भक्त को सोने की तरह तपाकर और भी निर्मल व उज्ज्वल बना देता है। ये भक्त में प्रभु प्रेम को और भी अधिक चमका देता है। उसके प्रेम को प्रतिपल और प्रबल व गहरा कर देता है।

सामान्य लोग तो जरा से दुःख से घबरा जाते हैं और सोचते हैं कि ऐसे प्रेम का क्या जिसमें दुःख ही दुःख भरे हैं परन्तु मीरा का उदाहरण ले लो, उसने क्या-क्या दुःख नहीं सहे? लेकिन मीरा घबरायी नहीं। वह तो ये जानते हुए भी कि मुझे जहर दिया जा रहा है, उसे पी गयी। मीरा दिखाना चाहती थी कि कृष्ण प्रेम कैसा है? वह जानती थी कि ये दुःख ही मेरे प्रेम को उज्ज्वल करेगा।

☀ ममता ☀

जब तक जीव जीवन में से ममता नहीं छोड़ता, उसे सुख नहीं मिलता। ये ममता इतनी खतरनाक है कि जिससे तुम ममता करोगे, उसके कर्म भी तुम्हें भोगने पड़ेंगे। ममता अन्तःकरण में घुस जाती है। जैसे कि संसार में किसी के बच्चे को कोई पीटे तो माँ-बाप समझते हैं कि उन्हें ही पीट दिया है। सीताजी का हरण तो किया रावण ने पर सीता माता का पाप भोगना पड़ा सारी लंका को पर विभीषण जी बच गये। जो भक्ति करता है उसके पास ममता कहाँ रह जाती है। प्रकाश के आते ही अन्धकार अपने आप भाग जाता है। ये जो सब जगह पर तुम्हारी ममता है, उसे सब जगह से

खींच लो। ममता खींचने का मतलब ये नहीं कि उन सबको छोड़ दो। ममता कहते हैं कि किसी में मेरापन है कि ये हमारा है। ये हमारा शरीर है, ये हमारा परिवार है, ये हमारा धन है, ये अपनापन हटा लो। किसी को भी अपना मत समझो। संसार में से ममता को हटाकर अपने प्रभु के चरणों में रखो। भक्त जब सब जगह से ममता छोड़कर भजन करता है, वही सच्चा भजन है।

☀ मर्यादा का पालन ☀

जिस स्थान पर हम रहते हैं उसकी मर्यादा का पालन करना ही भक्ति है।

मनुष्य जहाँ भी रहे, चाहे वह किसी आश्रम में रहे या मंदिर में रहे, लोकसंग्रह की दृष्टि से उसे उस आश्रम की या मंदिर की सभी मर्यादाओं व नियमों का पालन करना चाहिए। इससे एक तो लोकादर्श स्थापित होता है और दूसरा हम सबके प्रिय भी बन जाते हैं। इस विषय में हम अपने जीवन की एक घटना बताते हैं कि जब हम नए-नए आये थे तो गहवर वन में गोपाल कुटी में रहा करते थे, वहाँ रोजाना सायंकाल को ठाकुर जी की आरती होती थी। उस

समय हमारा जीवन बड़ा एकान्तिक था, हम तानपुरा पर गाया करते थे। वही समय हमारा तानपुरा पर गाने का होता और वही समय वहाँ की आरती का था। एक दिन हमारे बाबा (श्री प्रिया शरण जी महाराज) टहलते हुये वहाँ आये तो हमने अपने बाबा से पूछा, "बाबा, क्या करना चाहिए? अब आरती में जाँये या अपना गायें?" तो बाबा हमसे बोले, इसमें पूछने वाली क्या बात है। तुम्हें आरती में जाना चाहिए क्योंकि तुम जहाँ रह रहे हो सबसे पहले उस आश्रम के नियमों का पालन करना चाहिए। ऐसा करने से तुम सबके प्रिय बन जाओगे और तुम्हारे आचरण का दूसरे लोग भी अनुकरण करेंगे। तुम्हें देखकर और लोग भी आरती में आयेंगे, नहीं तो झगड़ा होगा कि वो नहीं आते तो मैं क्यों आऊँ और इस तरह से द्वेष फैलेगा इसलिए जहाँ भी रहो स्थान के नियमों का पालन करो। यदि नहीं कर सकते हो तो आश्रम छोड़ दो, कहीं और रह लो। उसी दिन से हमने आरती में जाना शुरू कर दिया। ऐसा आदर्श हम सब को अपनाना चाहिए क्योंकि गीता जी में भगवान् ने कहा है –

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम् ।
सङ्करस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥

(गी. ३/२४)

अर्जुन ! मैं स्वयं लोक संग्रह के लिए कर्म करता हूँ यदि मैं ऐसा न करूँ तो सारे संसार का हत्यारा बन जाऊँ। संसार में बड़े लोग या कह लो श्रेष्ठ पुरुष जैसा आचरण करते हैं उन्हें देखकर अन्य लोग भी वैसा ही करते हैं।

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥

(गी. ३/२१)

इसलिए हमारा हर कर्म ऐसा होना चाहिए जिससे लोग कुछ सीखें; यहाँ तक कि हमारा उठना-बैठना, खाना-पीना सब कुछ

ऐसा हो जिससे लोग कुछ न कुछ शिक्षा ले सकें। जनक आदि भी लोक संग्रह के लिए कर्म करके परम सिद्धि को प्राप्त हो गये।

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।
लोकसङ्ग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि ॥

(गी. ३/२०)

इसलिए अर्जुन ! तू जो कुछ भी करता है लोक संग्रह की दृष्टि से ही कर। हमारा हर कर्म, हर व्यवहार ऐसा होना चाहिए जो सर्वत्र प्रेम और मधुरता भर दे, न कि राग-द्वेष फैलाये। इस विषय में भक्तमालजी में एक बहुत सुन्दर कथा आती है कि एक आश्रम में जगह नहीं थी। कोई पूछने के लिए आया कि क्या जगह है? महंत जी ने कहा कि उसके पास एक लोटा पानी भर कर ले जाओ, वो समझ जायेंगे कि आश्रम में जगह नहीं है।

जो आये थे वे बड़े विद्वान और भक्त थे। वे हँस दिये और उस जल में एक बताशा घोलकर भेज दिया। महंत जी बोले कि जल्दी जाओ और उन्हें आश्रम में बुला लाओ। उनके कहने का भाव था कि आश्रम में रस बढ़ेगा, पानी नहीं बढ़ेगा। अधिकतर लोग तो अभाव का जहर मिलाते हैं, भाव का मीठा अमृत घोलने वाले बहुत कम होते हैं लेकिन हम लोगों को ऐसा ही बनने का प्रयास करना चाहिए जिससे कि हमारे व्यवहार से आश्रम में मधुरता और प्रेम फैले और राग-द्वेष का जहर दूर हो जाये।

☀ व्यवहार ☀

महाप्रभु जी ने कहा है कि नीच से नीच के साथ भी हमारा व्यवहार कितना कोमल है, उससे हमारे व्यवहार का पता चलता है। बड़ों के साथ व अच्छों के साथ तो सभी अच्छा व्यवहार करेंगे परन्तु अपने से छोटों व दीनों के साथ हमारा जैसा व्यवहार है, वही हमारा वास्तविक व्यवहार है। ***भावुक का हर कर्म उपासना बन जाता है।*** जैसे कुल्हाड़ी चंदन को काटती है किन्तु चंदन कुल्हाड़ी को भी सुगन्धित बना देता है। चंदन ने अपना स्वरूप नहीं छोड़ा और कुल्हाड़ी को भी उसने औरों की तरह सुगन्धित ही किया।

ताते सुर सीसन्ह चढ़त जग बल्लभ श्रीखंड ।
अनल दाहि पीटत घनहिं परसु बदन यह दंड ॥

(रा.च.मा.उत्तर. ३७)

इसके फलस्वरूप चंदन को इतना सम्मान मिला कि देवताओं ने चंदन को अपने सिर पर स्थान दिया। आज सारा संसार चंदन से प्रेम करता है और कुल्हाड़ी को धार पैनी करने के बहाने अग्नि में जलाया जाता है, दण्डित किया जाता है।

☀ संस्कार ☀

प्राणी हर समय शुद्ध व अशुद्ध कर्म करता रहता है। हर कर्म हमारे अंदर संस्कार डालता है। कर्म के बिना प्राणी एक क्षण भी नहीं रह सकता। सुषुप्ति में भी हम आनन्द का अनुभव करके कर्म करते हैं। ***अनादिकाल से हमने भोग भोगे हैं, उन भोगों के संस्कार हमारे अंदर भरे हुए हैं। इन संस्कारों को मिटाने के लिए सुसंस्कार जाग्रत् करने पड़ेंगे।*** अशुद्ध जल निकाले बिना, घड़े में जल शुद्ध नहीं हो सकता। सुसंस्कार सत्संग से मिलेंगे। ये

सुसंस्कार पुराने कुसंस्कारों को मिटा देंगे। संस्कार से ही संस्कार समाप्त होंगे। सत्संग में लगे रहो, आज नहीं तो कल ये सुसंस्कार तुम्हारे अंदर एकत्रित हो ही जायेंगे।

अगर हम किसी के गुण या दोष देखते हैं तो अभी हमारे अंदर बहिर्मुखता है। किसी के सिर्फ दोष ही नहीं बल्कि गुण देखना भी बहिर्मुखता है। हमें केवल अपने ही दोष नजर आने चाहिए। अपने दोष केवल सत्संग से ही दिखाई पड़ते हैं। सत्संग के बिना अपने दोषों को देखने की आदत नहीं पड़ती। जब तक अपने दोषों को देखोगे नहीं, उन्हें सुधारोगे कैसे? हमें हमारे साधन का फल तब तक नहीं मिलता, जब तक हमारे संचित कर्मों का नाश नहीं हो जाता।

बुद्धि के दो विभाग किये गये हैं। एक है अनुभूति और दूसरा है स्मृति। पहले अनुभव करना और फिर उसकी याद करना। प्रत्येक अनुभव को मन चुरा लेता है और उसे चुराकर काल के गर्भ में डाल देता है। जिसको मन नहीं चुरा पाता, वह है स्मृति। हम पूर्व जन्म में मनुष्य, पक्षी या पशु क्या थे? यह सब काल ने चुरा लिया है। मन बहुत बड़ा चोर है।

इन्द्रियैर्विषयाकृष्टैराक्षिप्तं ध्यायतां मनः ।
चेतनां हरते बुद्धेः स्तम्बस्तोयमिव ह्रदात् ॥

(भा. ४/२२/३०)

सबसे पहले ये चेतना को चुरा लेता है, जिससे स्मृति नष्ट हो जाती है। स्मृति नष्ट होते ही बुद्धि भी नष्ट हो जाती है। बुद्धि नष्ट होते ही ज्ञान भी नष्ट हो जाता है फिर जीव के पास काम, क्रोध, लोभ आदि सब आ जाते हैं क्योंकि बुद्धि नष्ट हो चुकी है। बुद्धि ही इन सब पर नियंत्रण रखती है। इस बुद्धि का शोधन एक मात्र सत्संग से ही सम्भव है और वो सत्संग मिलना प्रभु की कृपा से ही संभव है।

बिनु सत्संग बिबेक न होई ।
राम कृपा बिनु सुलभ न सोई ॥

(रा.च.मा.बाल. ३)

एक स्थिति ऐसी होती है कि हमारा मन कष्टों के अनुभव से ऊपर हो जाता है, हमें कष्टों की प्रतीति ही नहीं होती। जो मन से ऊपर उठ गया, जो वृत्तियों से ऊपर उठ गया, वह क्लेशों के अनुभव से ऊपर उठ गया परन्तु ये अनुभूति सिर्फ सत्संग से ही सम्भव है, सतत् सत्संग करो। सत्संग से हमें कुछ मिल गया ऐसा देखने से दिखाई नहीं देता लेकिन भगवान् की कथा में, कीर्तन में, सत्संग में, चिन्तन का धन मिलता है।

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥

(गी. ८/१४)

ये चिन्तन हमें भगवान् के पास ले जाता है। ऐसा चिन्तन उद्धव जी ने गोपियों का देखा था। न तो उन्हें नहाने की सुध है, न वस्त्र पहनने की सुध है। कब सबेरा होता है और कब संध्या? श्रीकृष्ण प्रेम में ऐसी डूबीं हुई हैं कि उन्हें कुछ पता नहीं। बस जब ऐसा चिन्तन होता है तो भगवान् पीछे-पीछे घूमते रहते हैं। कथा श्रवण सबसे सरल साधन है, इसमें कोई प्रयास नहीं करना पड़ता। बच्चे जब खेल आदि में भूख-प्यास को भूल जाते हैं तो फिर कथा में ये क्यों सम्भव नहीं? भगवद्-कथा में एक बार रूचि हो जाय फिर जीव सब कुछ भूल जाता है। केवल कथा सुनने से ही बिना कोई प्रयास के प्रभु प्राप्ति हो जाती है।

आपन्नः संसृतिं घोरां यन्नाम विवशो गृणन् ।
ततः सद्यो विमुच्येत यद्बिभेति स्वयं भयम् ॥

(भा. १/१/१४)

संसार में जो बड़े-बड़े साधनों से नहीं छूटता, वह श्रीकृष्ण कथा व कीर्तन से सहज में ही छूट जाता है। देखने और सुनने से चित्त

पर संस्कार अवश्य पड़ता है। अत: संकीर्तन में लगे रहो। सत्संग में लगे रहो। वहाँ का वातावरण तुम्हें जरुर प्रभु के चरणों तक पहुँचा देगा। अगर आप सत्संग में लगे रहोगे तो आपका मन शुद्ध व शान्त हो जायेगा। तब विकार का हेतु उपस्थित होने पर भी चित्त में विकार उत्पन्न नहीं होगा।

☀ चेतना ☀

चेतना का प्रयोग हम तब करते हैं, जब हम मन एकाग्र करके काम करते हैं। मन यदि इधर-उधर जा रहा है तो हम चेतना का प्रयोग नहीं कर रहे हैं। जब पूरे ध्यान से हम कुछ कर रहे हैं तब हम चेतना का उपयोग कर रहे हैं। चेतना का उपयोग मन करता है। मन संकल्प करता है कि इस चेतना को कहाँ ले जायँ और बुद्धि उसको निश्चय करा देती है परन्तु चेतना को मन बाहर लाता है, चाहे देखना है, चाहे सूँघना है या चाहे खाना है, जब ये मन चेतना को बाहर लाता है तभी विषयों का भोग होता है। अगर मन चेतना को बाहर न लाए तो भी क्रिया होगी। पर तब हमें कर्म फल नहीं भोगना पड़ेगा। कर्म सब हो रहे हैं जैसे कि देखना या सुनना लेकिन मन उसको ग्रहण नहीं कर रहा है।

हर प्राणी अपने मन की शरण में रहता है। आपका मन करेगा तो कथा सुनते रहोगे। अगर अभी आपका मन कहे कि कथा क्या चीज है? तो अभी उठकर चले जाओगे। जो लोग एकाग्र होकर सत्संग नहीं सुनते, उनकी बुद्धि का पक्ष दुर्बल रहता है। वे कभी भी सत्संग से हट सकते हैं परन्तु जो एकाग्र होकर, चेतना का प्रयोग करके सुनते हैं, वे सत्संग से कभी भी अलग नहीं होंगे। किसी की जरा-सी भी निन्दा या स्तुति हो गयी, इतने से ही इंसान इधर से उधर लुढ़क जाता है।

हमारे दुःखों का कारण जो इन्द्रियों का बाहरी व्यापार है, उसे बंद कर दो। ये बन्द होते ही भीतर की शक्ति, जिसे चेतना कहते हैं, अंदर देखने लग जायेगी। हमें केवल दिशा बदलनी है। जो बाहर के शत्रुओं को शत्रु समझता है, वह साधक नहीं है। अरे, शत्रु तो अंदर बैठे हैं। ये शत्रु अन्तर्मुख होने पर दिखाई पड़ेंगे। अभी तो हम बिल्कुल अंधे हैं। शत्रु हमारी चेतना का हरण कर रहे हैं और हमें ज्ञात भी नहीं है। चोर, चोरी कर रहे हैं और हम कुछ कर भी नहीं रहे। इन चोरों को भगाओ यदि वास्तव में तुम अपना हित चाहते हो। कबीर दास जी ने कहा है –

"तेरी गठरी में लागा चोर बटुहिया का सोवै"

☀ भक्ति देवी का श्रृंगार ☀

भक्ति देवी के श्रृंगार के लिए अहम् रूपी मैल को कथा श्रवण से दूर करो।

अहम् को भगवान् ने सब विषयों का मूल कहा है। ये गया सारी बीमारी गयी। लोभ, हर्ष, शोक, भय और क्रोध इन सबका मूल अभिमान है। यह अभिमान भक्ति का मैल है।

शोकहर्षभयक्रोधलोभमोहस्पृहादयः ।
अहङ्कारस्य दृश्यन्ते जन्म मृत्युश्च नात्मनः ॥

(भा. ११/२८/१५)

भक्ति देवी के श्रृंगार के लिए इस अहम् रूपी मैल को कथा श्रवण से दूर करो। कथा श्रवण से सबसे पहले भगवान् कान के द्वारा हृदय में घुसते हैं और फिर जीव की सारी आसक्तियों को नष्ट कर देते हैं।

श्रृण्वतः श्रद्धया नित्यं गृणतश्च स्वचेष्टितम् ।
कालेन नातिदीर्घेण भगवान् विशते हृदि ॥

(भा. २/८/४)

किन्तु सुनने से पहले एक चीज आवश्यक है वह है 'श्रद्धा'। महाभारत का एक बड़ा प्रसिद्ध वाक्य है **"अश्रद्धा परमं पापं श्रद्धा पाप प्रमोचिनी ।"** श्रद्धावान् का अपवित्र अन्न भी पवित्र हो जाता है और अश्रद्धावान् का पवित्र भी अपवित्र। जैसे कि शबरी के झूठे बेर पवित्र हो गये और दुर्योधन का पवित्र अन्न भी भगवान् ने ग्रहण नहीं किया।

भक्ति महारानी को 'मनन' रूपी जल से स्नान कराना चाहिये। जिस प्रकार हम नित्य स्नान करते हैं उसी प्रकार नित्य आराधना भी करनी चाहिए। गोकर्ण जी द्वारा सुनायी गयी कथा से सिर्फ धुंधुकारी का उद्धार ही क्यों हुआ और सबका क्यों नहीं? क्योंकि कथा सुनने के बाद धुंधुकारी कई बार चिन्तन करता था। मनन-चिन्तन का बड़ा महत्व है।

फिर स्नान के बाद 'दया' के तौलिये से पोंछिए। भगवान् बड़े-बड़े अनुष्ठान पूजादि से उतने जल्दी प्रसन्न नहीं होते जितने सब प्राणियों पर दया करने से।

नातिप्रसीदति तथोपचितोपचारैराराधितः सुरगणैर्हृदि बद्धकामैः ।
यत्सर्वभूतदययासदलभ्ययैको नानाजनेष्ववहितः सुहृदन्तरात्मा ॥

(भा. ३/९/१२)

हम हैं तो भगवान् के अंश **'ममैवांशो जीवलोके'** पर हमने अपने आपको शरीर मान लिया है, सारा जन्म बीत जाता है पर ये अभिमान नहीं छूटता।

व्यक्ति अपने अभिमान को समझ नहीं पाता। उसने हमसे ऐसी बात कही क्यों? बस इतने से ही उद्वेग पैदा हो जाता है। जब डॉक्टर लोग किसी को कहते हैं कि तुम्हें टेंशन की बीमारी हो गयी है। इसका कारण भी अभिमान ही है क्योंकि टेंशन क्यों होता है? जब अपना अहम् पूरा नहीं होता तो टेंशन हो जाता है। इस मैल को छोड़ना ही पड़ेगा।

जिसके अंदर दीनता नहीं उसकी भक्ति नंगी है। दीनता का कपड़ा पहना दिया तो भक्ति नंगी नहीं रहेगी। हमारे अंदर से अहम् का मैल जा रहा है इसका पता कैसे चलेगा? वह बताएगी 'दीनता'। अगर तुम्हारे अंदर दीनता आ रही है तो समझो अहम् जा रहा है।

वस्त्र तो पहना दिये अब उनमें सुगंध भी आनी चाहिए तो वह सुगंध है 'प्रण'।

"अब लौं नसानी अब न नसैहौं।" हजार बार गिर जाओ तो भी रोज-रोज प्रण करो। प्रण करना जारी रखो। अपने दोषों को सोचो, उनको देखो, रोज प्रतिज्ञा करो कि अब ऐसा नहीं करेंगे। दस बार गुस्सा आया तो दस बार प्रतिज्ञा करो कि अब नहीं करूँगा। यह हमारा स्वयं का अनुभव है, हम भी ऐसा करते हैं। भक्ति में प्रण आवश्यक है, दैन्य में प्रण आवश्यक है, दीनता भक्त के प्रति होनी चाहिए। झुकेंगे तो सिर्फ भक्त के आगे सेठ, कामी, क्रोधी के आगे नहीं, नहीं तो लुट जायेंगे।

मीराबाई के पास एक कामी आया और बोला – "मीरा जी! मुझे आपके पास श्रीकृष्ण ने भेजा है और कहा है कि मुझे आपके पास सोना है।" मीरा जी तो दक्ष थीं समझ गयीं यह भक्त-वक्त कुछ नहीं है। भक्त चतुर होता है, दक्ष होता है। मीरा जी बोलीं, "ठीक है।" उन्होंने सब साधुओं के बीच में बिस्तर लगा दिया और बोलीं, "आओ सो जाओ।" वह बोला, "मीरा जी! कृष्णजी ने अकेले में सोने को बोला है।" मीरा जी बोलीं, "ये तो फिर मेरे कन्हैया की आज्ञा नहीं है क्योंकि मेरा मोहन छल नहीं करता किसी से।" तो दैन्य भी कामी के आगे नहीं करना नहीं तो वह तुम्हें भोग लेगा।

भगवद्-सेवा और साधु-सेवा ये 'कर्णफूल' हैं। दोनों कान के कुण्डल होते हैं। एक पहनना भी अशुभ है। मान लो अगर कोई भगवान् की सेवा करता है भक्त की नहीं तो श्रृंगार अधूरा है। सेवा वाला कहीं भी जायेगा पूज्य बन जायेगा। गरुड़ पुराण में आता है

कि '***भगवान् की सेवा से भगवान् मिलेंगे कि नहीं इसमें संशय है लेकिन भक्त की सच्ची सेवा से अवश्य मिलते हैं।***'

राम ते अधिक राम कर दासा ॥

☀ श्रेष्ठ कौन? ☀

श्रेष्ठ कौन है? संयमी, सदाचारी, लोक-मर्यादा और स्वधर्म का पालन करने वाला या भक्त।

एक भक्त साधन कर रहा है और पतित हो गया, दुराचार में चला गया तो वह ऐसा भक्त है जो साधन करते हुए पतित हो गया, दूसरी तरफ स्वधर्म का पालन करने वाला सदाचारी है किन्तु उसमें भक्ति नहीं है। समाज किसको श्रेष्ठ कहेगा?

समाज में जितने भी चिन्तक हैं वो यही फैसला लेंगे कि स्वधर्म पालन वाला बड़ा है और जो गिर गया है वो गलत है। लेकिन जो भक्ति का रहस्य जानने वाले हैं वो इस फैसले को नहीं मानेंगे। वो तो जो भक्ति करते हुए गिर गया है उसीको श्रेष्ठ मानेंगे। एक वो जो भजन कर रहा था, कच्चा था, अपक्व था, गिर गया। दूसरा वो जो स्वधर्म पर चल रहा है लेकिन उसने भजन नहीं किया तो उसको क्या मिलेगा? कुछ नहीं। भागवत में नारद जी ने व्यास जी को उपदेश देते हुए कहा है कि भजन करने वाले का अगर भजन छूट भी जाय तो उसका अमंगल नहीं होता।

त्यक्त्वा स्वधर्मं चरणाम्बुजं हरे-
र्भजन्नपक्वोऽथ पतेत्ततो यदि ।
यत्र क्व वाभद्रमभूदमुष्य किं
को वार्थ आप्तोऽभजतां स्वधर्मतः ॥

(भा. १/५/१७)

अच्छी तरह धर्म का पालन किया, धर्म का स्तम्भ बन गया लेकिन भगवान् में रति नहीं हुई तो सब बेकार है। सूत जी ने शौनकादिक ऋषियों से कहा है कि धर्म का ठीक-ठीक अनुष्ठान करने पर भी यदि मनुष्य के हृदय में भगवान् की लीला-कथाओं के प्रति अनुराग का उदय न हुआ तो वह निरा श्रम-ही-श्रम है।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः ।
नोत्पादयेद्यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

(भा. १/२/८)

हम लोग भक्ति की शक्ति का अनुमान नहीं लगा सकते। स्वयं लक्ष्मी जी भी नहीं लगा पायीं। ब्रह्मा जी भी कहाँ समझे, इंद्र कहाँ समझे? रासपंचाध्यायी में गोपियाँ कहती हैं कि युगल सरकार की चरण-रज ब्रह्मा, शंकर व लक्ष्मी के पाप को भी दूर कर देती है।

धन्या अहो अमी आल्यो गोविन्दाङ्घ्र्यब्जरेणवः ।
यान् ब्रह्मेशो रमा देवी दधुर्मूर्ध्न्यघनुत्तये ॥

(भा. १०/३०/२९)

अब कोई पूछे कि लक्ष्मी जी ने क्या पाप किया, महादेव जी ने क्या पाप किया? इसका उत्तर टीकाकारों ने दिया है कि लक्ष्मी जी का पाप उनका ऐश्वर्य है। ऐश्वर्य दृष्टि जब तक रहती है तब तक माधुर्य को नहीं समझ सकते। बोले महादेव जी का पाप उनका पुरुषत्व है। हम जैसे लोग भक्ति की शक्ति को पहचानते नहीं हैं, इसलिए अपराधों में नाचा करते हैं। भगवान् ने गीता में कहा है कि यदि कोई दुराचारी (कामी) है और भजन कर रहा है तो भी उसको साधु ही मानना चाहिए।

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥

(गी. ९/३०)

बड़ा दुराचारी है लेकिन भजन कर रहा है तो उसको साधु मान लो। भगवान् ने तुरन्त उत्तर दे दिया कि वह बहुत जल्दी उठ जायेगा। मेरा भक्त नष्ट नहीं होता।

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥

(गी. ९/३१)

☀ गोपियाँ कौन थीं? ☀

श्रीमद्भागवत् में, गर्ग सहिंता में, हरिवंश पुराण में और विष्णु पुराण में वर्णन आता है कि अनगिनत गोपियाँ थीं। सबकी अलग-अलग श्रेणियाँ थीं। कुछ गोपियाँ श्रुतियाँ थीं जो अनादिकाल से तरस रही थीं गोपी बनने के लिये। तब उन्होंने श्वेत द्वीप में तप किया तो भगवान् का सहस्रपाद विराट् रूप प्रगट हुआ।

उसको देखकर के श्रुतियाँ बड़ी प्रसन्न हुईं और उन्होंने कहा कि महाराज ! हम आपका सर्वाधिक आनन्दमय रूप देखना चाहती हैं। ब्रह्म के बहुत से स्वरूप लक्षण उपनिषदों में कहे गये हैं और सबने अपने-अपने हिसाब से चुन लिये। अपने-अपने हिसाब का मतलब है कि जो निराकारवादी थे उन्होंने अपने हिसाब से चुना कि ब्रह्म आदित्य ब्रह्म हैं किन्तु जो वास्तविक लक्षण हैं वो है ब्रह्म की रसरूपता व आनन्दमय रूपता वह साकार में भी घटता है और निराकार में भी घटता है। अगर ब्रह्म में रस न हो, आनन्द न हो तो साकार भी किस काम का और निराकार भी किस काम का? अब आप सभी साकार बैठे हुए हैं पर रस शून्य हैं तो किस काम के? ऐसी साकारता किस काम की? निराकार हो या साकार हो वो रसरूप है तो ठीक है। इसको प्राप्त करके ही जीव आनन्दमय होता है। इसीलिए श्रुतियों ने कहा "महाराज ! आपके एश्वर्य रूप को तो हम अनादिकाल से देखती आयी हैं परन्तु आपकी जो रसरूपता है,

आनन्दरूपता है, वह हम देखना चाहती हैं।" भगवान् ने कहा कि अच्छा, हम तुमको रसरूपता दिखायेंगे।

भगवान् ने उन्हें गोलोक वृन्दावन दिखाया जहाँ भगवान् नित्य विहार, नित्य उत्सव, नित्य रास, नित्य नृत्य व संगीत गान करते हैं। भगवान् ने जब धाम दिखाया तो उसे देखकर उनके मन में काम भाव आ गया कि हम भी गोपियों की तरह ऐसे नाचतीं गातीं। तब उन्होंने वर माँगा कि प्रभु हमको भी ये अवसर मिलना चाहिये। उन्होंने कहा कि जब हम कृष्ण बनेंगे तो तुम्हारी इच्छा पूरी करेंगे। वे श्रुतियाँ जिनको अनादिकाल से रस नहीं मिला था उन्होंने ब्रज में यहाँ गोपों के घर में जन्म लिया।

रामावतार में भगवान् राम जब जनकपुर में विवाह करने गये थे तो वहाँ जनकपुर की स्त्रियाँ उन पर मोहित हुईं और बोलीं कि आप हमारे प्रीतम बनें। तो भगवान् बोले, "अभी तो हम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। हमारा एक ही विवाह हो सकता है। लेकिन द्वापर के अंत में हम तुम्हारी इच्छा पूरी करेंगे।" फिर ये स्त्रियाँ नौ नंदों के घर में आकर के प्रगट भईं।

फिर जब श्रीराम सीता जी के साथ जनकपुर से विदा हुए तो ये जोड़ी देख के मार्ग में जितनी स्त्रियाँ मोहित हुईं थीं उनको भी प्रभु ने मानसिक वरदान दिया, वे आकर नौ उपनंदों के घर में रहीं फिर सरयू के तट पर जब श्रीराम को देखा तो जितनी अयोध्या की नारियाँ थीं वे मोहित हो गयीं; पर करतीं क्या? उसी नगर के राम जी, उसी नगर की वो। एक ही गाँव के हुए तो बहन-भाई लगे लेकिन अब मोहित हो गयीं तो करें क्या? तो वहाँ उनकी ऐसी दशा हो गयी कि प्राण नहीं रहेगा। तब आकाशवाणी होती है कि द्वापर के अंत में तुम्हारा मनोरथ पूरा होगा तो उनका जन्म ब्रज में विमल कुण्ड के आस-पास हुआ।

उसके बाद भगवान् दण्डक वन में गये। वहाँ बहुत से मुनि मिले। उन्होंने सीताजी की तरह रति माँगी तो उनको आकर नन्द बाबा के गाँव में निवास मिला। पंचवटी में भीलों की स्त्रियाँ मोहित भईं थीं, भगवान् राम ने राजा बनने के बाद बहुत से यज्ञ किये थे। यज्ञ करने के लिए उन्होंने सीता जी की सोने की मूर्तियाँ बनवायीं, उनमें प्राण-प्रतिष्ठा डाली और वे सीताजी की तरह बाँयें भाग में बैठीं। हर बार यज्ञ में एक नई प्रतिमा बनती थी और उसमें प्राण प्रतिष्ठा होती थी। आखिर में जब बहुत से यज्ञ हो गये तो जितनी भी सीतायें थीं, सब सम्मलित होकर आयीं और उन्होंने रामजी से कहा कि हमें अंगीकार कीजिये। हमारी प्राण-प्रतिष्ठा हुई है और आपने हमारा पाणिग्रहण किया है। तो रामजी बोले कि हम आपको द्वापर के अंत में स्वीकार करेंगे। वे सब वृन्दावन में प्रगट भईं और श्रीजी की कृपा से कृष्ण रास में सम्मिलित हुईं।

उसके बाद वैकुण्ठ की, समुद्र में लक्ष्मी जी की सखियाँ, ये सब वृषभानु के घर में प्रगट भई थीं। मत्स्य अवतार में समुद्री कन्याएँ मोहित हुईं। नर-नारायण अवतार में अप्सरायें मोहित हुई थीं। वामन जब बने थे तो सुतल लोक की कन्याएँ मोहित हुई थीं। जिन-जिन को भी वरदान दिया था वे सब की सब गोपियाँ भईं।

☀ शांत मन ☀

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः॥

(गी. ६/७)

हर परिस्थितयों में समान रहें। शीत-उष्ण शरीर को होता है, सुख-दुःख मन में होता है, मान-अपमान अहम् में होता है। समता की पहली सीढ़ी है कि हर परिस्थिति में समान रहें। जैसे गर्मी में

ठंडी वस्तुओं कूलर-पंखा आदि के सेवन द्वारा शरीर में वायु संचित हो जाती है फिर ठंडी में वही संचित वायु दर्द पैदा कर देती है। हम यदि सर्दी-गर्मी में समन्वय बनाना सीख जायें तो शरीर सदा-सदा के लिये निरोग हो जाये। जैसे सर्दी-गर्मी सहने से शरीर निरोग बना रहेगा वैसे ही सुख-दुःख सहने से मन प्रबल बनेगा और मान-अपमान में सम रहने से देहबुद्धि नष्ट होकर भगवत्-स्मृति अखण्ड बनी रहेगी। जितात्मा-मन शान्त हुआ यानि मन जहाँ शांत हुआ नहीं कि बस परमात्मा मिल गये। गीता में भगवान् ने कहा है –

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥

(गी. ६/५)

मनुष्य को अपने मन से अपने आपको स्वयं उठाना चाहिए, दूसरा कोई नहीं उठाएगा। ये मन ही हमको गिराता है कोई दूसरा नहीं गिराता, मन ही अपना शत्रु है, मन ही मित्र है, बन्धु भी यही है और यही गुरु भी है। ये जो भगवान् ने मनोयोग की बात बतलायी है कि मनोयोग क्या है?

मन को जीतना मन का योग करना, ये सब योगों का मूल है और मनोयोग का फल है कि उसे भगवान् मिल गये। संसार में तीन स्थितियाँ सामने आती हैं। पहली तो ये कि तुमसे कुछ लोग प्रेम करेंगे, दूसरे ये कि कुछ लोग तुमसे द्वेष करेंगे, तीसरी ये कि कुछ लोग आपसे न द्वेष करेंगे और न प्रेम करेंगे। इन तीनों में समान रहना ही योग है।

साधना का मूल केन्द्र या मूल लक्ष्य मन होना चाहिए, नहीं तो साधन फल नहीं देगा। किसी व्यक्ति ने 'कोटर' स्थित सर्प को मारने के लिए पूरे पेड़ को काट दिया तो क्या उससे सर्प मर गया? नहीं, सर्प नहीं मरा। उसी तरह मन का नियन्त्रण यदि नहीं हुआ तो साधन व्यर्थ चला जायेगा। कोई भी साधन बिना मन के नहीं हो

सकता। ***किसी भी तरह अपने मन को प्रभु में लगा दो। मन प्रभु में लग गया तो प्रभु तुम्हारे सामने खड़े हो जायेंगे।*** शांत मन की पहिचान है कि फिर उसमें काम, क्रोधादि की लहरें आनी बन्द हो जायेंगी। जितात्मा कैसे बनें? इसके लिए इन छः चीजें – शीत-उष्ण, सुख-दुःख, मान-अपमान का मन पर असर मत पड़ने दो।

☀ शुचि सेवक ☀

शुचि सेवक सेवा को भगवान् से बड़ा मानता है।

इसको कहते हैं गुणातीत भक्ति। काम्य वस्तु सेवा है, भगवान् नहीं। सेवा में जो सुख है वह भगवान् में भी नहीं है। सेवा के अपराध के कारण नरक भी मिले तो कोई डर नहीं, सेवा मिलनी चाहिए। सेवा क्या है? प्रभु आज्ञा से लखन लाल, माता सीता को जंगल में छोड़ आए। भगवान् से बड़ी है सेवा।

जरउ सो संपति सदन सुखु सुहृद मातु पितु भाई ।
सनमुख होत जो राम पद करै न सहस सहाइ ॥

(रा.च.मा.अयो. १३१)

राम दर्शन के लिए पूरी अयोध्या चलने को तैयार है। भरतजी ने विचार किया कि सब सम्पत्ति प्रभु की है यदि इसकी रक्षा-सेवा को छोड़कर दर्शन को जाता हूँ तो महापापी होऊँगा। शुचि सेवकों को भरतजी ने बताया कि काम्य वस्तु भगवान् का दर्शन नहीं, सेवा है। गोपीजन भगवान् की प्रसन्नता के लिए द्वारिका नहीं गयीं। अपना प्यारा जैसे प्रसन्न हो वही ठीक है उसी में हमारी खुशी है।

आग्या सम न सुसाहिब सेवा ।
सो प्रसादु जन पावै देवा ॥

(रा.च.मा.अयो. ३०१)

भरत जी ने कहा कि हमारे मन में सोते-जागते एक ही इच्छा है कि हमारा प्रभु में निष्काम, निरपेक्ष स्वाभाविक प्रेम हो। अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष ये चारों जनम भर भी न मिलें तो कोई बात नहीं हमको निस्वार्थ सेवा चाहिए। सुचि सेवक समस्त सम्बन्धों, साधनों की आशा छोड़कर प्रभु की सेवा को ही साध्य मानते हैं। हनुमानजी सेवा के कारण ही हरि धाम नहीं गये। समस्त सम्बन्धों, आशाओं को छोड़ने के बाद ही सुचि सेवक बन पाओगे।

सब संसार कीचड़ है। इस संसार रूपी कीचड़ में भक्तजन पैदा होते हैं और सुगन्ध फैलाते हैं। भक्त कीचड़ में कमल बन जाते हैं। कमल गंदगी में भी सभी श्रेष्ठ गुण धारण करके खड़ा रहता है। कमल हर परिस्थिति में खिला रहता है। अगर कोई कमल को अपने हाथों से मसलकर उसे खत्म कर देता है तो भी कमल उन हाथों को अपनी खुश्बू ही प्रदान करके जाता है। भक्त का सबसे बड़ा गुण है उसकी उदारता। वह सदा प्रभु प्रेम में प्रसन्न रहता है।

☀ प्रभु प्राप्ति का उपाय ☀

वेदों, शास्त्रों में अध्यात्म मार्ग तीन तरह का बताया गया है –

कर्म मार्ग, ज्ञान मार्ग और भक्ति या उपासना। ब्रह्म की तीन स्वरूप शक्तियाँ हैं – 'सत्' ब्रह्म का स्वभाव कर्म वाला है; 'चित' ब्रह्म का स्वभाव ज्ञान वाला है; 'आनन्द' ब्रह्म का स्वभाव प्रेम वाला है। उसी ब्रह्म का अंश जीव है। अत: तीन प्रकार का स्वभाव जीव का भी है। भगवान् ने अर्जुन को बहुत से भक्तों के भेद बताये, भक्ति के भेद से भक्तों में भी भेद हो जाते हैं। भक्ति तो बहुत से लोग करते हैं पर सबका अलग-अलग भाव होता है।

गीता में भगवान् कहते हैं कि अर्जुन भक्ति तो बहुत लोग करते हैं पर उनमें फर्क है। चार तरह के भक्त होते हैं।

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥

(गी. ७/१६)

पहला 'आर्त भक्त' जो किसी कष्ट से या तकलीफ से भगवान् को याद करते हैं और चाहते हैं कि हमारा दुःख व कष्ट दूर हो जाये। उदाहरण देते हैं – जैसे द्रौपदी का या गज का; इन्होंने दुःख से निकलने के लिए भगवान् को पुकारा। दूसरे भक्त हैं 'जिज्ञासु' जो भगवान् को जानने के लिए भक्ति करते हैं। ये भगवान् को जानने के लिए निरन्तर सत्संग में रहते हैं। एकादश स्कंध में भगवान् ने उद्धव को ज्ञान दिया, इसलिए उद्धव जी जिज्ञासु भक्त कहे गये। तीसरे भक्त 'अर्थार्थी' जो धन-सम्पत्ति, राज्य आदि चाहते हैं। ध्रुव जी ने राज्य की इच्छा से भक्ति की थी। चौथे भक्त होते हैं 'ज्ञानी'। ये सबसे ऊँचे होते हैं।

भगवान् बोले कि इन चारों में ज्ञानी मुझसे जुड़ा है, सदा के लिए जुड़ा है। हर समय सदा के लिए मेरे साथ है, नित्य युक्त है,

ज्ञानी माने ज्ञान मार्गी नहीं, बल्कि जो मुझसे प्यार करता है, जो निष्काम प्रेमी है, वह ज्ञानी है। ज्ञान से मतलब नहीं प्रेम से मतलब है। मैं उसे इतना प्यारा लगता हूँ कि मेरे प्यार से उसकी सब इच्छाएँ जल जाती हैं। जैसे ब्रज की गोपीजन, उनका केवल एकमात्र प्रेम श्रीकृष्ण में सिमट गया।

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥

(गी. ४/११)

जीव जिस तरह से मुझे प्रेम करता है, मैं भी उसे वैसे ही प्यार करता हूँ। प्रभु सदा देते हैं पर उसे दिखाते नहीं हैं और ना ही किसी से कहते हैं।

नन्वब्रुवाणो दिशते समक्षं याचिष्णवे भूर्यपि भूरिभोजः ।
पर्जन्यवत्तत् स्वयमीक्षमाणो दाशार्हकाणामृषभः सखा मे ॥

(भा. १०/८१/३४)

जैसे किसान सो रहा होता है, बादल वर्षा करके चले जाते हैं। बादल किसान को जताकर नहीं देते; वैसे ही प्रभु जीव पर सदा ही कृपा करते रहते हैं परन्तु कभी भी जीव को जताते नहीं हैं। हर जीव प्रभु की इस कृपा को नहीं जान पाता।

प्रभु की कृपा का इंतजार मत करो अपितु उनकी कृपा को अनुभव करो। इंतजार तो अभाव वाली वस्तु का किया जाता है। प्रभु तो सतत् हमारे साथ हैं, सिर्फ हमें देखना सीखना है। प्रभु की कृपा सतत् हमारे साथ है सिर्फ हमें अनुभव करना सीखना है।

अहो बकी यं स्तनकालकूटं जिघांसयापाययदप्यसाध्वी ।
लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं कं वा दयालुं शरणं व्रजेम ॥

(भा. ३/२/२३)

प्रभु जैसा दयालु कौन हो सकता है? जिन्होंने हत्यारी पूतना को भी माता की गति प्रदान की। उनकी कृपा तो हर क्षण बरस रही है।

☀ कामना रहित कर्म ☀

भागवत में एक श्लोक आता है –

धर्मार्थमपि नेहेत यात्रार्थं वाधनो धनम् ।
अनीहानीहमानस्य महाहेरिव वृत्तिदा ॥

(भा. ७/१५/१५)

धर्म करने के लिए भी धन मत चाहो। फिर कैसे करें? तो कहते हैं यही सारी गीता का सार है। कामना युक्त कर्म मत करो, कामना रहित कर्म कैसे करें? भगवान् ने कहा कि काम हो गया तो प्रसन्नता नहीं और नहीं हुआ तो कोई खिन्नता नहीं। इससे क्या होगा? तुमको किसी भी प्राणी की ओर देखना नहीं पड़ेगा। भक्ति क्या है? भक्ति में प्रयास करने की जरूरत नहीं है। कोई बोले इतना जप करते हैं तो ये भक्ति नहीं है, निर्जला किया, ये भक्ति नहीं है, दो करोड़ रूपये का यज्ञ करवाया ये भी भक्ति नहीं है। भगवान् कह रहे हैं कि हाँ ये भक्ति नहीं, तुमने सिर्फ पाखण्ड किया।

एक दिन की बात है कि रूप गोस्वामीजी बैठे थे और सनातन गोस्वामी जी उनसे मिलने आये। वे बहुत दिनों के बाद मिले थे। सनातन जी उनके बड़े भाई थे। रूपजी ने देखा कि सनातनजी बड़े दुबले हो गये हैं तो रूपजी के मन में एक इच्छा आई, बड़े भैया को कोई बढ़िया पदार्थ खिलाते, महात्मा हैं व बड़े भाई भी हैं। अब मन में विचार कर रहे हैं कि खीर होती तो खिलाते पर खीर कहाँ से आवे? खीर के लिए दूध चाहिये, चावल चाहिए, मीठा चाहिए, वो अपना भजन करने लग गये।

इतने में श्री राधिका रानी जो बड़ी करुणामयी हैं, स्वयं एक बालिका का रूप बनाकर रूपजी के पास गयीं, रूपजी भजन कर रहे थे, उनके नेत्र बंद थे। श्री राधारानी का ध्यान कर रहे थे। लड़की बोली कि बाबा! ओ रूप बाबा! उन्होंने नेत्र नहीं खोले,

केवल बोले कि कौन है? वह बालिका बोली, “रूप बाबा, माँ ने दूध भेजो है।” बोले, “अच्छा लाली।” फिर भी ध्यान नहीं गया उनका। श्रीजी मुस्करा गयीं और फिर बोलीं ”बाबा हमारी माँ ने दूध ही नहीं भेजो है चावल भी भेजे हैं, ये देख खीर बना ले। फिर भी समझ न पाये।”

फिर बालिका बोली कि “अरे बाबा! मैया ने यों कह्यो कि अगर बाबा कू बनावौ न आवे तो खुद बना दियो।” बोले, “अच्छा लाली।” तो श्रीजी ने वहाँ दूध चावल से खीर बना दी और वो अपना भजन करते रहे। जब खीर बन गयी तो बोलीं, “बाबा खीर बन गयी, अब मैं जा रही हूँ, इसे सम्भाल ले।” रूपजी बोले, “अच्छा रख दे” इसके बाद श्रीजी चली गयीं। थोड़ी देर में सनातन जी अपना नियम करके आये तो रूप जी को याद आया, अरे! एक लड़की खीर रख गयी है तो बोले भैया थोड़ा प्रसाद पा लो। सनातनजी बोले कि ये खीर कहाँ से आई क्योंकि तुम तो जंगल में रहते हो। तो उन्होंने कहा कि एक लड़की आई और खीर बना गयी। सनातनजी ने जैसे ही एक ग्रास मुँह में डाला, वैसे ही उन्हें प्रेम की मूर्छा आ गई। प्रेम की दशा, सारे शरीर में छा गई। रूपजी बोले भाईया! ये क्या है? बोले “जरा तुम भी खाओ।” जैसे ही थोड़ा सा उन्होंने मुँह में रखा तो उनकी भी वही दशा हो गई, प्रेम की मूर्छा आ गई।

रूप जी बोले भैया समझ गये, आज आप जब आये थे तो हमने विचार किया कि कोई अच्छा पदार्थ हो तो आपको पवावें । तो हमारे मन में इच्छा आई कि खीर पवाते तो अच्छा होता। ये हम सोच रहे थे और भजन कर रहे थे तो इतने में एक बालिका आई और खीर बनाकर चली गई और हमने ध्यान नहीं दिया। इतना सुनते ही सनातनजी रोने लग गये और बोले रूप! तुमने बड़ा कष्ट दिया राधारानी को । अरे! वो श्री राधिका ही थीं। तुमने हमारे

तुच्छ शरीर के लिए खीर की कामना क्यों की? ये सुनकर रूप गोस्वामीजी भी रोने लग गये।

तो भक्ति क्या है? ये कामना रहित कर्म क्या है? सिर्फ स्वभाव की सरलता। मन में कुटिलता नहीं कि कैसे पैसा खींचे? चाहे आप मर रहे हो फिर भी संतुष्ट रहो। कोई बीमारी है तब भी संतुष्ट रहो। भूखे हो तब भी संतुष्ट हो, इसको कहते हैं भक्ति। हम सोचें ये हो जाय या वो आ जाय, ये भक्ति नहीं। धर्म के लिए भी इच्छा मत करो। किसी की ओर देखा तो भक्ति खत्म। ***जो बुराई अच्छाई का रूप बनाकर आती है, उसे हम पहिचान नहीं सकते।*** पूतना ब्रज में ऐसा रूप बनाकर आई थी जैसे खुद लक्ष्मी जी ही आयीं हों। उसे कोई पहिचान नहीं पाया। यशोदा जी ने उसके स्वरूप पर मोहित होकर, स्वयं ही बच्चा उसे दे दिया। धन तो सबसे अधिक अच्छाई का स्वरूप लेकर उपस्थित होता है लेकिन विशुद्ध धर्म जहाँ है वहाँ धनादि का सेवन त्याग कर केवल कृष्ण नाम, कृष्ण लीला का गान करते रहो। धर्म के लिए भी धन की इच्छा मत करो। सभी कार्य स्वतः ही हो जायेंगे। इच्छा या कामना ही राक्षसी है, ये जानता हुआ भक्त भगवान् या भगवान् की भक्ति के अलावा और कोई भी कामना नहीं करता।

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् ।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ॥

(गी. २/७०)

नदियाँ कितना ही तेज प्रवाह लेकर समुद्र के पास जाती हैं परन्तु उसको नहीं हिला पातीं। समुद्र की प्रतिष्ठा व मर्यादा अचल है। उसी तरह भक्त के हृदय में यदि कामनायें प्रवेश करती हैं तो जैसे नदियाँ समुद्र में पहुँचकर नष्ट हो जाती हैं, इसी प्रकार सब कामनायें भक्त के पास आकर नष्ट हो जाती हैं।

☀ शिशु भाव ☀

शिशु-भाव से भाव का सम्बन्ध है, क्रिया का नहीं।

शिशु-भाव किसी भी उम्र में सम्भव है। जैसे शिशु को किसी भी प्रकार की चिन्ता नहीं होती कि आज क्या खायेंगे? क्या पहनेंगे? उसे सर्दी-गर्मी, धूप आदि किसी का कुछ न तो पता होता है और न ही कोई परवाह होती है। ऐसा शिशु-भाव आने पर प्रभु खुद उस भक्त का पोषण करते हैं परन्तु हम लोगों को उस बच्चे जैसा भरोसा ही नहीं है। हमें हमारी ही चतुरता ने प्रभु से अलग कर दिया है। शिशु-भाव वाले भक्त के लिए प्रभु स्वयं सब करते हैं।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

(गी. ९/२२)

हम कुछ न करें, कुछ न करने का नाम शरणागति है। शिशु जब तक कुछ नहीं करता तब तक माँ सब कुछ करती है लेकिन जब बच्चा कुछ-कुछ करने लगता है तो माँ भी कुछ-कुछ करना कम कर देती है। जब तक कर्तृत्वाभिमान है तब तक कर्मबंधन है और जहाँ कर्तापन समाप्त हुआ, हम अकर्ता सिद्ध हो गये। शरणागति एवं दैन्य आ जाने पर कर्तापन चला जाता है और माया से मुक्ति और परमानन्दरुप परम शांति की प्राप्ति हो जाती है। सर्व समर्पण से अकारण कृपा प्राप्त हो जाती है।

भगवान् दिव्य हैं और दिव्यता ही देते हैं। द्रोपदी ने जब तक अपने पतियों, द्रोण, कृपाचार्य, भीष्म आदि की ओर देखा तब तक शरणागत नहीं हुई फिर जब दाँत से साड़ी नीचे गिरी, तब पूर्ण शरणागत हुई यानी सब कुछ सोचना बंद कर दिया, तब सब काम बन गया।

कोटि-कोटि साधन करके हाय मैं तो हार गई ।
हार में सार छिपा था मुझे मालूम न था ॥

☀ प्रेमलक्षणा भक्ति ☀

सबसे बड़ी शक्ति प्रेम है।

प्रेम से भगवान् भी वश में हो जाते हैं। थोड़ा-सा भी कठोर बोल दिये तो दोष लगता है। इंसान इन चारों चीजों पर ध्यान नहीं देता है तो उसका बहुत नुकसान हो जाता है और उसका भजन करना व्यर्थ हो जाता है। ये चार बातें हैं – अनादर करना, उपेक्षा करना, द्वेष करना और अपमान करना। इसका प्रमाण इस प्रकार है। भगवान् कपिलदेव ने भागवत में बताया है –

अहं सर्वेषु भूतेषु भूतात्मावस्थितः सदा ।
तमवज्ञाय मां मर्त्यः कुरुतेऽर्चाविडम्बनम् ॥
यो मां सर्वेषु भूतेषु सन्तमात्मानमीश्वरम् ।
हित्वार्चां भजते मौढ्याद्भस्मन्येव जुहोति सः ॥
द्विषतः परकाये मां मानिनो भिन्नदर्शिनः ।
भूतेषु बद्धवैरस्य न मनः शान्तिमृच्छति ॥
अहमुच्चावचैर्द्रव्यैः क्रिययोत्पन्नयानघे ।
नैव तुष्येऽर्चितोऽर्चायां भूतग्रामावमानिनः ॥

(भा. ३/२९/२१, २२, २३, २४)

ये चारों दोष भजन का सर्वनाश कर देते हैं। मैं ही सभी प्राणियों में उनके आत्मा के रूप में रहता हूँ। जो किसी प्राणी का अपमान या अनादर करता है वह मुझसे द्वेष करता है क्योंकि हर एक प्राणी में मैं ही आत्मा रूप से बैठा हूँ। ये चारों दोष जीव के भजन का सर्वनाश कर देते हैं।

अनादर का उदाहरण – सनकादिक आदर के पात्र थे। वे जब वैकुण्ठ में गये तो भगवान् के पार्षद जय-विजय ने उनका आदर

नहीं किया। इससे वे दोनों आसुरी भाव को प्राप्त होकर राक्षस बन गये। अनादर करने के कारण सारी पूजा बेकार चली गयी।

उपेक्षा का उदाहरण – प्रजापतियों ने बहुत बड़ा यज्ञ किया था। दक्ष प्रजापति जब यज्ञ में आये तो सभी ने खड़े होकर उनका स्वागत किया परन्तु ब्रह्माजी और महादेवजी ने ऐसा नहीं किया; यद्यपि महादेवजी ने ऐसा जान-बूझकर नहीं किया था फिर भी दक्ष प्रजापति ने महादेवजी का बहुत अपमान किया परन्तु महादेवजी शान्त रहे। दक्ष प्रजापति ने महादेवजी को श्राप भी दिया कि महादेव जी को कभी यज्ञ में भाग ना मिले।

बहुत समय निकल गया और ब्रह्माजी ने दक्ष प्रजापति को समस्त प्रजापतियों का अधिपति बना दिया। दक्ष प्रजापति ने बृहस्पतिसव नाम का महायज्ञ आरम्भ किया। सृष्टि में बड़े यज्ञों में इसकी गिनती होती है। महादेवजी को इसका निमन्त्रण नहीं दिया। सतीजी को जब पता चला तो उन्हें अपने पिता के यज्ञ देखने कि उत्सुकता हुई। महादेव जी बोले कि तुम्हें वहाँ नहीं जाना चाहिए क्योंकि पिता द्वेष के कारण सम्मान नहीं देंगे और तुम्हारे वहाँ जाने से अनिष्ट होगा। सतीजी नहीं मानी, उनके यज्ञ में जाने से यज्ञ नष्ट हो गया। बहुत विनाश हुआ और दक्ष का सिर तक कट गया। महादेवजी को नहीं बुलाकर उनकी उपेक्षा की गयी थी। उपेक्षा के कारण ससुर और दामाद (दक्ष प्रजापति और महादेव जी) दोनों को कष्ट भोगना पड़ा।

द्वेष का उदाहरण – दुर्योधन ने पाण्डवों को वनवास में भेजने के बाद विश्वजीत नाम का बड़ा यज्ञ किया था। उसका उल्टा फल हुआ। दुर्योधन और कर्ण सैनिकों के साथ वन में पाण्डवों को चिढ़ाने गये तो गन्धर्वों ने उनको बंदी बना लिया। युधिष्ठिर के कहने से अर्जुन ने उन्हें बचाया। विश्वजीत यज्ञ करने से भी द्वेष के कारण दुर्योधन और कर्ण को कष्ट भोगना पड़ा।

अपमान का उदाहरण – दुर्वासा ने अम्बरीष का अपमान किया था; यद्यपि दुर्वासा शिवजी के अवतार हैं फिर भी वह एक साल तक चक्र की अग्नि में जलते रहे। अनजाने में भी ये चारों दोष व्यवहार में आ गये तो भी नुकसान होता है। ***लगनशील प्राणी को प्रभु से मिलने से कोई नहीं रोक सकता। प्रेमी को रोकने की शक्ति तो त्रिलोकीभर में किसी में भी नहीं।*** 'जब प्राण भये मनमोहन के फिर कभी किसी की चलती नहीं।' गोपियों को कोई रोक न सका। क्या होगा? कैसे होगा? ये सब शंकायें प्रेमी को नहीं होती। जो रुक गया वह प्रेमी नहीं है। प्रेमी तो बाण की तरह प्रभु की ओर चलता चला जाता है। जो क्षण निकल जाता है वह फिर नहीं आता। हम सतत् मृत्यु को प्राप्त होते जा रहे हैं, अतः प्रभु की ओर दौड़ो।

हमसे लोग प्रश्न पूछते रहते हैं कि महाराज! हमारे कष्ट क्यों नहीं मिट रहे? कष्ट कैसे मिटें? हम भक्ति तो करते नहीं। एक आदमी ने हमसे ये प्रश्न किया तो हमने उससे कहा कि भागवत पढ़ा करो उससे तुम्हारे कष्ट मिटेंगे। उसने हमारी बात उसी समय मान ली और जाकर उसी समय भागवत खरीद लाया और पढ़ना शुरु कर दिया। कुछ दिन के बाद हमारे पास फिर आया तो हमने पूछा कि भागवत कैसी चल रही है? उसने कहा कि महाराज! भागवत हमें रास नहीं आयी तो हमने पढ़ना बंद कर दिया। जब हमने पूछा कि क्यों? तो उसने कहा कि हमने सिर्फ पाँच दिन ही पढ़ा था और पिता जी चल बसे। पिताजी को तो जाना ही था पर उसने पहले भागवत को पढ़ना बंद कर दिया और ऊपर से भगवान् को कसूरवार बना दिया, तीसरा हम पर भी कलंक लगा दिया क्योंकि हमने पढ़ने को बताया था। अगर हमारे कष्ट दूर नहीं हो रहे तो कमी हममें ही है, प्रभु में नहीं। जब ये चारों दोष व्यवहार से हट जाते हैं तब जीव के हृदय में बिना प्रयत्न के प्रेमलक्षणा भक्ति आ

जाती है और वह सर्वदा प्रेममय व्यवहार करता है। वह निर्मल मूर्ति हो जाता है और उसे यमराज के दूतों को नहीं देखना पड़ता।

☀ अभय ☀

मनुष्य डरता क्यों है मृत्यु से? डरता वह है जिसने जीवन भर पाप किया हो। मनुष्य पाप के कारण मौत से डरता है लेकिन जो कृत्यकृत्य हैं वे मौत की प्रतीक्षा करते हैं कि कब आ जाये? यह रसिकों ने लिखा है –

"कब मरिहौं कब देखिहौं नैनन नित्य विहार ।"

मृत्यु से कभी भी सावधानी नहीं रखनी चाहिए। विवेकानंद ने कहा था –

Embrace the death and not only to tolerate it.

(मृत्यु का आलिंगन करो, उसे भगवान् का रूप समझो।)

भगवान् ने गीता में कहा है कि मैं ही तो मृत्यु हूँ –

मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम् ।
कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा ॥

(गी. १०/३४)

मनुष्य डरता क्यों है मृत्यु से? क्योंकि मृत्यु का नाम है सर्वहर, वह तुम्हारे बहू, बेटा, बाप, धन सब छीन लेगी लेकिन वह मृत्यु तो भगवान् हैं।

इसीलिए कभी नहीं डरना चाहिए इस बात को याद रखो कि भगवान् ही मृत्यु हैं। अगर डर आ गया तो सारा साधन नष्ट हो गया। भय रहेगा तो अविनाशी पद को प्राप्त नहीं कर सकोगे। भागवत में कहा गया है –

वीर्याणि तस्याखिलदेहभाजामन्तर्बहिः पूरुषकालरूपैः ।
प्रयच्छतो मृत्युमुतामृतं च मायामनुष्यस्य वदस्व विद्वन् ॥

(भा. १०/१/७)

भगवान् के दो रूप हैं, एक भीतर का और एक बाहर का। अन्तर्मुख लोगों को वह अमृतत्व देते हैं और बहिर्मुख लोगों को मृत्यु देते हैं। रामचरितमानस में भी रामजी ने प्रजाजनों को उपदेश देते हुए कहा –

कालरूप तिन्ह कहँ मैं भ्राता ।
सुभ अरु असुभ कर्म फल दाता ॥

(रा.च.मा.उत्तर. ४१)

किसी ग्रन्थ में देख लो, सब जगह यही मिलेगा। श्रीमद्भागवत का यही सार है –

त्वं तु राजन् मरिष्येति पशुबुद्धिमिमां जहि ।
न जातः प्रागभूतोऽद्य देहवत्त्वं न नङ्क्ष्यसि ॥

(भा. १२/५/२)

शुकदेव जी ने परीक्षित से कहा है कि न तुम पहले पैदा हुए थे, न नष्ट होगे और मौत तुमको नहीं मार सकेगी; तुम मौत के भी मौत हो। जितना पुलिस से डरोगे उतना ही वो पीटती है। तुम डरते हो इसीलिए मौत डराती है। तुम ऐसे बनो कि मौत तुम्हारे सामने से डर के मारे भाग जाये। भगवद्भक्त डरता नहीं है। ये बात याद रखोगे तो तुम कभी मरते समय नहीं डरोगे, ये ऐसी वाणियाँ हैं जिससे तुम्हारा भय खत्म हो जायेगा और तुम्हें अभय बना देगा। मौत एक अजगर है और हर आदमी के पीछे लगा हुआ है। आकाश में बाज चिड़िया को खा जाता है, पानी में मछली, मछली को खाती है, जमीन पर हिंसक पशु या मनुष्य, मनुष्य को मार डालते हैं। हर समय मौत हमारा पीछा कर रही है और हर आदमी मौत के डर से भाग रहा है। हम रोटी क्यों खाते हैं? क्योंकि मर न जायें। मकान क्यों बनाते हैं? सुरक्षा के लिए। कपड़े क्यों पहनते हैं? बीमार न हो जाएँ, मर न जाएँ। हर समय हर काम हम मौत से डरकर कर रहे हैं।

जिस योनि में जाते हैं यही करते हैं। चूहा बिल बनाता है सर्प से बचने के लिए, बिल्ली कुत्ते से बचने के लिए भागती है। संसार में अनन्त जीव हैं, सब भाग रहे हैं, देवता असुरों के डर से भाग रहे हैं, कहीं भी निर्भयता नहीं मिली। भगवान् के चरणों का आश्रय मिलने से और भगवान् में विश्वास होने से जीव जो भाग रहा है वो आराम से बैठ जाता है और इसको देख करके काल भाग जाता है।

सिंह की तरह गर्जना करके रहा करो। अभय पद की ओर चलो। गर्जना तभी आती है जब हृदय से भय चला जायेगा। इन सब प्रमाणों को याद रखो, इनका चिंतन करो फिर तुम हजारों का भय दूर कर दोगे। जिसके अंदर डर है वह भक्त नहीं हो सकता। भगवान् ने कहा है –

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥

(गी. १६/१)

पहली सम्पत्ति है अभय; जिसमें अभय नहीं उसे कभी भक्ति नहीं मिलेगी। भागवत में नव योगेश्वरों से नौ प्रश्न किये गये हैं। पहला प्रश्न है कि सारा संसार मृत्यु के भय से ग्रसित है तो अभय पद कैसे मिलेगा, आत्यंतिक क्षेम कैसे मिलेगा?

संसार में सबसे जरूरी प्रश्न है 'क्षेम', मतलब निर्भयता। हर जीव को ये प्रश्न करना चाहिए। तब उन्होंने कहा –

मन्येऽकुतश्चिद्भयमच्युतस्य पादाम्बुजोपासनमत्र नित्यम् ।
उद्विग्नबुद्धेरसदात्मभावाद् विश्वात्मना यत्र निवर्तते भीः ॥

(भा. ११/२/३३)

ये बड़ा सरल है, केवल भगवान् की उपासना, आराधना करो। मन में आराधना होनी चाहिए। आराधना निर्भय पद देने वाली है। ***जो नित्य भगवान् के चरणों की आराधना करता है उससे डर के मारे काल भागेगा।*** ये महापुरुषों का सन्देश है। हर पल आराधना में रहो। आँख बंद करके इस रास्ते पर चलते रहो। तुम्हारा न कभी

पतन होगा, न गिरोगे। बस उपासना, आराधना होनी चाहिए यही एकमात्र अभय का पद है।

☀ प्रभु प्रेम में नाचना ☀

जो लोग प्रभु के लिए नाचा करते हैं, ये उन पर प्रभु की बहुत बड़ी कृपा है।

नृत्य सबसे बड़ी उपासना है। नृत्य को केवल एक कला नहीं समझना चाहिए। नृत्य भगवत्प्राप्ति का एक माध्यम है। मीराजी के साथ गिरिधर गोपाल नाचते थे तो उसके लिए उन्होंने कोई जप, तप थोड़े ही किया था; तो क्या किया था?

उन्होंने स्वयं बताया है –

पग घुँघरू बाँध मीरा नाची रे ।
लोग कहें मीरा भई बावरी, सास कहे कुल नासी ॥

रात-रात भर मीराजी जंगलों में घूमतीं, नाचतीं थी। लोग उन्हें पागल कहते, बावरी कहते, कुलनाशिनी कहते थे –

मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, आन मिलो अविनासी रे ।

उनको अविनाशी (गिरिधर गोपाल) की प्राप्ति हो गयी। ये एक बड़ी ही महत्त्वपूर्ण साधना है। ये एक बहुत बड़ा रस योग है। जो लोग प्रभु के लिए नाचते हैं उनका रोम-रोम भगवान् को अर्पित होता है। उनका अंग-अंग प्रभु प्रेम में डूबा होता है पर नाच वो ही सकता है जिसको श्रीजी कृपा करके नचाती हैं।

एक एटम बम्ब का गोला बता रहे हैं। पद्मपुराण में लिखा है –

पद्भ्यां भूमेर्दिशोदृग्भ्यां दोर्भ्यां चामङ्गलमं दिवः ।
बहुधोत्सार्यते राजन् कृष्ण भक्तस्य नृत्यतः ॥

जो भगवान् के सामने कीर्तन में नृत्य करता है, उसके सब पाप जल जाते हैं। नाचते-नाचते भक्त की दृष्टि जिधर भी जाती है उन

सब दिशाओं के पाप जल जाते हैं। नाचते-नाचते कीर्तन में भक्त जब अपनी भुजाओं को ऊपर कर लेता है तो आकाश, स्वर्गादि में जो पाप हो रहे हैं वे सब जल जाते हैं। श्री व्यास जी कहते हैं –

नैन न मूँदे ध्यान को, अंग न कीन्हे न्यास ।
नाच-गाय रासहि मिले, करि वृन्दावन वास ॥

हमने कभी भी आंख बंद करके ध्यान नहीं लगाया, न ही अंगन्यास-करन्यास ही किया। बस नाच-नाच के, गा-गा के प्रभु की अद्भुत व दिव्य रासलीला में प्रवेश प्राप्त कर लिया। मीरा जी ने भी कहा –

नाचत घुँघरू बाँध के, गावत लै करताल ।
देखत ही हरि सों मिली, तृन सम तजि संसार ॥

नाच-नाच के ही मैंने उन्हें प्राप्त कर लिया लेकिन नाचना कैसे चाहिए? जैसे प्रह्लाद जी नाचते थे, प्रभु प्रेम में लज्जा छोड़कर के जोर-जोर से नाचते थे। कभी-कभी अपने-आप को ही भूल जाते थे।

नदति क्वचिदुत्कण्ठो विलज्जो नृत्यति क्वचित् ।
क्वचित्तद्भावनायुक्तस्तन्मयोऽनुचकार ह ॥

(भा. ७/४/४०)

भगवान् ने स्वयं कहा है भक्त कौन है? भक्त की क्रियायें कैसी होती हैं? तो कहते हैं जिसकी वाणी प्रेम से गद्गद् हो रही है, चित्त पिघल गया है, एक क्षण के लिए भी जो रोना बंद नहीं करता, कभी हँसने लगता है, कभी गाने लगता है और जो मेरे प्रेम में दिन-रात नाचता है।

श्रीमद्भागवत में कविजी ने कहा है – ***'प्रभु प्रेम में भगवान् को रिझाने के लिए लोकबाह्य होकर नृत्य करना ही सबसे बड़ी उपासना है।'***

एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः ।
हसत्यथो रोदिति रौति गायत्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः ॥

(भा. ११/२/४०)

सैकड़ों जगह नृत्य की महिमा बतायी है; नृत्य एक ऐसी उपासना है जो कि भक्त की पहचान है। नाचते तो हम भी हैं पर हम विषय-भोगों के लिए नाचते हैं। सूरदास जी ने कहा है –

अब मैं नाच्यौ बहुत गुपाल ! ॥

अब हमें समझना है कि भगवान् के आगे नृत्य करने से क्या लाभ होता है? पद्मपुराण में कहा गया है कि नृत्य एक यज्ञ है इससे बड़ा कोई यज्ञ नहीं है। स्वयं चैतन्य महाप्रभुजी अलात चक्र (आग के गोले) की तरह नाचते थे। उनको भी लोगों ने क्या-क्या नहीं कहा। कोई कहता ये तो वाममार्गी हैं, कोई कहता ये चंडी के उपासक हैं। महाप्रभु जी कहते थे –

यो हि नृत्यति प्रहृष्टात्मा भावैर्बहु सुभक्तितः ।
स निर्दहति पापानि कल्पान्तर शतेश्वपि ॥

भगवान् के सामने जो नाचता है उसके सैंकड़ों कल्पों के पाप नष्ट हो जाते हैं, उसे प्रायश्चित करने की भी कोई आवश्यकता नहीं है। बस भगवान् के सामने ठुमका लगा लो तो एक कल्प माने ४ अरब २९ करोड़ ४० लाख ८० हजार वर्ष का ब्रह्माजी का दिन और इतनी ही बड़ी रात होती है; यानी ८ अरब ६० करोड़ का एक कल्प होता है और ऐसे ही सैंकड़ों कल्पों के पाप भगवान् के सामने नाचने से नष्ट हो जाते हैं।

☀ गह्वर वन ☀

ऐसे गहवर वन की रज को नमस्कार है, जहाँ वृषभानुलाड़िली खेलती हैं।

स्वामी हरिदास जी कहते हैं –

प्यारी जू आगे चलि आगे चलि,
गह्वर वन भीतर जहाँ बोलै कोइल री ॥
अति ही विचित्र फूल पत्रनि की सेज्या रची,
रुचिर सँवारी तहाँ तूब सोइल री ॥

बिहारी जी कहते हैं कि हे किशोरी जू आप गहवर वन में चलिए। क्यों चलिए? क्योंकि वहाँ कोयल कूकती है और अति विचित्र फूल, फल, पत्ते और लतायें हैं। एक बार श्रीराधाजी मान करके बैठी थीं। जब बहुत मान करने पर भी उनका मान नहीं छूटा तो श्रीश्यामसुंदर ने एक कौतुक रचा। प्रियाजी के सामने ही कुछ दूरी पर मयूर वेष बनाकर नृत्य करने लगे। नृत्य करते-करते वो कभी राधारानी के पास चले जाते और कभी दूर से राधारानी को रिझाते।

पर्वत पै कोंहक भयो भारी, गह्वर वन बोलै मोर ॥

ये वह गहवर वन है, जहाँ पहुँचकर श्रीकृष्ण अपने को कृतार्थ मानने लग गये। आज से पहले श्रीकृष्ण ने अपने को कृतार्थ नहीं

माना था जबकि बहुत अवतार हुए, बहुत सी लीलाएँ हुईं, बहुत से उनके भक्त हुए लेकिन गहवर वन बरसाना पहुँचकर अपने को कृतार्थ मानते हैं। कौन अपने को कृतार्थ मानते हैं? वे कृष्ण जो योगियों को, योगियों के देव इन्द्र आदि को और शिव आदि को भी दुर्लभ हैं। कौन से कृष्ण? वही मधुसूदन। 'मधुसूदन' मतलब मधु राक्षस को मारने वाला नहीं; मधु मतलब जिनका प्रेमरस एकमात्र आहार है। ये जो प्रेमी श्रीकृष्ण हैं, जो संसार में अनन्त प्रेम बाँटते हैं, जो मधु का आस्वादन कराते हैं वे ही जाकर के गहवर वन बरसाने में कृतार्थ हो जाते हैं।

एक और कुछ दिनों पहले की घटना है कि एक भक्त श्री किशोरी अली जी अपनी स्त्री किशोरी की याद में किशोरी-किशोरी कहते गहवर वन में व्याकुल होकर घूम रहे थे, इधर से प्रियाजी अपनी सखियों सहित आ रहीं थीं। उनकी आवाज सुन वे बोलीं कि यह कौन है? जो मेरा नाम लेकर इतनी व्याकुलता से मुझे पुकार रहा है? सखियाँ बोलीं कि किशोरी जी ! ये तो अपनी स्त्री को पुकार रहा है। ये आपको नहीं बुला रहा। अकारण करुणा की राशि श्रीराधा ने कहा कि हे सखी ! इस गहवर वन में यह व्यक्ति मेरा ही नाम ले-ले पुकार रहा है, इसे मेरे पास लाओ। श्रीराधारानी ने अकारण ही उन पर दया कर दी। गहवर वन के बारे में अब क्या कहा जाये? गहवर वन के बारे में कहा गया है –

यत्र गहवरकं नाम वनं द्वन्द्वमनोहरम् ।
नित्यकेलि विलासेन निर्मितं राधया स्वयम् ॥

गहवर वन कोई बड़ा वन नहीं है, बहुत ही छोटा सा वन है पर ये है कैसा? ये युगल सरकार राधा-माधव के मन को हरण कर लेता है। इसमें इतनी आकर्षण शक्ति क्यों है? और भी तो वन हैं वृन्दावन में। क्योंकि स्वयं श्री राधारानी ने अपने हाथों से इस वन को बनाया है। सब लता-पताओं को अपने हाथों से लगाया है और इसे

विलास रस से सींचा है। ये गहवर वन बहुत ही महत्वपूर्ण वन है क्योंकि ऐसा सौभाग्य किसी भी और ब्रज के वन को नहीं मिला जो गहवर वन को मिला। श्रीराधारानी ने इसे अपने हाथों से सजाया है और इसमें दोनों नित्य लीला करते हैं।

☀ मान मंदिर ☀

मान मंदिर में श्री मान बिहारी लाल जी के दर्शन हैं।

मान मंदिर में मान लीला हुई है। यहाँ रूठी हुई राधारानी को श्यामसुन्दर ने मनाया था। मनाने के बहुत से उपाय किये। कभी उनके चरणों में मस्तक रखते हैं, कभी उनको पंखा करते हैं, कभी दर्पण दिखाते हैं और कभी विनती करते हैं पर जब राधारानी नहीं मानती हैं तब श्यामसुन्दर सखियों का सहारा लेते हैं।

इन्हीं लीलाओं के कारण इसका नाम मान मंदिर पड़ा। 'मान' माने रूठना। ये मान किसी लड़ाई या क्रोध से नहीं होता है जैसे कि संसार में होता है, ये मान एक प्रेम की लीला है। राधारानी श्यामसुन्दर के सुख हेतु मान करती हैं। गोविन्द स्वामीजी का पद है, इसमें ऐसा लिखा है कि राधारानी का मान शिखर के नीचे से

शुरू हुआ और जैसे-जैसे श्यामसुंदर ने मनाया वैसे-वैसे श्रीजी ऊपर चढ़ती आयीं। जब श्रीजी ऊपर चढ़ आयीं तो श्यामसुंदर ने सखियों का सहारा लिया।

उन्होंने विशाखा जी व ललिता जी से कहा कि जाओ राधारानी को मनाओ, हमारी तो सामर्थ्य नहीं है, हम तो थक गये। तो श्री ललिता जी व अन्य सखियाँ जब यहाँ आती हैं और श्रीजी से कहती हैं कि आप अपना मान तोड़ दो तो श्रीजी मना कर देती हैं फिर सखी ठाकुर जी के पास नीचे जाती हैं तो ठाकुर जी फिर ऊपर भेज देते हैं फिर नीचे जाती हैं तो फिर ऊपर भेज देते हैं। आखिर में सखी बोली कि हे राधे! मैं मान मंदिर में कई बार चढ़ी और कई बार उतरी, मैं तो थक गयी। आपका मान तो टूटता ही नहीं। मैं और कहाँ तक दौड़ूँ? इधर से आप भगा देती हो और उधर से श्यामसुन्दर बार-बार प्रार्थना करते हैं कि जाओ-जाओ, मैं चौगान की गेंद की तरह से लटक रही हूँ। इसलिए हे राधे! जल्दी से श्यामसुंदर से मिलो, ये रात बीतती जा रही है। यही मान मंदिर की लीला है। ये मान मंदिर ब्रह्माचल पर्वत पर बना है, जहाँ पर श्रीराधारानी मान करती हैं। मान लीला समझना बहुत कठिन है। मान को संसार में रूठना समझा जाता है, ये रूठना नहीं है यहाँ, 'मान' एक लीला है। लोग कलह को मान लीला समझ लेते हैं। ये कलह मान नहीं, 'प्रणय मान' है। जब श्रीजी देखती हैं कि श्यामसुन्दर हमारी प्रेम की आधीनता अधिक चाहते हैं, हमारे चरण स्पर्श चाहते हैं तब वह मान करती हैं। तो ये बड़े संक्षेप में बता रहे हैं कि मान लीला प्रेम की बहुत ही अद्भुत लीला है, जहाँ श्रीजी मान करती हैं।

तो ऐसी दिव्य प्रेममयी व सुस्वादनीय लीला मान मंदिर पर होती है। रस का मूल बरसाना है। ये हम नहीं कह रहे हैं, ये सब प्रामाणिक हैं। व्यास जी ने लिखा है कि रस का मूल बरसाना

इसलिये है कि श्रीराधारानी यहाँ दिन-रात विचरण करती हैं। इसी मान मंदिर में ही परमविरक्त व ब्रजोपासक संत श्री रमेश बाबा जी महाराज विराजते हैं। इसी मंदिर के प्रांगण में वे नित्य सत्संग किया करते हैं और ठाकुर जी के सामने नृत्य करके उन्हें रिझाते हैं। भक्त उनका दर्शन और सत्संग पाकर कृतार्थ हो जाते हैं।

☀ श्री राधारानी के चरण ☀

बरसाना में रस आया श्रीराधारानी के चरणों से।

वृन्दावन में रस कहाँ से आया? वृन्दावन में रस आया बरसाना से। बरसाना में रस कहाँ से आया? बरसाना में रस आया, श्री राधारानी के चरणों से। ये सभी जानते हैं कि राधारानी का गाँव बरसाना है, जहाँ आने के लिए श्रीकृष्ण भी तरसा करते हैं। बहुत लोग इस बात को नहीं समझ पाते हैं। जो सबसे प्रधान श्री राधारानी जी का ग्रन्थ राधारससुधानिधि है, उसमें सबसे पहले इस बरसाना की ही वंदना की गयी है।

यस्याः कदापि वसनाञ्चलखेलनोत्थ
धन्यातिधन्यपवनेन कृतार्थमानी ।
योगीन्द्र दुर्गमगतिर्मधुसूदनोऽपि
तस्या नमोऽस्तु वृषभानुभुवो दिशेऽपि ॥

(रा.सु.नि. १)

रसिक लोग कहते हैं कि राधारानी को प्रणाम करने की योग्यता तो हममें नहीं है। उनके श्रीचरणों को अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड नायक भगवान् श्रीकृष्ण भी छूने में हिचकते हैं और बड़े भय से उनके चरणों को छूते हैं। जब वे श्रीजी के चरण छूने जाते हैं तो वह प्रेम से हुंकार करती हैं तो रसिक श्याम डर जाते हैं कि कहीं ऐसा न हो कि लाड़ली जी मान कर लें; इसीलिए भयभीत होकर पीछे हट जाते हैं। उन चरणों से ही जो सरस रस बिखरा, उस रस को पाकर के गोपीजन ही नहीं स्वयं श्रीकृष्ण भी धन्य हुए। ब्रज लीला में मुख्य वस्तु क्या है? मुख्य वस्तु है 'प्रेम'। ब्रह्म का सर्वसार ही प्रेम है। श्रीकृष्ण राधारानी के चरण पकड़ते हैं यह एक गुप्त लीला है, इसे समझना कठिन है।

ये बात बताने से पहले कि श्यामसुन्दर लाड़ली जी के चरण आकर पकड़ते हैं, एक बात समझना जरुरी है कि राधारानी कौन हैं? यह बहुत थोड़े में समझ लो कि 'राध्' धातु के बहुत से अर्थ होते हैं। देवी भागवत में इसके बारे में लिखा है कि जिससे समस्त कामनायें, यहाँ तक कि कृष्ण को पाने की कामना भी सिद्ध हो जाती है। सामरहस्योपनिषद् में वर्णन आया है कि राधा नाम क्यों पड़ा? भगवान् सत्य संकल्प हैं, उनको युद्ध की इच्छा हुई तो उन्होंने जय-विजय को श्राप दिला दिया, तपस्या की इच्छा हुई तो नर-नारायण बन गये, उपदेश देने की इच्छा हुई तो भगवान् कपिल बन गये। उस सत्य संकल्प प्रभु के मन में अनेक इच्छाएँ उत्पन्न होती रहती हैं। इस बार भगवान् के मन में इच्छा हुई कि हम भी आराधना करें, भजन करें लेकिन किसका भजन करें? उनसे बड़ा कौन है? तो श्रुतियाँ कहती हैं कि स्वयं ही उन्होंने अपनी आराधना की।

ऐसा क्यों किया? क्योंकि वो अकेले ही तो हैं तो किसकी आराधना करेंगे। अतः श्रुतियाँ कहती हैं कि कृष्ण के मन में

आराधना की इच्छा प्रगट हुई तो श्रीकृष्ण ही राधारानी के रूप में प्रगट हो गये। इसीलिए मान आदि लीला में श्रीकृष्ण राधारानी के चरण पकड़ते है तो ये विशेष प्रेम की लीला है। राधारानी को तो छोड़ दो, वो तो उनका ही रूप हैं, उनकी ही आत्मा हैं। भगवान् कहते हैं –

निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम् ।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः ॥

(भा. ११/१४/१६)

तुम निरपेक्ष हो जाओ तो मैं तुम्हारे भी चरणों के पीछे घूमूँगा कि जिससे तुम्हारी चरणरज मेरे ऊपर पड़ जाय और मैं पवित्र हो जाऊँ। भगवान् तो रसिक हैं जो भक्तों के चरणों की रज के लिए उनके पीछे दौड़ते हैं। जब भगवान् भक्तों की चरणरज के लिये भक्तों के पीछे दौड़ते हैं तो राधारानी के चरण पकड़ें तो इसमें क्या आश्चर्य? श्रीजी के चरणों में क्या बात है? श्रीजी के चरणों की ये विशेषता है कि जो संसार में सबसे सुंदर चन्द्रमा है, वैसे एक नहीं, दो नहीं, हजार नहीं, लाख नहीं, करोड़ों चन्द्रमा श्रीजी के श्रीचरणों में जो नखमणि है, उनके ऊपर न्यौछावर कर दो।

श्रीजी के चरण क्या करते हैं? जिस समय श्रीजी रास में नृत्य करती हैं तो श्री बिहारी जी शिष्य बन जाते हैं और श्रीजी गुरु बन जाती हैं। श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे लाड़ली जी ! इस नृत्य की गति को आप हमें सिखा दो। श्रीजी बोलीं ऐसे नहीं सिखाऊंगी। पहले शिष्य बनो। श्रीकृष्ण बोले कि ठीक है आपको गुरु बनाता हूँ। किशोरी जी डंडा लेकर बैठ जाती हैं और उन्हें सिखाती हैं कि इस तरह से गति लो।

'लाल को नचवन सिखावत प्यारी ।'

जब श्रीजी ने उस तरह से गति लेकर, हाथों की और चरणों की लोच देकर के कटि की भाव भंगिमा बतायी तो बिहारी जी बुद्धू बन

गये। बिहारी जी की सारी चतुराई चली गयी। स्वामी हरिदास जी ने लिखा है कि सब चतुराई श्रीकृष्ण ने यहीं से सीखी है। आगे कहते हैं कि वो नृत्य की गति इसलिए नहीं सीख पाये क्योंकि वो श्रीजी की छटा ही देखते रहे। अब छटा देखने वाला क्या सीखेगा? उनका ध्यान तो कहीं और था। तो श्याम सुंदर ने कहा कि अच्छा किशोरी जी फिर से एक बार दिखाओ तो किशोरी जी ने फिर से दिखाया। उन्होंने सीख तो लिया होगा क्योंकि वो भी कला निधान हैं लेकिन सोचा कि एक बार और छटा दिखाई पड़े तो बोले एक बार और दिखाओ, मैं सीख नहीं पाया।

श्रीजी ने अब मान कर लिया कि ये कैसे बुद्धू शिष्य मिले। मैं बार-बार सिखाती हूँ और ये सीखते ही नहीं। अब लकुट को हाथ में लेकर मान करके बैठ गयीं। गुरु जब शिष्य को डंडा दिखाता है तब शिष्य कायदे से सीखता है। अब बिहारी जी डर के मारे थर-थर काँप रहे हैं, सखियाँ किशोरी जी की ये छटा देखकर आनंदित हो रही हैं। वे बोलीं वाह गुरु जी वाह ! गुरु हो तो ऐसे हों और शिष्य हो तो ऐसा हो। सखियाँ ताली बजाने लग गयीं। अरे, इसी डाँट के लिए ही बिहारी जी बार-बार बरसाने के चक्कर लगाते हैं। व्यास जी कहते हैं कि जिस वृन्दावन में वृषभानु नंदनी के श्रीचरण से प्रेम रस चारों ओर फैल रहा है तुम उसको क्यों नहीं समझते? व्यास जी कहते है –

सुभग गोरी के गोरे पाँइ ।
स्याम कामबस जिनहिं हाथगहि, राखत कंठ लगाइ ॥

राधारानी के कैसे सुंदर चरण हैं जिनके श्री बांकेबिहारी जी पुजारी हैं। पुजारी जैसे अपने हाथों से श्रीविग्रह की सेवा करता है वैसे ही श्री बिहारी जी इन चरणों को अपने हाथों में लेकर के दिन-रात सेवा करते हैं। सेवा करना अगर सीखना हो तो बिहारी जी से सीखो।

ये नहीं कि ठाकुर जी को पधरा दिया और फिर इधर-उधर की बात कर रहे हैं । अपने इष्ट को तो चौबीस घंटे अपने कंठ से लगाकर रखना चाहिए। हाथों में पकड़े रहना चाहिए कि कहीं दूर न चले जाएँ। ऐसी सेवा केवल एकमात्र श्रीकृष्ण ही करते हैं।

☀ गोपनीय धन श्रीराधिकारानी ☀

वेद भेद पायो नहीं, नेति-नेति कह वैन ।
ता मोहन सों राधिका, कहत महावर देन ॥

ऐसा ब्रह्म है वो जिसका वेद भी भेद नहीं पा सकते इसलिए वेद बोले – "न इति-न इति" हम नहीं पा सके।

कामं तूलिकया करेण हरिणा यालक्तकैरङ्किता
नानाकेलिविदग्धगोपरमणीवृन्दस्तथा वन्दिता ।
या सङ्गुप्ततया तथोपनिषदां हृद्येन विद्योतते
सा राधाचरणद्वयी मम गतिर्लास्यैकलीलामयी ॥

(रा.सु.नि. २०५)

राधिका रानी अपने चरणों में उस ब्रह्म को बैठा के कहती हैं कि महावर की रचना करो और वह करने लग जाते हैं। श्रीकृष्ण हाथों में विशेष तूलिका (ब्रश) लेकर के श्रीजी के चरणों में महावर देने बैठ जाते हैं। ऐसी हैं राधिका रानी, जिनके चरणों में बैठकर ब्रह्म श्रीकृष्ण भी महावर की रचना करते हैं।

वेद में ब्रह्म का स्पष्ट रूप से प्रतिपादन तो किया गया है किन्तु एक गोपनीय धन को छिपा लिया है। वह गोपनीय धन हैं श्री राधिका रानी; गुप्त रूप से उपनिषदों के भीतर जो विद्या है उनका मूल श्रीराधिका रानी हैं। उन्हीं श्री राधिका के जो दो गोरे-गोरे चरण हैं वही श्रीकृष्ण की गति हैं, सार हैं, जिसको कोई जान नहीं सकता। स्कंधपुराणोक्त श्रीमद्भागवत माहात्म्य में लिखा है कि श्रीकृष्ण अनन्त जीवों की आत्मा हैं और उनकी भी आत्मा हैं श्री राधिका रानी।

आत्मा तु राधिका तस्य तयैव रमणादसौ ।
आत्मारामतया प्राज्ञैः प्रोच्यते गूढवेदिभिः ॥

(भा. माहा. १/२२)

☀ कृष्ण को कैसे वश में किया जाय? ☀

सब वेद पुराणों ने यह सार विचारा है ।
प्रभु को वश करने का राधा नाम सहारा है ॥

एक बार सखियों ने विचार किया कि कृष्ण को कैसे वश में किया जाय? तो विचार किया कि बड़ा सीधा उपाय है – किसी के सिर पर अभिमंत्रित करके वशीकरण चूर्ण रख दो तो वो तुम्हारे वश में हो जाता है किन्तु ब्रह्म तो स्वतंत्र है वह कैसे वश में हो जायेगा? वश में जरूर हो जायेगा, उसको भी वश में करने का एक चूर्ण है।

ब्रह्मा, शंकर, नारद आदि को भी वह दिखाई नहीं पड़ता, बड़ा दुर्लभ है परन्तु उसको भी वश में करने का एक उपाय है। जहाँ बरसाने में राधिका रानी के चरण पड़ते हैं वहाँ चले जाओ, गहवर वन चले जाओ, मान मंदिर चले जाओ, यहाँ श्रीजी के चरणों में श्रीकृष्ण लोटा करते हैं। यहाँ की रज ले लो। सखियों ने यही किया।

यो ब्रह्मरुद्रशुकनारदभीष्ममुख्यै-
रालक्षितो न सहसा पुरुषस्य तस्य ।
सद्योवशीकरणचूर्णमनन्तशक्तिं
तं राधिकाचरणरेणुमनुस्मरामि ॥

(रा.सु.नि. ३)

जिसको भी श्रीकृष्ण को वश में करना था उन्होंने श्री राधारानी के चरणों का चूर्ण लेकर श्रीकृष्ण के माथे पर लगा दिया और वो वश में हो गये। यही आप करो और अगर आप वहाँ नहीं जा सकते हैं तो सिर्फ राधारानी के चरणों का स्मरण ही कर लो। इसी से श्रीकृष्ण वश में हो जायेंगे। ये राधा नाम श्रीकृष्ण को वश में कर देता है।

☀ श्री राधा नाम ☀

क्या राधा नाम में श्रीकृष्ण से अधिक शक्ति है?

हाँ, श्री राधा नाम में श्रीकृष्ण से अधिक शक्ति है।

श्रीकृष्ण ने अनन्त गोपियों को ही नहीं सारे ब्रह्माण्ड को वंशी से वश में किया था परन्तु उस वंशी को उन्होंने राधा नाम से ही सिद्ध किया था। पुराणों में लिखा है कि महारास करने से पहले श्रीकृष्ण ने राधारानी का आश्रय लिया था, नहीं तो महारास नहीं कर सकते थे।

भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः ।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः ॥

(भा. १०/२९/१)

उन्होंने योगमाया का सहारा लिया, योगमाया अर्थात राधिका रानी जो नित्य उनके साथ रहती हैं। श्रीकृष्ण ने मुरली से कहा कि मुरली तुझको मैं वशीकरण मन्त्र सिखाता हूँ; तू इस मन्त्र को सीख ले फिर तू अनन्त कोटि गोपियों को तो क्या, सारे ब्रह्माण्ड में ब्रह्मा, विष्णु, शिव तक को भी वश में कर लेगी। ये मन्त्र मैं तुमको देता हूँ **"रट री मुरली राधे राधे।"** ये रसिकों का पद है। मुरली श्रीकृष्ण से बोली कि आप कहते हैं कि मैं राधा-राधा रटूँ तो क्या राधारानी आपसे बड़ी हैं? भगवान् बोले कि अरी मुरली ! राधा ही मेरा साधन है, राधा ही आराधन है।

मुरली को गुरु के रूप में श्रीकृष्ण शिक्षा दे रहे हैं कि मुरली तू इस राधा नाम की आराधना कर। तेरे अंदर शक्ति आ जायेगी। राधारानी रस की सीमा हैं और रस की पराकाष्ठा हैं। मैंने तुमसे इतना प्यार क्यों किया? मुरली, मैं तुझे अपने होठों से क्यों लगाता हूँ क्योंकि तू राधे-राधे रटती है। इसलिए मैंने तुझे इतना सम्मान दिया। श्रीकृष्ण वंशी में ये ही गाते हैं और कुछ नहीं गाते हैं। ये प्रमाण है। वंशी ने यही 'क्लीं' बीज मन्त्र गाया था, 'क्लीं' राधा नाम का बीज मन्त्र है।

श्रीकृष्ण यमुना किनारे चले जाते हैं और किसी एकान्त कुञ्ज में साधन करते हैं –

कालिन्दीतटकुञ्जमन्दिरगतो योगीन्द्रवद् यत्पद-
ज्योतिर्ध्यानपरः सदा जपति यां प्रेमाश्रुपूर्णो हरिः ।
केनाप्यद्भुतमुल्लसद्रतिरसानन्देन सम्मोहितः
सा राधेति सदा हृदि स्फुरतु मे विद्या परा द्व्यक्षरा ॥

(रा.सु.नि. ९५)

भगवान् कैसे राधारानी का भजन करते हैं? यमुना किनारे किसी एकांत में चले जाते हैं, वहाँ बैठकर राधारानी के चरणों का ध्यान करते हैं। आँखों में आँसू भरके राधा-राधा जपते हैं।

आराधना करो तो इष्ट खिंचता है, आता है। राधा नाम रटोगे तो राधारानी सम्मोहित होकर के आयेंगी। दो अक्षर वाले जिस राधा नाम को श्रीकृष्ण रटते रहते हैं वह यदि हमारे ध्यान में भी आ जाय तो सबसे बड़ा सहारा मिल जाय। श्रीकृष्ण का भी एकमात्र सहारा 'राधा नाम' है। इस परमतत्व को जानना कोई छोटी-मोटी बात नहीं है। ब्रह्म ज्ञान के बारे में भगवान् ने गीता में कहा है –

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः ।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ॥

(गी. १८/५५)

तुम ब्रह्म रूप हो जाओगे पर मेरे रस रूप को नहीं जान पाओगे। ब्रह्म रस के आगे भी कोई रस है और वो है भक्ति रस। वो भक्ति रस राधारानी ही देने वाली हैं। धन्य हैं श्री राधारानी के चरण जिनमें श्रीकृष्ण हर क्षण गिरते हैं। जितने साधन हैं हम उनको नहीं जान सकते, हम अन्धे हैं, अन्धा क्या देखेगा और क्या जानेगा? लेकिन एक बात है। अन्धे की लकड़ी सा, राधा नाम हमारा है।

अन्धे बन जाओ, आँख बंद कर लो। जो होशियार बनते हैं बनने दो, जो आँखे खोलते हैं खोलने दो पर तुम आँखें बंद करके दौड़ जाओ, तुम पार हो जाओगे। ऐसे अन्धे बनना कि केवल लकड़ी का सहारा हो। इसलिए हम ऐसे ही अन्धे हैं, आँख बंद कर ली हैं और दौड़ रहे हैं, न लड़खड़ायेंगे और न गिरेंगे। तुम आँख खोले हुए गिर जाओगे और हम अन्धे होते हुए भी पार हो जायेंगे।

ये हमने भागवत से प्रमाण दिया अब राधासुधानिधि से भी प्रमाण दे रहे हैं। जो श्रीजी के नाम और चरणों के आश्रित होते हैं उनके लिए वेदों के कर्म करना या न करना, विषयों को ग्रहण करना

या न करना कोई मायने नहीं रखता। इसलिए आँख बंद करके दौड़ जाओ और एक दम सौ प्रतिशत अन्धे बन जाओ। जो वेदों में गुप्त बात थी वो मिल गयी है। अनादिकाल से हमको ये गुप्त बात पता नहीं चली क्योंकि अगर ये बात मिल जाती तो अब तक हम प्रभु के पास पहुँच जाते। नहीं पता चला तभी तो भटक रहे हैं। ये बात तो श्रीजी के जनों के पास जाकर ही पता चलती है। अब हमें किनारा मिल गया है।

(राधा ! राधा ! राधा ! राधा ! राधा ! राधा !)

☀ प्रार्थना ☀

जब भी प्रभु से प्रार्थना करो या बात करो तो इस प्रकार करो कि वह तुम्हारे सामने खड़े हैं। प्रभु तुम्हारे सामने खड़े हैं, इस बात का विश्वास रखो। जो भी बोलो, भाव के साथ बोलो। खुले मन से बोलो। प्रभु में डूबकर बोलो कि प्रभु तुम्हारी बात को सुन रहे हैं, प्रभु तुम्हें देख रहे हैं। कोई क्या कर रहा है और क्या कह रहा है, उधर ध्यान मत दो। मन को एकाग्र करके प्रभु से प्रार्थना करो।

हे नाथ! मैं आपके गुणों की गाथा सुनकर आपके पास आया हूँ, मैंने सुना कि आप पतित-पावन हैं। मैं भी आज अपनी किस्मत अजमाने आपके पास आया हूँ। मैंने सुना है कि आप भक्ति-भाव से रीझते हैं परन्तु मेरे पास तो न भक्ति है और न ही भाव है। मैंने सुना है कि लोग आपको सत्कर्मों से रिझाते हैं परन्तु मेरे पास तो न अच्छे कर्म हैं और न ही अच्छा स्वभाव है। मैंने तो हर पल भोगों में काटा है। मेरे पास तुम्हें रिझाने के लिए कुछ भी नहीं है। मेरे पास सुंदर मन भी नहीं है। मेरे पास दान देने को धन भी नहीं है। मेरा तो कोई भी ठौर-ठिकाना नहीं है।

मेरे पास कुछ भी नहीं है परन्तु एक बात है, वो भी पता नहीं कहाँ से आ गयी? पता नहीं मैं आपसे निष्कपट कैसे हो गया? मैंने आपसे कुछ नहीं छिपाया, जो जैसा है वैसा ही मैंने आपके सामने रख दिया है। मेरी सब तरफ से बात बिगड़ी है परन्तु एक तरफ से बन गयी। मैं आपके सामने निष्कपट हो गया और मैंने सुना है कि आपके सामने निष्कपट होते ही सब पाप जल जाते हैं।

हे नाथ! अनादिकाल से मैं प्यासा जगह-जगह पानी माँगता फिर रहा हूँ। मैं कहाँ-कहाँ नहीं भटका? कभी परिवार वालों के पास, कभी दोस्तों के पास, कभी रिश्तेदारों के पास; किन्तु कोई भी मेरी प्यास नहीं बुझा पाया। वे सब तो मेरे से भी ज्यादा प्यासे निकले। वे तो उल्टा मेरे से जल माँगने लग गये। मैं उनके पास प्रेम की इच्छा से व सुख की इच्छा से गया था परन्तु वे तो मेरे से भी ज्यादा अंधे निकले।

हे प्रभो! मेरा कुछ तो उपाय कर दो। मैं इस छलिया संसार में प्यासा भटक रहा हूँ। आप सिर्फ एक बार मुझे देख लोगे, सिर्फ एक बार मुझे निहार लोगे तो मैं हारा हुआ भी जीत जाऊँगा। हे नाथ! जैसे मछली के लिए जल ही जीवन होता है, वैसे ही मेरे लिए आपका नाम जल है। मैं इस संसार में एक दीन मछली हूँ, जो सिर्फ आपके नाम के सहारे जी रही हूँ। मछली तो फिर भी बिना जल के जी सकती है परन्तु मैं आपके नाम के बिना नहीं जी सकता। अगर मैं आपसे झूठ बोल रहा हूँ तो आप मेरी जीभ काट देना। मेरा आपके सिवा कोई भी नहीं है। आप कृपा करके मेरी ओर एक बार बस निहार लो।

हे प्रभो! माया में फँसा जीव इस भवसागर से कैसे पार हो सकता है? हमारे पास न कोई ज्ञान है और न ही कोई भक्ति है। हमारे पास तो केवल एक ही सहारा है, वो सहारा आपकी कृपा है। आपकी कृपा से ही हमारी नैया पार लग सकती है। जैसे एक

बालक के लिए माँ की गोद ही सब प्रकार से शरण होती है, वैसे ही हमारे लिए आपकी कृपा की गोद ही एक मात्र शरण है। हम इसके अतिरिक्त कुछ न ही जानते हैं और न ही जानना चाहते हैं। हम तो केवल आपकी कृपा की बाट निहारते हैं।

हे दीनानाथ! अगर आप मेरे गुणों की ओर देखोगे तो कभी भी कृपा नहीं कर पाओगे। अगर आप मेरे अच्छे कर्मों की ओर देखोगे तो आप पतित-पावन कैसे कहलाओगे? ऐसा कोई भी पाप या अपराध नहीं है जो मैंने नहीं किया। हे पापनाशन दीनबन्धो! पर आप उधर की तरफ से आँखें बंद कर लें, तभी मेरा कल्याण हो सकेगा। आप तो दीनों के नाथ हैं, मुझे भी अपनी दया दिखाइये।

हे कृपानिधान! मैं तो आपकी शरण में आया परन्तु काम, क्रोध अभी भी मेरा पीछा नहीं छोड़ रहे हैं; हे नाथ! मुझे इनसे बचाओ। मुझे अपनी निज कृपा-शक्ति दिखाओ। जैसे सूर्य और अन्धकार एक साथ नहीं रह सकते, वैसे ही राम और काम एक साथ नहीं रह सकते। हे प्रभो! मैं तो तेरे सहारे हूँ, मुझे इन काम, क्रोध से बचा लो।

मेरे हृदय में ऐसा दर्द दे दो कि मैं दिन-रात बस तेरे लिए ही तड़फा करूँ। मैं तेरे दर्द में दुनिया को तो क्या, अपने आपको भी भूल जाऊँ? सब लोग अपने को याद रखना चाहते हैं और तुझे भूल जाते हैं। हे दयानाथ! दया करके मुझे सब कुछ भुलाकर सिर्फ अपनी याद दे दो, अपना दर्द दे दो।

प्रेम की राह पर हर कोई नहीं चल सकता। यह राह मोम के घोड़े पर चढ़कर आग में चलने के समान है। ये प्रेम की राह बड़ी टेढ़ी है, इस पर वासना वाले नहीं चल सकते। ये वासना या तो प्रेम को जला देगी या फिर ये प्रेम की आग समस्त वासनाओं को जला देगी। इस प्रेम के रास्ते पर सुंदर फूलों का दर्शन नहीं है, इस रास्ते पर काँटों की शय्या पर सोना होता है; शीतल सुखों की आशा

छोड़कर, विरहाग्नि में जलना होता है। विषयों के भोगी तुम दूर से ही भाग जाओ, इस पंथ से बचकर भागना फिर मुश्किल है।

जैसे हनुमान जी ने कहा था कि भजन करना तो दूर, हम जानते ही नहीं कि भजन क्या है? वैसे ही प्रभु मैं भी कुछ नहीं जानता। बच्चा कुछ नहीं जानता। बच्चा तो इतना करता है कि दौड़कर माँ की गोद में जाकर बैठ जाता है अर्थात् भक्त प्रभु के शरणागत हो जाता है। हे नाथ! मैं आपकी शरण में आ गया हूँ, अब आप मुझ पर दया करें। मैं आपके बिना कुछ और नहीं जानता। हे दीनानाथ! आप मुझ पर अपनी दया बरसायें।

☀ मैं हरि साधन करी न जानी ☀

प्रभु-प्राप्ति का साधन तो मुझे मालूम नहीं तो प्रभु कैसे मिलेंगे? जब कोई साधन ही नहीं जानता तो सिद्धि कैसे मिलेगी? जो व्यक्ति समझता है कि हम साधन करना जानते हैं, वह अनजान है। ये बात हनुमान जी ने भी कही कि जितने भी संसार में जीव हैं, उनमें से केवल मैं ही एक ऐसा हूँ जो साधन-भजन कुछ नहीं जानता हूँ। सच्चे संत भी यही कहते हैं कि मैं कुछ नहीं जानता। हरिदासजी भी कहते हैं कि मैं कुछ नहीं जानता हूँ। गोसांई तुलसीदासजी भी

यही कहते हैं कि **"मैं हरि साधन करी न जानी।"** हम जैसे लोग भागवत-वक्ता बनते हैं लेकिन जानते कुछ नहीं हैं।

कोई अन्धेरे में जा रहा था उसे एक रस्सी मिल गयी, वह बोला – अरे, ये तो सर्प है, काला नाग है, हथियार लाओ, बड़ा भारी सांप है। बड़ी मोटी रस्सी थी, सब पीटने लगे उसको पर वो मर ही नहीं रहा। ये मरेगा नहीं, तुम मर जाओगे पर ये नहीं मरेगा। विचार व विवेक के बिना रस्सी रूपी सांप को सत्य मान लिया है, वैसे ही जीव शरीरों में सुख मानकर वासनाओं में आसक्त रहता है। तुम मरोगे पर सांप नहीं मरेगा। हम उल्टा साधन करने लग गये, रस्सी को मारने लग गये। इस तरह से बल की शक्ति का भी विनाश कर लिया।

गलत साधन में ही जीवन चला जाता है; हम लोग अभी साधन ही नहीं समझे हैं। भगवान् ने गीता में भी सातवें अध्याय के तीसरे श्लोक में यही कहा कि लाखों-करोड़ों निकलते हैं साधन करने लेकिन कोई सिद्ध नहीं बन पाता। सब गलत साधन में लग जाते हैं। साधन कैसे होगा? 'मैं कर्ता, मैं भोक्ता' जब तक ये नहीं निकलेगा तब तक साधन नहीं होगा। जब तक मन में अहम् है कि मैं कर्ता हूँ, मैं भोक्ता हूँ, ये नहीं निकलेगा तब तक तुम गलत साधन करोगे। अपने मैं को छोड़ दो वरना इस जन्म में तो क्या करोड़ों कल्प तक साधन कर लोगे तो भी कुछ नहीं होगा।

हे नाथ! आपकी माया-शक्ति से ब्रह्मा, शंकर आदि भी डरते हैं। जिनको माया शक्ति का व काल की शक्ति का डर नहीं है वे मोह में अन्धे प्राणी हैं। जिन्हें विवेक है, ज्ञान है, वे इससे डरते हैं। हे नाथ! इससे आप मेरी रक्षा करो। हे नाथ! मुझ दीन पर कृपा करो।

☀ मोसों बात सकुच तजि कहियै ☀

सूरदास जी भगवान् से कह रहे हैं कि कोई बात किसी से कही जाय और वो नहीं कर पाये तो उसे संकोच लगता है और उसे शर्म आती है। मैं आपके दरवाजे पड़ा हूँ, आप मेरा उद्धार नहीं कर सकते हैं तो संकोच या शर्म मत करिये। आप एक बार कहिये तो सही कि हमसे तुम्हारा उद्धार होना कठिन है। आप संकोच मत करिये। आप बस कह दीजिए।

हे दीनानाथ ! आप तो पतित पावन हैं, मेरा उद्धार नहीं कर पाये तो संकोच मत करिये। आप शर्म क्यों करते हैं? कुछ तो बता दीजिये कि मैं कहाँ जाऊँ? मैं उसी का जाकर हो जाऊँ। हे गोविन्द ! मैं जानता हूँ कि आपके अलावा पतित-पावन कोई नहीं है, आप किसी का नाम नहीं बता सकते इसीलिए मैंने कभी गाया था कि तुम तजि और कौन पै जाऊँ? मैं तुमको छोड़कर कहाँ जाऊँ? हे गोविन्द ! किसी का द्वार नहीं खुला है पतितों के लिए, मैं किसके द्वारे जाऊँ? कोई भी नहीं है, तुम कैसे किसी का नाम बता पाओगे?

हे गोपाल या तो आप पतित-पावन नहीं हैं या मुझमें ऐसी कोई कमी है जिसके कारण आप मेरा उद्धार नहीं कर रहे हैं। शायद आप पतित-पावन नहीं हैं या अब आप पतित-पावन नहीं रहे; या फिर जैसे जब मटके में छेद होता है तो पानी बह जाता है, ऐसे ही मुझमें कोई छेद है जिसमें से तुम्हारी कृपा बाहर बह रही है, मुझमें रूकती नहीं है। तो बताओ क्या छेद है? बोलो श्याम ! आप शर्म मत करो। आप कुछ तो बताओ ताकि मैं उसे सुधारने का प्रयत्न करूँ। एक बार आप बोल तो दो। मेरा जीवन स्वांग-पाखण्ड में चला गया। लोग मुझे भक्त समझते हैं पर मैं तो ठग हूँ। एक बार किसी ने बिट्ठलनाथ गोस्वामी जी से पूछा कि ठाकुर जी को कौन-

सा भोग अच्छा लगता है और ठाकुरजी को कौन सा भोग अच्छा नहीं लगता है? तो वह बोले ठाकुर जी को खीर अच्छी लगती है और लाल मिर्च अच्छी नहीं लगती है।

भक्त लोग बोले कि इसका रहस्य क्या है? उन्होंने बताया कि जो भक्त खीर होते हैं, वे ठाकुर जी को बहुत अच्छे लगते हैं। खीर बाहर भी सफेद होती है और भीतर भी सफेद होती है। खीर में दूध भी सफेद होता है, चीनी भी सफेद होती है। उसमें चावल भी सफेद होता है। ये सब अंदर व बाहर से सफेद होते हैं। जैसे – चावल को तोड़ो तो भीतर भी सफेद होता है। जो बाहर-अंदर से एक जैसा है वह भक्त खीर है, वो प्रभु को अच्छा लगता है। जो भक्त लाल मिर्च है, वह ऊपर से बहुत सुंदर होता है लेकिन उसको तोड़ो तो भीतर दूसरा रंग होता है। तो वो दो रंग वाला है, पाखण्डी है, वो ढोंगी है वो प्रभु को अच्छा नहीं लगता है।

तो हे दीनानाथ! मैंने अपने तीनों 'पन' स्वांग व ढोंग में गँवाये। मैं स्वांगी हूँ, ढोंगी हूँ। भगवान् को तो निर्मल मन ही अच्छा लगता है। जो कपटी है वो प्यारा नहीं लगता। ये कपट ही तो छिद्र है जो हमें भगवान् से दूर कर देता है। इसने ही मुझे आपसे दूर कर दिया है। बस मुझे एक ही दुःख हो रहा है कि सब पतितों का उद्धार हो गया मैं ही एक पीछे अकेला पड़ा रह गया। हे गोपाल! आपने अगणित पापी तारे हैं फिर एक मोको काहे बिसारे।

☀ नाथ सारंगधर ! कृपा करि दीन पर ☀

कड़वे जहर से इंसान बच जाता है पर मीठे जहर से मर जाता है।

जब सभी देवताओं ने नृसिंह भगवान् के क्रोधी मुख को देखा तो लक्ष्मी जी से जाकर कहा कि आप इनके क्रोध को शान्त करो नहीं तो सृष्टि नष्ट हो जायेगी।

साक्षाच्छ्रीः प्रेषिता देवैर्दृष्ट्वा तन्महदद्भुतम् ।
अदृष्टाश्रुतपूर्वत्वात् सा नोपेयाय शङ्किता ॥

(भा. ७/९/२)

लक्ष्मी जी जैसे ही आगे गयीं तो भगवान् के आवेश को देखकर भाग गयीं। भगवान् का अद्भुत भयंकर रूप देखकर वे डर गयीं फिर देवताओं ने प्रह्लाद जी से कहा कि तुम जाओ भगवान् के पास।

प्रह्लाद जी भगवान् के पास जाकर बोले कि हे नरहरे! हमें आपके इस रूप से भय नहीं लग रहा है। हे दीनानाथ! अति भयानक मुख; खून से भीगी हुई जीभ; करोड़ों सूर्यों से ज्यादा चमकते आपके नेत्र; शेर की तरह टेढ़ी भौंहें; भयंकर दाँत; आंतड़ियों की माला; हमारे पिता को मारकर उनके खून से लिपटे आपके बाल, आपकी गर्जना, इनसे मुझे डर नहीं लगता।

त्रस्तोऽस्म्यहं कृपणवत्सल दुःसहोग्र-
संसारचक्रकदनाद् ग्रसतां प्रणीतः ।
बद्धः स्वकर्मभिरुशत्तम तेऽङ्घ्रिमूलं
प्रीतोऽपवर्गशरणं ह्वयसे कदा नु ॥

(भा. ७/९/१६)

फिर प्रह्लाद जी बोले कि हे नाथ! मुझे तो केवल एक ही बात का डर लगता है वो है आसक्ति। कड़वे जहर से इंसान बच जाता है पर मीठे जहर से नहीं बच पाता। संसार की आसक्तियाँ हमें ऐसा

फँसातीं हैं कि जीव भूल जाता है कि आगे भी चौरासी लाख योनियाँ हैं, जिनमें अपार कष्ट हैं। हे नाथ ! इससे आप मेरी रक्षा करो। इस संसार रूपी चक्की में हर जीव पिस रहा है। कर्मों की रस्सी ने उसे बाँध रखा है। ये ऐसी रस्सी है, जो न तो टूटती है और न ही दिखाई देती है लेकिन जन्म-जन्मान्तर से बँधे हुए चाहे वो हम हों, चाहे वो रावण हो, कर्म रस्सी से बँधे नाच रहे हैं। हे प्रभो ! तुम कब दया करोगे? तुम्हारी दया से ही ये रस्सी टूटेगी। मैं उसी रस्सी से डर रहा हूँ। आपके रूप से मुझे डर नहीं लगता।

वही प्रह्लाद जी वाली बात, मैं आपसे कह रहा हूँ कि हे नाथ ! आप मुझ पर कब दया करोगे? कब मेरी ये रस्सी तोड़ोगे? हे नाथ ! मैं चौरासी लाख योनियों में घूमता रहा पर कभी भी इस रस्सी को नहीं तोड़ पाया। कभी मैं पशु बना तो कभी पेड़ बना। मैं सब कुछ भूल गया कि मैंने कितना कष्ट पाकर मनुष्य जीवन पाया है। हे नाथ ! आप मुझ पर दया करो और मुझे इन सबसे बचाओ। आप मेरी गलतियों व पापों को अपने पल्ले बाँध कर क्रोध मत करना। हे नाथ ! हे पापनाशन ! बताइये, मैं क्या किसी पापी से कम हूँ? सभी दुराचारियों से मैं आगे हूँ। कौन सा पाप है, जो अभी तक मैंने नहीं किया? आप बतायें मैं वो भी पाप कर डालूँ। हे नाथ ! आप न्याय कीजिये, मैं पापी हूँ और आप पतित-पावन हैं। पतित-पावन की कृपा पतित को मिलनी ही चाहिए। ये ही सच्चा न्याय है।

☀ हम भक्तन के भक्त हमारे ☀

जहाँ भक्ति होती है, वहाँ भगवान् होते ही हैं।

देखो, कौरवों के साथ, सात-सात अमर रथी थे, भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण आदि। कर्ण कवच और कुंडल के रहते मर नहीं सकता था पर सबके सब हार गये। पाण्डवों की तरफ एक भी अमर नहीं था पर कोई उन्हें हरा नहीं पाया। जहाँ भक्ति होती है, वहाँ जीत होती है। जहाँ भक्ति होती है, वहाँ भगवान् होते ही हैं।

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम् ॥

(गी. १८/७८)

हे भगवान्! कृपा करके मुझे भी अपनी भक्ति का दान दे दो, मुझ पर भी कृपा कर दो। भगवान् की प्रतिज्ञा है कि भक्त हमारे और हम भक्तों के हैं। यही बात प्रभु ने अर्जुन से कही कि मैं अपने भक्तों के लिए पैदल दौड़ता हूँ। हे अर्जुन, जहाँ-जहाँ भक्तों पर कष्ट होता है, मैं जाता हूँ। जब गजराज ने पुकारा था तो भगवान् बैकुण्ठ, गरुड़, लक्ष्मी सबको छोड़कर भक्त के पास आये। गजराज जब पानी में डूब रहा था तो उसे एक फूल दिखाई दिया, उसने उस

फूल को सूँड़ में लेकर कहा कि हे नारायण ! ये मेरी अंतिम भेंट है। यह सुनकर भगवान् ने पुष्प ग्रहण किया और उसे छुड़ाया।

देवगुरु बृहस्पति जी ने देवताओं से कहा – हे देवो ! भरत, राम जी को मनाने जा रहे हैं तुम भरत में दुर्भाव नहीं करना वरना नष्ट हो जाओगे, होश में आ जाओ। गुरु हो तो ऐसा हो, जो शिष्य को भक्तापराध से बचा ले। गुरु ने कहा कि इंद्र तू मेरा शिष्य है तो बेटा भक्तापराध मत करना। भगवान् को सेवक सबसे ज्यादा प्यारा है। याद रखना भगवान् समदर्शी हैं पर सबसे पहले भक्त के पक्षपाती हैं। भगवान् सदा सेवक के नचाये नाचते हैं। तब सब देवता रामजी को छोड़कर भरत जी की शरण में गये तो गुरु बोले कि अब तुम्हारा काम बन जायेगा। भगवान् से बड़ी है भक्त की शरण।

सुनु सुरेस उपदेस हमारा ।
रामहि सेवकु परम पिआरा ॥
मानत सुखु सेवक सेवकाई ।
सेवक बैर बैरु अधिकाई ॥

(रा.च.मा.अयो. २१९)

पर हे नाथ ! मैं तो सदा संतों व भक्तों का अपराध करता हूँ फिर मेरा उद्धार कैसे होगा? हे नाथ ! मेरे ऊपर कैसे कृपा होगी? मोर मुकट वाले श्याम ! भक्त रखवाले श्याम ! मेरी भी सुनले श्याम ! मैं भी तेरी शरण में हूँ श्याम।

☀ कौन गति करिहौ मेरी नाथ ! ☀

मैंने जब सुना कि आप पतित-पावन हैं तो मैं और ज्यादा पाप करने लग गया।

हर मनुष्य मरने के बाद कहाँ जाता है? तीन गतियों में से एक में जाता है। एक भगवान् के धाम को जाता है, एक स्वर्ग आदि लोकों

को जाता है, एक नरक आदि यातनाओं में जाता है पर इनमें से मेरी गति कौन सी है?

ये तो निश्चित है कि मेरे में ऐसी भक्ति नहीं है कि तुम्हारे धाम में जाऊँ। ऐसी मेरी शुभ-गति भी नहीं कि देव लोकों में जाऊँ। मेरी हालत ये है कि मेरा दिन-रात भोगों की लालसा में बीत रहा है। रात पशुओं की तरह सोते निकल जाती है, सारा जीवन ऐसे ही बीत गया। अब कहिये नाथ, मेरी कौन गति होगी? अगर गणेश जी हमारे पापों को सारी पृथ्वी को कागज बनाकर, कल्पवृक्ष की कलम लेकर, समुद्र के पानी में स्याही घोलकर जन्म भर लिखते रहें तो भी मेरे पापों की व मेरे दोषों की सीमा नहीं, वे नहीं लिख पायेंगे। इसलिए नरक में भी मेरा स्थान नहीं है।

आप मुझे कहाँ रखेंगे? मेरे लिये आप क्या सोच रहे हैं? आपने बड़े-बड़े पापियों को शरण दी है। वेश्या कितनी पतित होती है, इन सबको आपने शरण दी है। यह सब सुनकर मेरे में और भक्ति बढ़नी चाहिए थी कि कैसे दयालु हैं भगवान्! अतः भगवान् से ही प्रेम करो, भगवान् को ही पकड़ो, एकमात्र उसी को देखो। प्रभु कितना दयालु है कि वेश्या को भी शरण देता है लेकिन हमने इसका उल्टा फायदा लिया कि भगवान् दयालु तो हैं ही, पापियों को भी अपना लेते हैं इसलिए खूब पाप कर लो।

आप पतित-पावन हैं, ये जानकर भक्त लोग आपकी शरण में आते हैं और मैंने जब सुना कि आप पतित-पावन हैं तो मैं और ज्यादा पाप करने लग गया। हे नाथ! आपने अनन्त पतितों का उद्धार किया, उनका वर्णन कौन कर सकता है? गजराज दुःखी था, गणिका दुष्ट थी। हम जैसे भोगी लोग दुष्ट हैं।

दुःखी का उद्धार तो किया जो किया, पाप रूपी गणिका का भी आपने उद्धार किया। अजामिल जिसने डंके की चोट पर यमराज के दूतों को जीत लिया, धर्मराज को जीत लिया, अपनी विजय

करता हुआ परमगति को प्राप्त हुआ, आपके कारण महापापी भी जीत गया। व्याध, जिसने आपको (श्रीकृष्णको) बाण मारा था, देह सहित उसको भी धाम में भेज दिया। अहिल्या, जिसको पति ने पत्थर बना दिया, जड़ योनि बना दिया, लाखों वर्षों तक पत्थर बनी रही, आपके अलावा कौन कृपा कर सकता था उस पर? हे नाथ! उसी तरह आप मुझे भी मत बिसारो, मेरा भी उद्धार करो।

☀ केशव ! कहि न जाय का कहिये ☀

हे नाथ! मुझ पर दया कीजिये। मुझे अपनी शरण में लीजिये क्योंकि सारा संसार प्रभु में लीन हो रहा है। पता ही नहीं चलता कहाँ गया? केवल भगवान् चित्रकार रहते हैं। अनन्त चित्र कहाँ गया पता ही नहीं चलता। जैसे वीडियो कैमरे की रील खोलो तो उसमें समुद्र-पहाड़ दिखाई देते हैं और उसको बंद कर लो तो न समुद्र रहा, न पहाड़। वैसे ही जब संसार प्रभु में लीन हो जाता है तो कुछ नहीं रहता।

हे केशव ! इस संसार से मुझे छुड़ाओ।

जो दिखाई पड़ रहा है हमारा-तुम्हारा शरीर, एक दिन ये सब लीन हो जायेगा। केवल भगवान् ही रहते हैं। हम मूर्ख इस संसार

को, इस चित्र को देखने में आनन्द लेते हैं। इसे जितना देखोगे उतना ही दुःख पाओगे, उतनी ही तुम्हारी आसक्ति बढ़ेगी, उतना ही कष्ट पाओगे। मरता वही है, जो आसक्ति रखता है। जो फल में आसक्त नहीं होता, वो प्रकाशमान होता है, वो ब्रह्मरूप हो जाता है।

हे नाथ ! ये संसाररूपी चित्र कोई तो कहता है कि है और कोई कहता है कि नहीं है; कोई कहता है कि है भी और नहीं भी; ये तीनों ही भ्रम हैं। हम नहीं समझ सकते कि ये कैसा संसार है। जो इन तीनों भ्रमों को छोड़ देता है वही आपके स्वरूप को जान सकता है। केवल प्रभु ही हमारी माता हैं, प्रभु ही हमारे पिता हैं, प्रभु ही सब बनाने वाले हैं। इस काल का कोई मुँह नहीं है पर सारे संसार को खा जाता है। हे नाथ ! अब तो दया कीजिये। मुझे अपनी शरण में लीजिये। हे केशव ! इस संसार से मुझे छुड़ाओ।

☀ सोई कुछ कीजै दीन-दयाल ! ☀

तुम्हारी करुणा के बिना मन दिन- रात उल्टी ओर चलता है। बड़ा कठिन है साधन करना। भगवान् ने स्वयं कहा –

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्वतः ॥

(गी. ७/३)

लाखों व्यक्ति साधन करते हैं पर उन लाखों में कोई-कोई ही पहुँचता है। कोई-कोई ही ठीक साधन कर पाता है। मीरा ने भी कहा था कि कोई जीव भगवान् से प्यार नहीं कर सकता। वासनाओ में बँधा प्राणी कैसे प्यार कर सकता है? श्रुतियों ने भी कहा कि इस रास्ते पर कोई पाँव भी नहीं रख सकता, चलना तो बहुत दूर है। वासनायें खा जाती हैं, भजन कोई नहीं कर पाता।

हे प्रभो ! तू तो करुणा का सागर है। हे करुणा सागर ! करुणा कर दे। कोई तेरा क्या भजन करेगा? तुम्हारी करुणा के बिना मन

दिन-रात उल्टी ओर चलता है फिर मेरी क्या चलाई? क्या आशा है कि मैं साधन के रास्ते पर चल पाऊँगा? मैं तेरे रास्ते पर नहीं चल पाऊँगा क्योंकि मेरा मन, मेरी बुद्धि, इन्द्रियाँ सब भ्रष्ट हैं। इसीलिए हे दीनानाथ! मै अशरण हूँ। मैं तेरी शरण में आया हूँ क्योंकि मुझे और कोई रखेगा नहीं। तुम मेरे सब छल-कपट हरण करके अपना बना लो।

☀ मेरे प्रीतम प्यारे ☀

कामी लोग ही इधर-उधर देखा करते हैं, प्रेमी नहीं।

हे प्रीतम प्यारे श्याम! मैं तुम्हारे बिना व्याकुल होकर तड़प रही हूँ। मनमोहन, तुम कुछ तो अपनी दया दिखलाओ। विरह में कोई कैसे जीता है? अगर विरह है तो प्रेमी संसार के किसी व्यक्ति को नहीं देखेगा। कामी लोग ही इधर-उधर देखा करते हैं, प्रेमी नहीं। प्रेमी तो चातक-पपीहा की तरह होते हैं या तो स्वाति का पानी पियेगा, नहीं तो मर जायेगा। हनुमान जी जब लंका से लौटकर आये तो उन्होंने कहा कि हे राम! मैंने उनको सोते नहीं देखा। वह दिन-रात राम-राम ही रटती हैं।

नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहिं बाट॥

(रा.च.मा.सुन्दर. ३०)

सीताजी की आँखें बन्द हैं क्योंकि ये आँखें खिड़कियाँ हैं, इनसे बाहरी रूप भीतर जाता है। सीताजी के प्राण बाहर जा नहीं सकते। अन्दर दिन-रात तुम्हारा ही मिलन होता है। अगर उनकी आँखें खुलती भी हैं तो चरणों की ओर, सामने नहीं; ताकि कोई दिखाई न पड़ जाये। दृष्टि से भी व्यभिचार होता है।

हनुमान जी ने कहा कि हे राम! सीताजी का समाचार मेरे से मत पूछो। मतलब उनकी बुरी हालत है। तो रामजी बोले –

"हनुमान! सीता को कोई कष्ट नहीं है। कष्ट तो उनको होता है, जिनका मन मेरे में नहीं है। जिनका मन मुझमें है, वाणी मुझमें है, दृष्टि भी मुझमें है, क्या उनको कभी विपत्ति हो सकती है?" हनुमान जी समझ गये कि उनसे गलती हो गयी है, सीता जी तो परम आनन्द में हैं।

बचन कायँ मन मम गति जाही ।
सपनेहुँ बूझिअ बिपति कि ताही ॥

(रा.च.मा.सुन्दर. ३२)

इसीलिए जो जीव संसार में भटकता है, संसारियों से प्रेम करता है, उसको अनन्त दुःख हैं। हे प्रभो! मेरी गति तुम हो, मेरे सब कुछ तुम ही हो। जब भक्त को ये विश्वास हो जाता है तो वह दिन-रात प्रभु की राह देखता है, जैसे कि शबरी। शबरी दिन-रात बुहारी लगाती थीं कि इधर से राम आयेंगे। कहीं उनके पावों में कोई काँटा न चुभ जाए। सुग्रीव ने प्रभु से कहा था –

अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती ।
सब तजि भजनु करौं दिन राती ॥

(रा.च.मा.किष्कि. ७)

वैसे ही प्रभु, मैं भी दिन-रात तेरी बाट निहारूँ। मेरा काम तुझे बुलाना है, मैं दिन-रात तुम्हें बुलाया करूँ। हे राधा गौरांगी! दया करो। मेरी टेर सुनो, ओ बरसाने वाली। हे श्याम! मेरे प्रीतम आ जाओ। मेरे मोहन मुरली वारे, मैं आयी शरण तिहारी, मेरी भी सुनो बनवारी।

☀ कौन गति ☀

हे नाथ ! मेरे ऊपर उचित कृपा कर दीजिये।

भक्त लोग कहते हैं कि हमें सुगति भी नहीं चाहिए परन्तु फिर भी प्रभु चरणों से प्रेम तो चाहिये। प्रभु का सहारा पकड़ना चाहिये, नहीं तो जीव अनन्त काल तक दुःख भोगता रहेगा। चलकर देखो बीमारों को, बूढ़ों को, मरने वालों को, इससे तुमको ज्ञान मिलेगा कि यही संसार है। इसको ही संसार कहते हैं, जिसे जीव देख नहीं पाता। ये कभी नहीं सोच पाता कि एक दिन ऐसा आयेगा कि न पाँव चलेगा, न ही हाथ उठेगा। क्या कभी भी कोई बीमार सोचता है या कभी कैंसर वाला सोचता है कि मुझे कैंसर होगा?

हे नाथ ! हम कभी नहीं सोचते कि हमारा क्या होगा? हे नाथ ! मुझ पर दया कर दो, मैं गिरा हुआ हूँ। हे नाथ ! मुझ पर कृपा कर दो, मैं कर्मों से जकड़ा हुआ हूँ। दया करके मुझे अपनी शरण में ले लो। हे नाथ ! मैं अन्धा हूँ, माया से जकड़ा हूँ। हे नाथ ! जैसे सिंह को कोई मार नहीं सकता है पर जब मरता है तो किसी गुफा में भूखा मर जाता है। इसी तरह से जीव नहीं जानता कि उसकी क्या गति है?

हे नाथ ! मेरे ऊपर उचित कृपा कर दीजिये। आप पतित-पावन हैं और मैं पतित हूँ। आप अशरण शरण हैं। जिसकी कोई शरण नहीं है, उसको आप शरण देते हैं, ये उचित कृपा है। आप बस ऐसा कर दो कि सिर्फ़ आपके ही चरण याद रहें, बाकी संसार की सब बातें भूल जाऊँ। दीनानाथ ! मुझे अपनाइये, मुझे अपनी दया दिखलाइये।

हे नाथ ! आपका तो बहुत मीठा-मीठा मधुर शीतल स्वभाव है। हे प्रभो ! आपने कभी भी करुणा करने में देर नहीं लगाई। आप मेरी

बार इतनी देर क्यों लगा रहे हो? मेरी टेर सुनो प्यारे मोहन मुरली वाले। प्रभु आप तो सुलभ हैं। बहुत जल्दी मिलते हैं। आपने ही अर्जुन से (गी. ८/१४ में) कहा था कि हे पार्थ! मेरा जो अनन्य स्मरण करता है, मैं उसे बहुत जल्दी मिलता हूँ; इसीलिए हे प्रभो! मेरे ऊपर भी करुणा करो। अब मैं किसकी शरण में जाऊँ? प्रभु आप तो सर्वज्ञ हैं। आप मेरे हृदय में देखलो, वासनाओं का समुद्र है। हे भगवान्! आपने अजामिल जो महापापी था, गणिका जो वैश्या थी, सबका उद्धार किया। आपकी शरण में आने से उन सबका उद्धार हो गया। आप नाव हैं जिससे जीव इस भवसागर से पार चला जाता है। हे केशव! इस संसार से मुझे भी छुड़ाओ, इन वासनाओं से मुझे भी बचाओ।

हे गोविन्द! हे मुरारी! मेरा क्या बिगड़ेगा? किन्तु मेरे पतन से तुम्हारा विरद और यश कलंकित होगा। तुम ही मेरे मालिक हो, तुम ही मेरे ठाकुर हो। हे नाथ! अगर मेरे कर्मों की ओर देखोगे तो आप कभी भी मेरा उद्धार नहीं कर पाओगे। हे प्रभो! आप मुझ पर कब दया करोगे? मैं आपकी दया से ही मुक्त हो पाऊँगा। हे प्रभो! मेरी रक्षा करो। मैं कोई भी साधन नहीं जानता। आप ही शरण में आये की लाज रखो, दया करो। मैं चौरासी लाख योनियों में घूमता रहा और अनन्त दुःख पाता रहा फिर भी मेरी भोग तृष्णा शांत नहीं हुई।

एक बार श्रीकृष्ण द्वारिका में बैठे थे तो देखा एक चींटा चींटी का पीछा कर रहा था। श्रीकृष्ण हँस गये। रुक्मिणीजी बोलीं कि क्या हुआ? तो भगवान् बोले कि मैं इस चींटे पर हँस रहा हूँ, इसे मैंने चौदह बार इन्द्र बनाया। एक इन्द्र के पास भोगने के लिए करोड़ों अप्सरायें होती हैं फिर भी इसकी भोग वृत्ति नष्ट नहीं हुई, देखो अब कैसे ये चींटी के पीछे दौड़ा जा रहा है। इसी तरह हे प्रभो! मैं भी पहाड़ों में, जंगलो में, गुफाओं में, जल में, थल में,

अनेकों रूप धारण करके कष्ट पाता रहा फिर भी मेरी भोग तृष्णा शांत नहीं हुई। आप मुझे बचाइये। आप पतित पावन हैं परन्तु मुझ पतित को कैसे भूल गये? हे दीनानाथ! हे प्रभो! मैं भी आपकी करुणा का भिखारी हूँ, मेरी ओर भी निहारो।

☀ यह बिनती रघुवीर गोसाईं ☀

हे प्रभु! मुझे आपसे सुमति, सुगति की कामना नहीं है। तो क्या चाहते हो? प्रेम केवल प्रेम। भगवान् के चरणों में केवल प्रेम चाहिए, तो बेड़ा पार। सुमति, सुगति की कामना भी नीच है। ये शॉल-दुशाला तुच्छ चीजें हमें भगवान् से दूर कर देती हैं। सब लोग सोचते हैं कि हम नरक से बच जावें। अरे नहीं, नरक भी आता है, तो आने दो, कमजोर मत बनो।

हे महाराज! हे मेरे इष्टदेव, मेरे कुटिल कर्म मुझे नरक में ले जाएँ तो जाने देना आप रोकना मत, आप कष्ट मत करना; इसको कहते हैं प्रेम, बहादुर बनो, नीच मत बनो; किसी भी प्रकार की कामना नीच है। कर्म बलवान होते हैं, ये जीव को कहीं से कहीं ले जाते हैं। रावण कितना बलवान था लेकिन समय आने पर कर्मों ने पटक दिया। इसलिए बस प्रभु आपका स्नेह, आपकी स्मृति बनी रहे, मुझे और कुछ भी नहीं चाहिए। नरक मिल गया तो कोई बात नहीं।

आपकी स्मृति की डोर हमें, नरक से भी निकाल लाएगी। समुद्र में कछुआ अपने अण्डे को किनारे रख आता है और कोसों दूर चला आता है, वहीं से अण्डे का चिन्तन करता है और उस चिन्तन से अण्डे का पालन होता है। पक्षी अपने अण्डे को अपने पंख से स्पर्श करता है और उससे ही अण्डा बढ़ता है। मछली अण्डे को देखती है, उसकी दृष्टि से ही अण्डा बढ़ता है यानि सृष्टि में भावना शक्ति के विचित्र-विचित्र चमत्कार हैं। उसी तरह से हे

नाथ ! केवल आपकी स्मृति, आपका स्नेह रहे, आपका चिन्तन बना रहे फिर किसी चीज की परवाह नहीं।

☀ मैं हरि बिनु क्यूं ज्यूं री माई ☀

यदि कहीं से कृष्ण-विरह मिल जाए तो प्राण देकर भी उसे खरीद लो। प्राणों से मिले तो भी वह बहुत सस्ता है लेकिन इसका मूल्य उत्कंठा ही है। उत्कंठा माने प्रभु से कैसे मिलें?

करोड़ों जन्मों के साधन से भी ये उत्कंठा नहीं मिलती। मिलती है तो केवल भगवद्-प्रेमियों के पास से। केवल भक्तों की चरण-रज में स्नान करने से मिल जाती है। विरह की उत्कंठा मिली मीरा को; कोई भी औषधि काम नहीं आयी। किसी ने पूछा, तू क्यों रो रही है मीरा?

मीरा बोली कि जिस पानी में मछली पैदा होती है, उसी पानी में मेढ़क भी पैदा होता है, कछुआ भी पैदा होता है लेकिन जो प्रेम मछली जानती है वह प्रेम मेढ़क और कछुए नहीं जानते। मछली पानी के बिना मर जायेगी। इसी तरह मैं भी गिरधारी के बिना मर जाऊँगी। मेंढक तो सूखे में सालों बेहोश पड़े रहते हैं पर मरते नहीं लेकिन मछली पानी के वियोग में मर जाती है। वैसे ही मैं हूँ, मैं गिरधारी के बिना नहीं जी सकती। हम लोग तो कछुआ और मेंढक हैं, जिनको प्रभु से प्रेम ही नहीं है। भक्त प्रभु-प्रेम के बिना नहीं जी सकता है।

☀ मोहे ना बिसारौ ☀

साहिब तुम ना बिसारियो, लाख लोग लग जाहिं ।
हमसे तुमको बहुत हैं तुमसे हमको नाहिं ॥

एकु मैं मंद मोहबस कुटिल हृदय अग्यान।
पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ दीनबंधु भगवान॥

हे नाथ! मैं आपको भूल गया क्योंकि मैं तो एक जीव हूँ। मैं आपको भूला तो ठीक है क्योंकि मैं मोहग्रस्त, मंद बुद्धि, कुटिल, कपटी, अज्ञानी हूँ परन्तु आप कैसे मुझे भूल गये? हे दीनबन्धु, अगर आप ये कहेंगे कि तुम तो भूलने लायक हो क्योंकि तुम कुटिल हो तो मैं ये कहूँगा कि हे नाथ! चाहे मेरे अवगुण बहुत हैं पर आप तो प्रभु हैं, सेवक तो नीच होता ही है।

हे नाथ! आप मुझे मत बिसारो। संसार के जितने भी जीव हैं आपकी माया के मोह में आपको भूल चुके हैं। हर जीव आपको भूल करके माया की यातनाओं में पिस रहा है। उनसे वो तभी पार हो सकता है जब आपकी कृपा, आपकी दया होती है। हनुमान जी बोले हे प्रभु! संसार में जितने जीव होंगे उनमें से सबसे निकम्मा मैं हूँ पर जैसे शिशु माँ को भूल सकता है लेकिन माँ कभी नहीं भूलती, वैसे ही आप मुझे मत भूलिये?

वही बात मैं यहाँ प्रभु से कह रहा हूँ कि हे दीनानाथ! आप मुझे मत बिसारिये। जब बच्चा पैदा होता है तो माँ को भी नहीं पहचानता पर माँ पालन करती है। शिशु इतना नासमझ होता है कि माता की गोद छोड़ देता है और बिच्छू, साँप, अग्नि आदि को पकड़ने दौड़ पड़ता है। कैसा मूर्ख है कि माँ की गोद को छोड़ करके बिच्छू के पीछे दौड़ता है पर माँ बच्चे को दौड़ करके बचाती है। बच्चे के अपराध पर ध्यान नहीं देती कि मेरी गोद छोड़ के क्यों गया?

उसी तरह हे नाथ! मैं आपका शिशु हूँ, मेरी ओर निहारो। कबीरजी ने भी लिखा कि हरि जननी मैं बालक तेरा। हे कृष्ण रूपी माँ, हे मेरी कृष्ण माँ, मैं तेरा बालक हूँ। बालक माँ की चोटी पकड़ के लात मारता है। जब माँ गोद में लेती है तो गोद में मल आदि छोड़ देता है, उसके कपडे गन्दे कर देता है। ऊपर से जब माँ स्तन से दूध पिलाती है तो दूध पीते हुए भी लात मारता है परन्तु माँ फिर भी उस बालक को नहीं छोड़ती। हे राधे! उसी तरह आप भी मुझे मत बिसारो।

गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई।
तहँ राखइ जननी अरगाई॥

(रा.च.मा.अरण्य. ४३)

एक मादा पक्षी अपने बच्चे को जिसके पास पंख भी नहीं हैं, उसे उड़-उड़कर जंगल से अपनी चोंच में खाना लाकर खिलाती है। एक दिन माँ जंगल में गयी और बाज उसे खा गया तो वो लौट के नहीं आयी। हे नाथ! बच्चे भूखे हैं, चूँ-चूँ करके माँ को ढूँढ़ रहे हैं, रात हो रही है, अब क्या होगा? वैसे ही हे गोविन्द! मैं तुम्हें देख रहा हूँ। तू दया करदे, मेरी माँ। हे दीनानाथ! मुझे मत बिसार।

जब गाय के बछड़ा पैदा होता है तो तमाम गंदगी से लिपटा होता है। पता नहीं कितनी गन्दगी पेट में होती है लेकिन गौ माँ उस बच्चे को चाट-चाट के उस बच्चे की गंदगी को दूर कर देती है इसलिए गाय को वत्सला कहा जाता है। गाय के समान बच्चे को कोई प्यार नहीं कर सकता। बच्चे की गंदगी को भी माँ चाट-चाट के साफ कर देती है, उसकी गंदगी से भी प्यार करती है। हे नाथ! हे राधे! तुम तो वात्सल्य की मूर्ति हो। हे वात्सल्य की मूर्तिमयी राधा, हे करूणामयी माँ, मुझे न बिसारो।

☀ कबहूँ मन विश्राम ना मानै ☀

अगर मेरा मन स्थिर हो गया होता तो तुम मिल गये होते।

हे नाथ! मेरे मन ने कभी भी विश्राम नहीं पाया। हे नाथ! अनादिकाल से मेरा मन बाहर इन्द्रियों के विषयों में भटक रहा है। हे दीनानाथ! मेरा मन विश्राम नहीं करता, अगर मेरा मन स्थिर हो जाता तो तुम मिल जाते। स्थिर मन ब्राह्मी स्थिति में पहुँच जाता है। हे नाथ, हम तुमसे दूर हैं तो इसका एक ही कारण है कि अनादिकाल से हमारा मन स्थिर नहीं हुआ है। हे राधे! आप हमारी प्राकृत भावों से रक्षा करें, प्राकृत काम से रक्षा करें। हे दयामयी राधे! हमने अनादिकाल से विषयों में, भोगों में अनन्त कष्ट सहे किन्तु मेरा मन उनसे फिर भी अलग नहीं हुआ। हे नाथ! ये सारे भोग दुःख के कारण हैं, दुःख की योनि हैं।

इनसे सिर्फ दुःख ही पैदा हुआ है और दुःख ही पैदा होगा। कोई भी बुद्धिमान इन विषयों में कभी भी रमण नहीं करता है किन्तु मैंने आज तक यही किया है। हजारों बार सुना कि इनको छोड़ो पर ये विषय नहीं छूटे। मैंने अनेकों जन्मों तक अनेकों प्रकार के कर्म किये और उन कर्मों की कीचड़ की गन्दगी में ये चित्त फँस गया किन्तु आज तक मुझे विवेक नहीं हुआ। बिना विवेक रूपी पानी से चित्त निर्मल व साफ नहीं हो सकता। ऐसा वेदों में, पुराणों में कहा गया है कि असत् को छोड़ो व सत् को पकड़ो – ये विवेक है पर ये विवेक मुझे आज तक नहीं हुआ। वो विमल विवेक तो तुम ही देते हो, तुम्हारी कृपा के बिना वो विवेक कैसे मिल सकता है?

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः ।
वेद्यं पवित्रमोङ्कार ऋक्साम यजुरेव च ॥

(गी. ९/१७)

आप ही नाथ हैं, आप ही गुरु हैं, आप ही माँ हैं, आप ही बन्धु हैं पर हृदय से आपको अपना नहीं माना और संसार के जीवों को ही अपनी माँ-बाप, पुत्र आदि माना, उनसे ही मैंने सब सम्बन्ध जोड़े। अगर आपसे सम्बन्ध जोड़े होते तो ऐसी भूल क्यों होती? मैं फिर इतना कष्ट क्यों पाता?

आपने यही बात अर्जुन को कही थी कि संसार में न कोई बाप है और न माँ है, मैं ही सबका सब कुछ हूँ पर मैंने ये बात नहीं मानी। हे नाथ ! मैं अब तेरी शरण में आया हूँ, तू मुझ पर दया कर दे।

हे नाथ ! कोई कुँआ खोदने लग गया और कुँआ खोदते-खोदते मर गया पर उसकी प्यास नहीं गयी और वो प्यासा मर गया। ऐसे ही संसार में सब जीव हैं। प्यास बुझाने के लिए पैसा कमाते हैं, ब्याह रचाते हैं पर देखो, बूढ़ों को प्यासे ही मर जाते हैं, उनकी प्यास कभी नहीं बुझती। सारा जीवन उनका कुँआ खोदते-खोदते

बीत गया। उसमें ही उनकी सब शक्ति चली गयी फिर भी वो प्यासे ही मरते हैं।

अगर तुमने कृपा नहीं की तो मैं भी ऐसे ही प्यासा मर जाऊँगा। हे नाथ! इस शरीर से न मैं आराधना कर सकता हूँ और न ही संयम कर सकता हूँ। जैसे खेत को जोतते-जोतते बैल हार कर गिर जाता है, वैसे ही मैं भी हारकर गिर गया हूँ। कब मेरे सामने आपका सुन्दर सौन्दर्य आयेगा? आप मुझे कब दर्शन दोगी।

☀ अंत के दिन को ☀

साथी तो केवल एक ही है 'कृष्ण'।

हे जीव, याद करो जब तुम पैदा हुए थे तो तुम्हारे साथ कोई नहीं था। याद करो, जो लोग मरते हैं उनके साथ भी कोई नहीं जाता; न स्त्री, न पुत्र। साथी तो केवल एक ही है वो ही जन्म के साथ था और वो ही मरते समय रहेगा फिर तुम क्यों भटकते हो? दुनिया वालों का साथ क्यों ढूँढ़ते हो?

साथी एक है जिसको हम भूल चुके हैं एक वो ही साथ देगा। संसारी कामनायें, आसक्तियाँ जीव को खा जाती हैं। मर जाता है जीव पर ये आसक्तियाँ नहीं छूटतीं। माँ-बाप, भाई-बन्धु, बेटा-बेटी सब स्वार्थ के नाते हैं। जब तक जिसका स्वार्थ है, तब तक ही वो सामने आएगा। सारा संसार स्वार्थ का है। तू क्यों नहीं समझता कि साथी तो केवल एक वही 'कृष्ण' है। पिता वही है, माँ वही है, बेटा वही है, बेटी वही है, सम्बन्धी वही है, स्वामी वही है, गुरु वही है, सखा वही है। संसारी अपने नहीं हैं सिर्फ एक कृष्ण ही हमारा है।

जब तू बूढ़ा होगा तो तेरे मरने से पहले ही परिवार वाले तुझे छोड़ देंगे। यहाँ तक कि तेरी चमड़ी भी तेरा साथ छोड़ देगी। बुढ़ापे

में चमड़ी सिकुड़कर साथ छोड़ देती है परन्तु अन्धा प्राणी समझता ही नहीं कि हमारी इन्द्रियाँ, हमारा शरीर, हमारे साथी सब साथ छोड़ देते हैं। चमड़ी की ये सूचना है कि दुनिया में कोई साथी नहीं है, मैं ही एक गर्भ से तेरे साथ निकली थी, मैंने भी जीते जी तेरा साथ छोड़ दिया फिर तू असली साथी को क्यों नहीं पकड़ता? अपनी चमड़ी भी साथ छोड़ गयी पर फिर भी जीव होश में नहीं आता।

किसी जीव का भरोसा किया तो सच्चे सेवक नहीं रहोगे। दुनिया की सभी आशाओं और सभी विश्वासों को छोड़ दो। किसी भी जीव का भरोसा करोगे तो सच्चे सेवक नहीं बन पाओगे। सिर्फ एक प्रभु को पकड़ो।

कहीं तुमने प्रभु से प्रेम किया और भजन के रास्ते पर चले तो सारा संसार तुमको रोकेगा। तुम नहीं रुकोगे तो ये सारा संसार अपने सम्बन्ध तोड़ देगा क्योंकि संसार तभी तक सगा है जब तक तुम इसमें फँसे हो। अगर तुमने भूल से भगवान् से प्रेम किया तो सारा संसार तुम्हारे खिलाफ हो जायेगा। सब दुनिया वाले तुमको छोड़ देंगे, इस डर से तू मत डर।

ये सारा संसार तो थोड़ी देर में छूटेगा ही, इसलिए तू खुद ही इसे छोड़ दे और वृन्दावन धाम में दिन-रात भगवान् का कीर्तन कर, उनका सुमरिन कर। गोसांई जी भी लिखते हैं एक जगह कि हे नीच, जब तू मरेगा तो ये सब तुझे घर से निकाल ले जायेंगे कि जल्दी करो फूँक आओ इसे। प्यारे से प्यारे स्त्री, पुत्र जल्दी से जल्दी ले जाते हैं फूँकने। इससे पहले कि ये सब तुम्हें घर से निकालें तू खुद ही निकल जा और सब छोड़ दे।

☀ मो सम कौन कुटिल खल कामी ☀

हे नाथ ! जीव ही जीव से कपट कर सकता है, जीव ही जीव से छिपा सकता है किन्तु आपसे कौन छिपा सकता है? आप अन्तर्यामी हैं। हमारे मन में कितनी वासनायें हैं, ये आप जानते हैं। हमारे मन में अनन्त वासनायें, कामनायें हैं। हम बड़े कामी हैं। हमें सुख चाहिए, सुविधा चाहिए, मान चाहिए, पैसा चाहिए।

हे नाथ ! मैं इन कामनाओं में बँध गया हूँ। आप ये जानते हैं, करुणानिधान ! आपसे क्या छिपा है? भक्ति व ज्ञान का लक्षण होता है, अमानी होना लेकिन हे नाथ ! मेरा रोम-रोम मान-सम्मान के लिए रो रहा है। मेरे जैसा खल-कामी कौन है? ये सब आप जानते हैं। गोपियों ने भी आपको अन्तर्यामी कहा था, उन्होंने कहा था कि हे कृष्ण ! हम तुमको रात में इस विशाल वन में ढूँढ़ रही हैं। तुमने ही कहा था कि वन में बड़े भय हैं, यहाँ घोर हिंसक राक्षस, पशु घूम रहे हैं। क्या ये आप नहीं जानते? हमारे प्रेम में क्या कपट है? हम सब कुछ छोड़कर आपके लिए आई हैं। न देह की आसक्ति है और न परिवार की आसक्ति है। तुम हमारे भीतर घुसके देख लो, तुम तो अन्तर्यामी हो।

चलो, गोपियों को तो तुमसे प्रेम था इसलिए उन्होंने कहा कि तुम भीतर घुसकर देख लो परन्तु मैं कहता हूँ कि मेरे में प्रेम नहीं है, केवल संसारी काम है। हे नाथ ! मेरी रक्षा करो, मुझे अपनी शरण में ले लो। मनुष्य रात के अन्धेरे में विकर्म करता है और भूल जाता है कि सहस्त्रपुरुष देख रहा है। बिना ईश्वर को भूले, भोग नहीं होता है। तुम, हे नाथ ! जानते हो कि मैं भोगी हूँ, इस संसार का सबसे बड़ा कामी हूँ। आप कहते हो कि दूसरों को मान दो पर उल्टा मैं खुद के मान की कामना रोम-रोम में लिए घूम रहा हूँ। ऐसा दुर्लभ शरीर आपने मुझे दिया और मैंने ऐसे ही इसे व्यर्थ गँवा दिया। हमारे

शरीर में करोड़ों-अरबों जीवाणु हैं। गोरखनाथ जी ने कहा था कि वीर्य की एक बूंद में सत्रह लाख जीवाणु होते हैं। उन करोड़ों जीवाणुओं में से किसी एक को जीवन मिलता है, सब को नहीं।

बड़े भाग मानुष तनु पावा।
सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा॥

(रा.च.मा.उत्तर. ४३)

ऐसा दुर्लभ शरीर आपने मुझे दिया, जिसको देवता भी तरसते हैं, क्यों? देव योनि में भोग है, वहाँ भजन नहीं हो सकता। इस मनुष्य शरीर को पाकर मुझे हर क्षण तुम्हारा भजन करना था पर मैं संसार में डूब गया। एक भी क्षण आपके स्मरण के बिना नहीं गँवाना चाहिए पर मेरा तो सारा जीवन ही भोग, ऐश्वर्य में चला गया। हे नाथ ! अब तो मुझ पर दया करो, इस अंधेरे से मुझे बचाओ।

☀ अब मोहि शरण राखिए दीनानाथ ☀

हे पतित-पावन ! अपनाइये, मुझे अपना बनाइये।

हे नाथ ! मैं ८४ लाख योनियों में भटकता आया हूँ। आप तो अनाथों के नाथ हैं, मेरे से ज्यादा अनाथ कोई नहीं है। इस माया

के संसार में मैं तुमको भूल गया। मैं शरीर हूँ, ये देह भाव आते ही भगवान् से अलग हो गया। हे दयालु ! तुमने तो बड़ी दया की, तुमने तो बड़ी कृपा की लेकिन मैं तुझे भूल गया। हे नाथ ! हे जगन्नाथ ! मैं तुम्हें भूल गया। जब माँ देखती है कि बच्चा खिलौने से खेल रहा है तो माँ नहीं आती है, जब बच्चा खिलौना छोड़ देता है, माँ-माँ करके रोता है तो माँ दौड़ के आती है। हे नाथ ! एक बार और साथ दे दे। हे राधारानी, हे करुणामयी, मुझे अपनी शरण में ले ले। भवसागर बड़ा भयंकर समुद्र है, उसमें हम सब डूब रहे हैं, बाहर नहीं निकल सकते। हे नाथ ! मैं डूब रहा हूँ, मुझे उबारो, हे दाता उबारो, हे करुणा सिंधो तू तो दया का सागर है, एक बूँद मुझे भी दे दे।

कुछ बूँदें मिल जाएँ तो अनन्तकाल तक मेरा जीने का सहारा हो जायेगा। हे नाथ ! ये मेरी आसुरी प्रकृति मुझे बहा रही है, डुबा रही है। मेरी क्रोधासुरी, कामासुरी, लोभासुरी ये राक्षसी प्रकृतियाँ मुझे गर्दन पकड़ के डुबो रही हैं। महात्माओं की दिव्य प्रकृति होती है, वो एकरसता से भजन करते हैं परन्तु मेरी आसुरी प्रकृति मुझे डुबो रही है। भोग का दंड है बँध जाना, संस्कारों की रस्सियों से बंध जाता है प्राणी। अनाथ की तरह पैदा होता है, मरता है।

हे कृपासिन्धु ! अब कृपा करो। भयानक तूफान की आँधी डुबो रही है। हे शरणपाल ! अपनाइये। आपको ठुकराने की आदत है, फ़ुटबाल खेलने की आदत है। फुटबाल खेलने वाला फुटबाल को पैरों से ठोकर मारता है। अच्छा कोई बात नहीं। ये मेरा सिर भी एक फुटबाल है इसे तेरे कदमों में रख दिया है, इसको ठुकराइये।

हे नाथ ! काल जहाँ चाहे, वहाँ जन्म दे देता है। जब जहाँ चाहे मार देता है। जब चाहे तब प्राण खींच लेता है। आप मुझे शरण में रखिये नाथ। जैसे मृग बालू के मैदान में प्यासा पानी की आशा में दौड़ता रहता है कि शायद वहाँ पानी है। वो दौड़ता-दौड़ता मर

जाता है। वैसे ही मैं हूँ। मैं भी दौड़ता ही रहता हूँ। यह जीव सोचता है कि विवाह होगा स्त्री आएगी, बड़ा सुख मिलेगा। इन बूढ़ों से पूछो कि तुमने जो सुख चाहा वो मिला कि नहीं। ये बूढ़े तड़पते-तड़पते मर गये इनको सुख नहीं मिला। वैसे ही मैं मर जाऊँगा।

जैसे तेली का बैल दिन-रात तेल पीसता-पीसता मर जाता है, तेल की एक बूँद भी उसे नहीं मिलती। ऐसे ही पैसे वाले पैसा कमाते-कमाते मर जाते हैं, एक कच्ची कौड़ी भी साथ नहीं ले जाते। दूसरों के लिए कमाकर मर जाते हैं, भ्रम का पानी, विषयों का पानी पीते-पीते मर जाते हैं। इसलिए तू मुझे इस भ्रम से, इन विषय भोगों से बचा, मुझे अपनी शरण में ले ले।

हे कृपारूपिणी कृपा करो। हे नाथ! मैंने संतो का साथ नहीं किया, इसीलिए इन विषयों में मरता रहा। साधुओं में बैठ के प्रभु-गुण गाता तो प्रभु मिल जाते परन्तु भोगों में डूबा रहा। जितने भी साधन हैं – जप, तप, योग, यज्ञ, तीर्थ ये बिना आपकी आराधना के सब बेकार हैं। प्रभु की आराधना नहीं है तो सब कर्म बेकार हैं।

शुकदेव जी ने भी कहा –

तपस्विनो दानपरा यशस्विनो
मनस्विनो मन्त्रविदः सुमङ्गलाः ।
क्षेमं न विन्दन्ति विना यदर्पणं
तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥

(भा. २/४/१७)

तप किया, दान दिया, यज्ञ किया, योग किया, सदाचार किया परन्तु भगवान् की आराधना के बिना सब शून्य है। ये ही मेरी हालत है इसलिए तू अपना करकमल मेरे मस्तक पर रख दे। मुझे शरण में ले ले बस।

☀ हरि जू कौ देख्यो एक स्वभाव ☀

ये पद सूरदासजी ने अंतिम समय में गाया था। सूरदासजी १२० वर्ष तक यहाँ विराजे और सैंकडों पदों की रचना की। जब वह संसार छोड़कर जाने लगे तो गोसांई जी ने कहा कि आज संसार से पुष्टि मार्ग का जहाज जा रहा है। जहाज उसे कहते हैं जिसमें हजारों आदमी बैठकर पार चले जाते हैं। सूरदास जी एक जहाज थे जिनके पदों को आज भी लोग गा-गा के भवसागर को पार कर रहे हैं।

गोसांई जी के कहने से सब वैष्णव उनके आखिरी दर्शन करने गये। उन्होंने देखा सूरदास जी जमीन की ओर मुँह करके यानी उल्टे पड़े थे। वैष्णवों ने सोचा इनको सीधा कर दें। उनको जब सीधा करने लग गये तो वह बोले मैंने ब्रज-रज को सदा अपनी छाती से लगा करके सेवा की; अब आखिरी समय में पीठ दिखाकर नहीं जाऊँगा। ये ब्रजभूमि है, ये मेरी छाती से लिपटी रहेगी। तब गोसांई जी भी आ गये बोले कि आप इस संसार से जा रहे हैं, हमें ये तो बता दें कि भगवान् का स्वभाव कैसा है, कृष्ण का स्वभाव कैसा है?

सूरदास जी बोले सुनो, श्यामसुंदर बड़े गंभीर हैं, उदारता व प्रेम के समुद्र हैं, जैसे समुद्र वैसे कृष्ण, एक प्रेम का समुद्र जो कभी टूटता नहीं। प्रभु अति उदार शिरोमणि हैं, प्रेम के शिरोमणि हैं, ज्ञान के शिरोमणि हैं। यदि कोई उनसे थोड़ा-सा भी प्रेम करता है तो वे उसे ही बहुत बड़ा मान लेते हैं, प्रभु इतने कृतज्ञ हैं। एक बात अपनी स्तुति में अक्रूर जी ने कही कि कृष्ण को छोड़ करके जो कोई इधर-उधर प्यार करता है, वह मूर्ख है। आपको छोड़ करके जो कोई दूसरी शरण लेता है, मनुष्यों से प्रेम करता है, वह मूर्ख है।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥

(गी. ९/२६)

भगवान् भक्तों से इतना प्यार करते हैं कि लक्ष्मीजी को भी छोड़ देते हैं। भगवान् को एक लोटा पानी दे दो, एक पत्ता तुलसी का चढ़ा दो, गजराज की तरह एक फूल चढ़ा दो, उसी से वे अपने को ऋणी मानते हैं। आश्चर्य है कि तीनों लोकों के स्वामी होकर के अपने को ऋणी मानते हैं। केवल एक तुलसी का पत्ता चढ़ाया था, रुक्मिणी ने। एक फूल चढ़ाया था गजराज ने। कुछ बेर खिलाये थे शबरी ने, इतने से ही भगवान् इन सभी के सदा के लिए ऋणी बन गये। तुम थोड़ा-सा भी प्रेम करोगे तो वो अपने को ऋणी मान लेंगे। प्रभु सब कुछ दे देते हैं यहाँ तक कि अपने आपको भी दे देते हैं। ऐसा उनका स्वभाव है, ऐसे कृतज्ञ हैं प्रभु !

सूरदास जी बोले कि अपने भक्त के तिनका जैसे गुण को मेरु माने सोने के पहाड़ के जैसा मान लेते हैं। थोड़ा-सा भी उसमें गुण है, प्रेम है, भाव है, उसको पहाड़ मान लेते हैं, इतने कृतज्ञ हैं। देखो, जब एक बार भरी सभा में भगवान् ने चक्र से शिशुपाल का सिर काटा था तो उनकी उंगली छिल गयी थी और उसी समय द्रौपदी ने अपनी साड़ी फाड़ दी और श्रीकृष्ण की उँगली पर बाँध दी। श्यामसुंदर बोले कि ये तुमने क्या किया? ये तो देवलोक की साड़ी थी और कपड़ा मिल जाता। द्रौपदी बोली, "जर्नादन ये तो कपड़ा है, शरीर भी फाड़कर अगर आपकी सेवा में आ जाय तो वो भी थोड़ा है।"

भगवान् ने द्रौपदी के चीरहरण के समय करोड़ों साड़ी देकर के एक चीर का बदला चुकाया। आगे सूरदास जी बोले कि उनका भक्त समुद्र के समान अपराध करता है तो उसको एक बूँद मानते हैं। भगवान् श्याम ऐसे दयामय हैं, ऐसे दयालु हैं।

जब कभी श्रीकृष्ण सामने आते हैं तो ऐसे दिखते हैं जैसे एक खिला हुआ कमल मुस्कुरा रहा है। बड़े प्रसन्न मुख से भक्त को देखते हैं। भक्त गाता है तो सामने प्रसन्न होकर सुनते हैं, भक्त नाचता है तो मुस्कराते हुए सामने आते हैं और देखते हैं। भक्त भोग लगाता है तो मुस्कराते हुए उसे पाते हैं। भक्त जो कुछ भी सामने करता है भगवान् प्रसन्न हो करके देखते हैं।

जब भक्त विमुख हो जाता है, कभी-कभी सम्पत्ति, भोगों में फँस जाता है, तब भी भगवान् एक क्षण के लिए भी अपनी कृपा नहीं हटाते हैं। उसको वहाँ से उठा करके लाते हैं। एक क्षण के लिए भी अपनी कृपा करनी नहीं छोड़ते और जब भक्त सँभल जाता है और मुड़के देखता है तो श्यामसुंदर वैसे ही मुस्कुरा रहे होते हैं। भगवान् कहते हैं कि अरे! तू मेरे पास आ, तू कहाँ भटक गया था? ऐसा स्वभाव है, प्रभु का।

निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम् ।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः ॥

(भा. ११/१४/१६)

एक और उनमें विशेषता है कि वे भक्तों के पीछे-पीछे दौड़ा करते हैं। ये भगवान् ने स्वयं उद्धव से कहा था कि उद्धव सारा संसार मुझसे पवित्र होता है लेकिन मैं भक्त के पीछे दौड़ता हूँ कि उसकी चरण-रज मुझे मिल जाये और मैं पवित्र हो जाऊँ लेकिन कैसा भक्त? निरपेक्ष व शांत। जो निरपेक्ष हो, किसी से कुछ नहीं चाहता, किसी से द्वेष नहीं करता, शांत है। सबमें एक मुझको ही देखता है। मैं ऐसे भक्त के पीछे-पीछे भागता हूँ कि उसकी चरण-रज मेरे ऊपर पड़ जाये। भगवान् ऐसे दीनबन्धु हैं। ये बात उन्होंने उद्धव ही से ही नहीं, रुक्मिणीजी से भी कही थी कि मैं स्वयं निष्किञ्चन हूँ और निष्किञ्चनों ही से प्यार करता हूँ। मैं गरीब निवाज हूँ इसलिए गरीबों से प्यार करता हूँ।

नारायण मैं सत्य कहूँ, भुजा उठाय के आज ।
जो तू बने गरीब तो, मिलैं गरीब निवाज ॥

सूरदास जी कहते हैं कि ऐसे स्वामी को संसार के भोगों और आसक्तियों में फँसकर के जो भूल गया, वह सबसे बड़ा अभागा है। चाहे वह चक्रवर्ती सम्राट् है पर है वो अभागा, दरिद्र। यही शंकर जी ने भी कहा था कि हे उमा ! वे परम अभागे हैं जो भगवान् श्रीकृष्ण को छोड़ करके विषयों में प्रेम करते हैं।

सुनहु उमा ते लोग अभागी ।
हरि तजि होहिं विषय अनुरागी ॥

(रा.च.मा.अरण्य. ३३)

ये वही ब्रज भूमि है, वही जंगल है, वही रात है, जहाँ गोपियों ने कृष्ण को बुलाया था। आओ रे गोपाल, आओ रे गोपाल। हे नाथ ! दया अब कीजिए, मुझे अपनी शरण में लीजिये।

☀ हारी जानि परी हरि ! मेरी ☀

हे नाथ ! मैंने हार मान ली।

सब तरफ से मेरी हार हो गयी। माया से भी मैं हारा और सभी साधनों से भी मैं हारा। मैं किसी भी साधन के योग्य नहीं हूँ। हारकर के, निराश होकर के मैं तुम्हें बुलाता हूँ। मेरी हार को जीत में बदल दो।

ये संसार दुःखमय है। स्वयं भगवान् ने कहा कि हे अर्जुन ! यहाँ की प्राप्ति अनित्य है। ये शरीर भी थोड़े दिन में चला जायेगा। ये शरीर जाने वाला है, ये सब अनित्य है। आज तक किसी को इससे सुख नहीं मिला, न शरीर से मिला, न संसार से मिला।

कोई भी प्राणी जब मरने लग जाता है तो क्या लेकर जाता है, दुःख। इस संसार में जब आया था तब भी रोता आया था। जीवन की शुरुआत रोने से होती है और जीवन का अंत भी रोने से होता है। इसलिए भगवान् ने कहा है कि ये दु:खमय संसार है। जीव यहाँ दुःख के साथ रोता हुआ पैदा होता है, कष्ट में पैदा होता है और कष्ट में ही मरता है। हे गोविन्द ! फिर भी मेरी आसक्ति नहीं जाती

है; शरीर से, शरीर के सम्बन्धों से, संसार से। इसलिए मैं हार गया। माया के पानी में मैं डूब रहा हूँ। आपके चरणों की शरण मिल जाए तो किनारा मिल जाए और यदि न मिली तो सदा डूबते ही रहेंगे। माया के प्रवाह में न जाने कितनी दूर चले जायेंगे? ८४ लाख योनियाँ हैं, पता नहीं किस योनि में जन्म लेना पड़ेगा?

मैं डूब तो रहा हूँ पर आपकी ओर भी देख रहा हूँ। जिसको भगवान् का आश्रय मिल गया, वह पार हो गया। वरना स्वर्ग में भी दुःख है। हे गोविन्द ! हे श्याम, मेरी टेर तू सुन ले। हे दीनबंधु, दीनानाथ ! मेरी डोरी तेरे हाथ।

आपने इस भवसागर में हमको जहाज दिया। ये शरीर एक जहाज है। भगवान् ने ये शरीर दिया कि इस जहाज में बैठ के तुम हमारे पास आ जाना।

नर तनु भव बारिधि कहुँ बेरो ।
सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो ॥

(रा.च.मा.उत्तर. ४४)

भगवान् बिना कारण प्यार करते हैं। हमारे जैसे नीच, पापी, भगवद्-विमुख प्राणियों को भगवान् ने ये मनुष्य शरीर दिया; ये शरीर भगवान् की ओर जाने का एक साधन है। मनुष्य आसक्तियों का बोझ उठा लेता है और फिर डूब जाता है। धन-धान, स्त्री-पुत्र आदि की आसक्ति में डूब जाता है। समस्त आसक्तियाँ बंधन हैं, इनका भारी-भारी वजन हमने लाद लिया है जिससे जहाज डूब रहा है। अब ये जहाज डूबने वाला है।

जब जहाज भँवर में फँस जाता है तब घूमने लग जाता है, चक्कर काटने लग जाता है और उसमें पानी भर जाता है और वो डूब जाता है। हमारे इस शरीर रूपी जहाज में भ्रम का पानी, भ्रम का भँवर घुस गया है। विषयों में सुख है, ये भ्रम है। ये भ्रम का पानी जब घुस जाता है तो जहाज डूब जाता है। ये भ्रम ही हमें भटका

रहा है कि धन, स्त्री, आसक्ति, विषयों में सुख है। ये अनन्त भँवर उठ रहे हैं।

हे गोविन्द ! ये जीव का भ्रम है कि अब विषयों में सुख मिलेगा। इस भ्रम में उमर चली जाती है और कुछ नहीं मिलता। न भजन हो पाता है और न कोई साधन हो पाता है, इस भँवर में भटकता फिरता रहता है। इस भँवर से निकलने के मैंने सब उपाय कर लिये पर मैं नहीं निकल पाया। बचाओ रे गोपाल ! मोह डूबने से बचाओ। अनेकों प्रकार के उपाय किये मैंने परन्तु निकल नहीं पाया। हे नाथ ! मैं हार गया।

अंगं गलितं पलितं मुण्डं दशनविहीनं जातं तुण्डम् ।
वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं तदपि न मुञ्चत्याशा पिण्डम् ॥

(श्रीमत् शंकराचार्य विरचित 'चर्पटपञ्जरिका')

आद्य शंकराचार्य जी ने कहा कि देखो इस बूढ़े को, सब अंग गल गये हैं, बाल सफेद हो गये हैं, दाँत मुँह में नहीं हैं फिर भी ये आशा लगाये है संसार से, विषयों से, आसक्तियों से और ऐसे ही ये मर जायेगा। बूढ़ा हो गया है, चल नहीं पाता है, लाठी लेकर चलता है। कहाँ गया वो बचपन, वो जवानी फिर भी जीव आशा को नहीं छोड़ता। मनुष्य सब साधन कर लेता है, सब विधि कर लेता है, सब विचार कर लेता है, विरक्त भी हो जाता है, साधु भी हो जाता है लेकिन इस भ्रम से नहीं निकल पाता।

इस भवसागर से पार होने का एक ही रास्ता है। जैसे पूर्णिमा का चाँद जब निकलता है तो सागर उमड़ता है, उसको ज्वार कहते हैं। समुद्र उमड़ता है, लहरें बढ़ जाती हैं तो दूर-दूर किनारे तक लहरें चली जाती हैं। हे नाथ ! जब आप अपना मुख-चन्द्र दिखायेंगे तो ये माया की लहरें बड़े जोर से उठेंगी और उनमें मैं किनारे लग जाऊँगा, मैं बाहर निकल जाऊँगा, मैं पार हो जाऊँगा।

☀ अब मैं नाच्यो बहुत गोपाल ☀

हे नाथ, अनाथों के नाथ, गोपाल ! संसार में हर प्राणी माया में नाच रहा है, अनादिकाल से नाच रहा है। ८४ लाख योनियों में नाचता है। मेरी प्रार्थना ये है कि हे नाथ ! कब तक ये माया मुझको नचायेगी? क्या कभी ये नाच बंद होगा? ये अशुभ नाच, ये माया का नाच, इस नाच को बंद कर दो। हे नाथ ! वो नाच दे दो जो तेरे प्रेम में डूबा हो, वो नाच जिस नाच को गोपियों ने नाचा था, जिस नाच को नारद जी ने किया, जिस नाच को मीरा ने किया।

अनादिकाल से मैं इस माया के नाच को नाच रहा हूँ। हे नाथ ! नाचते-नाचते अनन्त समय बीत गया। काम व क्रोध का चोला पहनके (जैसे नाचने वाला चोला पहनता है, स्त्री जैसे लहंगा पहनती है) नाचता हूँ। कपड़े अंदर पहने जाते हैं भाव के, मैंने जो चोला पहना है वो है काम व क्रोध का।

मनुष्य राग करता है या द्वेष करता है। गलत जगह राग करता है और गलत जगह द्वेष करता है। संसार से राग करता है और भक्तों से द्वेष करता है। भक्तों से राग करना चाहिए और संसार से द्वेष करना चाहिए। इससे संसार का राग खत्म हो जाता है। विभीषण ने रावण से कहा था –

सुमति कुमति सब कें उर रहहीं।
नाथ पुरान निगम अस कहहीं॥
जहाँ सुमति तहँ संपति नाना।
जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना॥

(रा.च.मा.सुन्दर. ४०)

हे भाई ! जहाँ सुमति है वहाँ सुख-संपत्ति आनन्द अवश्य आयेंगे। जहाँ कुमति है वहाँ एक दिन अवश्य विपत्ति आयेगी। तुम्हारे हृदय में कुमति है जो भगवद्-भक्तों से तुम द्वेष करते हो। जो

चापलूसी करने वाले हैं, उनसे प्रेम करते हो। इसलिए तुम्हारा अवश्य विनाश होगा।

ये जीव अनादिकाल से यही कर रहा है। संसार के असत् पुरुषों से राग कर रहा है। काम व क्रोध का चोला पहनके और गले में विषयों की माला पहन के नाच रहा है। विभीषण ने कहा कि ये शत्रु हैं, जो तुम्हें काम, क्रोध, द्वेष सिखाते हैं पर तुम इन दुष्ट मंत्रियों से प्रेम करते हो, ये तुम्हारे हितैषी मंत्री तुमको मरवा देंगे। रावण क्रोध में आ गया और बोला मुझे शिक्षा देता है। उसने भरी सभा में विभीषण को लात मारी लेकिन विभीषण ने चरण पकड़ लिये।

तुम्ह पितु सरिस भलेहिं मोहि मारा ।
रामु भजें हित नाथ तुम्हारा ॥

(रा.च.मा.सुन्दर. ४१)

रावण लात मार रहा है और विभीषण चरण पकड़ कर समझा रहे हैं कि मुझे कितना भी मारो पर भगवान् से और भगवान् के भक्तों से राग करो। रावण ने कहा कि लंका से निकल जा। 'अच्छा जाता हूँ' कहकर विभीषण चल दिये। उसी समय सब मर गये थे भक्त द्रोह के कारण, पीछे तो लड़ाई का नाटक हुआ। भक्त-द्रोह जला देता है; इसलिए राग भक्तों से करो और द्रोह संसार से करो।

हे नाथ ! मैं कभी मनुष्य बना, कभी कुत्ता बना, कभी गधा बना, कभी सर्प बना, जाने कितने रूप बदल-बदल कर नाचा। अब आपने मनुष्य बना दिया तो भी वही माया का नाच, विषयों का नाच नाचा लेकिन आपके प्रेम का नाच नहीं नाच पाया। हे मोर मुकट वाले श्याम ! भक्त रखवाले श्याम ! मेरी रक्षा करो, हे नाथ ! मेरी रक्षा करो। इन विषयों से मेरी रक्षा करो। काम-क्रोध से रक्षा करो। रक्षा करो, रे प्रभु रक्षा करो। हे नाथ ! अब मैं नाच्यो बहुत गोपाल। हे नाथ ! मुझे मोह नहीं, महामोह है। मैं भक्तों से द्वेष करता हूँ। मेरे नूपुरों से निंदा निकला करती है। नाचने वाला ताल से नाचता है

और मेरा मन कुसंगति की ताल पर नाचा करता है। संसार के सामने नाचता है, भगवान् के आगे नहीं।

संसार के सामने नाचने वाली वैश्या होती है। नाचता क्यों है मनुष्य संसार में? तृष्णा वासना के कारण। हे नाथ! मैंने कमर कस ली है कि इसी नाच को नाचते-नाचते मरूँगा। पाप करने का मैंने फैंटा बाँध लिया है, लोभ का तिलक कर लिया है। संसार और भोग मिले, मेरे जीवन का यही लक्ष्य है।

हे नाथ! अविद्या के कारण मैं कभी पानी में नाचा, कभी आकाश में नाचा और कभी जमीन पर नाचा। हे गोपाल! अब मेरी अविद्या को दूर कर दे। जितने भी संसार को रिझाने के नाच थे, मैंने सब कर डाले। ऐसा नाच मैंने नाचा, एक भी दाँव बाकी नहीं बचा। जहाँ तक बुद्धि दौड़ती है वहाँ तक मैंने विषयों की दौड़ की, एक भी पाप नहीं बचा। सभी प्रकार के छल और सभी प्रकार के कपट मैंने कर लिये, कोई भी नहीं बचा मुझसे। हे नाथ! मैंने छोड़ी जगत की माया, अब मैं तेरी शरण में आया। हे दीनबंधु दया अब कीजिये, कृपासिन्धु दया अब कीजिये। हे नाथ! तुम कभी भी मेरे नाच पर नहीं रीझे। हे नाथ! आज तक आप नहीं रीझे, मेरा सारा परिश्रम बेकार गया। हे नाथ! आप रीझे नहीं हैं, इसका मेरे पास प्रमाण है। ये आप जाँच-पड़ताल जो करते हैं, इससे पता चलता है कि आप रीझे नहीं हैं।

मेरी भी टेर सुन ले, मुझे अपनी शरण में ले ले। मुझे माया से तुम छुड़ाओ, अपने चरण में लगाओ। आखिरी बात ये है कि तुम एक बार कह दो, क्यों नाच रहा है? क्यों मरता है? क्यों माया के नाच में नाचता है? तो मेरा नाच बंद हो जायेगा फिर मैं तुम्हारे प्रेम में नाचा करूँगा।

☀ आपकी ठकुराई ☀

हे नाथ! सबसे बड़ी आपकी जो विशेषता है, जो आपकी ठकुराई है वो ये है कि आपका नाम जीव की वासनाओं का हरण कर लेता है। वासनायें अनन्त हैं और बिना वासनाओं के समाप्त हुए बंधन नहीं छूटेगा। अनन्त कर्म हैं, अनन्त उनकी वासनायें, अनन्त गांठें हैं, उनको आपका नाम जला देता है, तब जीव आपकी ओर चलता है। तब जीव आपका भजन कर सकता है। वासनाओं वाला आपका भजन नहीं कर सकता है। वह गिरेगा और लौट जायेगा।

मै जानता हूँ कि भगवान् कितने मीठे हैं फिर भी मैं भगवान् की ओर नहीं जाता; मैं जानता हूँ कि ये विषय विष हैं, ये ठगते हैं पर ये जानने के बाद भी मैं विषयों को नहीं छोड़ पाता। हे नाथ! मैंने ये शास्त्रों में भी पढ़ा है कि ये विषय विष हैं, अनुभव भी किया और देखा भी कि इनमें कुछ नहीं है।

हे नाथ! मेरे पर भी दया कर दो, मुझे भी पार कर दो। सबसे बड़ी जो आपकी कृपा है, वह ये है कि आपका नाम वासनाओं के सहित कर्मों का हरण कर लेता है। हर कर्म एक संस्कार बनता है। प्रतिदिन उठते-बैठते जीव कर्म कर रहा है। आपसे विमुख हो रहा है। हर कर्म वासना बनता जा रहा है। कर्म कर लिया तो उसकी वासना मन में जमा हो जाती है। लड्डू तो खा लिया पर बुरा ये हुआ कि उसकी वासना जमा हो गई मन में कि बड़ा मीठा है।

हे नाथ! इनसे केवल आपकी कृपा, आपका नाम ही बचा सकता है। जब तक संसार के रस की अनुभूति है, तब तक श्रीकृष्ण से प्रेम नहीं है। अगर श्रीकृष्ण मुझे मीठे लगते तो साहित्य के नौ रस, भोजन के छह रस, संसार के अन्य सब रस फीके हो जाते। हे नाथ! तुमसे मीठा कौन है? श्याम का सब कुछ मीठा है।

संसार का सब कुछ विष है। भगवान् ने गीता में कहा है कि संसार के विषय शुरू में मीठे लगते हैं पर अन्त में मृत्यु है। उस प्रभु की हर वस्तु, हर बात आदि में, मध्य में, अन्त में, हर जगह से मीठी है।

अधरं मधुरं वदनं मधुरं नयनं मधुरं हसितं मधुरं।
हृदयं मधुरं गमनं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥
वचनं मधुरं चरितं मधुरं वसनं मधुरं वलितं मधुरम्।
चलितं मधुरं भ्रमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥
वेणुर्मधुरो रेणुर्मधुरः पाणिर्मधुरः पादौ मधुरौ।
नृत्यं मधुरं सख्यं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥
गीतं मधुरं पीतं मधुरं भुक्तं मधुरं सुप्तं मधुरम्।
रूपं मधुरं तिलकं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥
करणं मधुरं तरणं मधुरं हरणं मधुरं रमणं मधुरम्।
वमितं मधुरं शमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥
गुञ्जा मधुरा माला मधुरा यमुना मधुरा वीची मधुरा।
सलिलं मधुरं कमलं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥
गोपी मधुरा लीला मधुरा युक्तं मधुरं मुक्तं मधुरम्।
दृष्टं मधुरं शिष्टं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥
गोपा मधुरा गावो मधुरा यष्टिर्मधुरा सृष्टिर्मधुरा।
दलितं मधुरं फलितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥

(श्रीमधुराष्टकम्)
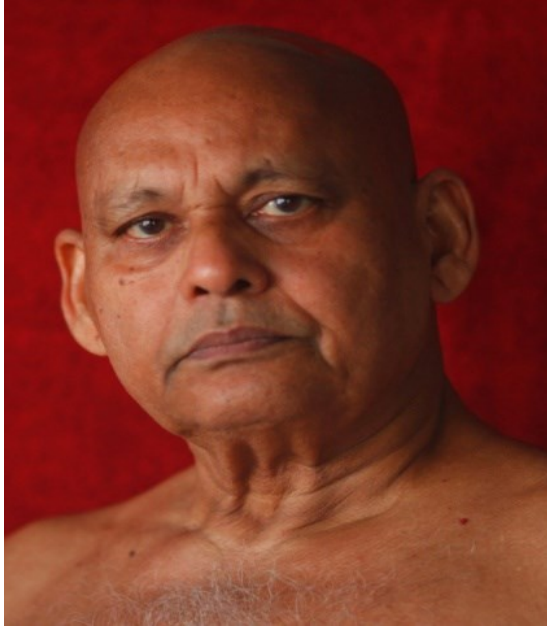
श्याम का मुख कितना मीठा है, कमल के समान सुंदर नेत्र हैं, मीठी-मीठी मुस्कान है, श्याम की बोलन कितनी मीठी है, उसकी लीला कितनी मीठी है, पीताम्बर कितना मीठा है, पीताम्बर की लपेटन कितनी मीठी है, अरे ! श्रीकृष्ण की बंसी कितनी मीठी है, श्रीकृष्ण के कर कमल कितने मीठे हैं, चरण कितने मीठे हैं, जिनकी लक्ष्मी भी दिन-रात सेवा करती हैं। कैसा सुन्दर नाचता है कान्हा ! ऐसा मीठा-मीठा है श्याम। अरे ! हम कहाँ तक कहें, ऐसा मीठा जब हमारे हृदय में आ जाय तो संसार के सब रंग फीके हैं।

राधे किशोरी दया करो

हे किशोरी राधारानी! आप मेरे ऊपर दया करिये। इस जगत में मुझसे अधिक दीन-हीन कोई नहीं है अतः आप अपने सहज करुण स्वभाव से मेरे ऊपर भी तनिक दया दृष्टि कीजिये।

राधे किशोरी दया करो ।
हम से दीन न कोई जग में, बान दया की तनक ढरो ।
सदा ढरी दीनन पै श्यामा, यह विश्वास जो मनहि खरो ।
विषम विषय विष ज्वाल माल में, विविध ताप तापनि जु जरो ।
दीनन हित अवतरी जगत में, दीनपालिनी हिय विचरो ।
दास तुम्हारो आस और (विषय) की, हरो विमुख गति को झगरो ।
कबहुँ तो करुणा करोगी श्यामा, यही आस ते द्वार पर्‌यो ॥

मेरे मन में यह सच्चा विश्वास है कि श्यामा जू सदा से दीनों पर दया करती आई हैं। मैं अनादिकाल से माया के विषम विष रूपी विषयों की ज्वालाओं से उत्पन्न अनेक प्रकार के तापों की आग में जलता आया हूँ। इस जगत में आपका अवतार दीनों के कल्याण के लिए हुआ है। हे दीनों का पालन करने वाली श्री राधे! कृपा करके आप मेरे हृदय में निवास कीजिये। मैं आपका दास होकर भी संसार के विषयों और विषयी प्राणियों से सुख पाने की आशा किया करता हूँ। आप मेरी इस विमुखता के क्लेश का हरण कर लीजिए। हे श्यामा जू! जीवन में कभी तो ऐसा अवसर आएगा जब आप मेरे ऊपर करुणा करेंगीं, इसी आशा के बल पर मैंने आपके द्वार पर डेरा जमा लिया है।

रसीली ब्रज यात्रा

प्रह्लाद सभा
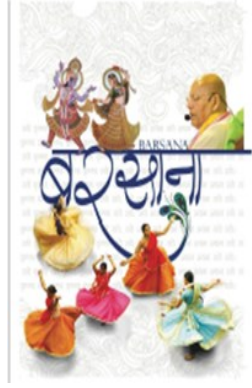
बरसाना

मानिनी यश मुक्तामाला
प्रथम पुष्प

मानिनी यश मुक्तामाला
द्वितीय पुष्प
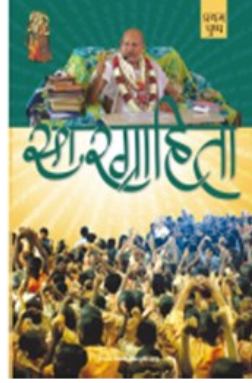
सारग्राहिता
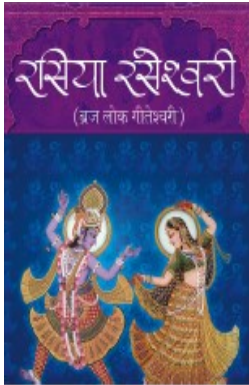
रसिया रसेश्वरी

गह्वरवन तरंगिनी

श्री मान मन्दिर सेवा संस्थान,
गहवर वन, बरसाना, मथुरा,
उत्तर प्रदेश २८१ ४०५ भारतवर्ष
द्वारा प्रकाशित

प्राप्त करने के लिये सम्पर्क करें:
ms@maanmandir.org
+91-98376-79558
+91-99273-38666